महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक शिक्षण मंडल पुणे, मंजूरी क्रमांक, रा० मं० पा० पु०
उच्च माध्यमिक इतिहास एच० एस० २७-२२ दि० २४-२-७५ द्वारा स्वीकृत

प्राचीन सभ्यता का इतिहास

(११ वी कक्षा के लिये)

लेखक

प्रो० मनोहर आर० वाधवानी, एम० ए०, एल-एल० बी०,
डी० एच० ई०

इतिहास एवं राजनीति शास्त्र विभाग,
भवनका हजारीमल सोमानी कालेज, बंम्बई-७

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीप्रसाद
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद-२११००२

प्रथम संस्करण] १९७५ [मूल्य १२.५० रुपये

भूमिका

"प्रागैतिहासिक युग से १७७४ तक की सभ्यता का इतिहास" को उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियो और अध्यापकों को प्रस्तुत करते हुए हमे अत्यत प्रसन्नता हो रही है।

यद्यपि यह सामान्य सक्षिप्त पुस्तक महाराष्ट्र स्टेट बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एजूकेशन, महाराष्ट्र द्वारा कक्षा ११ के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार विभिन्न विषयो की योजना सहित लिखी गयी है, यह आशा की जाती है कि प्रागैतिहासिक युग से १७७४ तक की सभ्यता के इतिहास को जानने के इच्छुक सामान्य पाठक भी इसे सहर्ष पढेंगे और लाभान्वित होंगे।

यह पुस्तक ऐसी भाषा और शैली मे लिखी गयी है कि औसत विद्यार्थी और सामान्य पाठक इसे सहज रूप से समझ पायेंगे।

हम उन विभिन्न विद्वानों और लेखको, यथा डा० विल डुराट, डा० ब्रेस्टेड, प्रो० एस० आर० शर्मा, प्रोफेसरगण हेस, बाल्डविन और कोल तथा अनेक अन्यो के चिर ऋणी हैं, इस छोटी पुस्तक के लिखने में जिनकी कृतियो से हमने निस्सकोच सहायता ली है।

—लेखक

प्रतिज्ञा

भारत मेरा देश है।
सभी भारतीय मेरे भाई-बहन हैं।
मुझे अपने देश से प्यार है।
अपने देश की समृद्ध तथा विविधताओं से
विभूषित परम्पराओं पर मुझे गर्व है। मैं हमेशा
प्रयत्न करूँगा कि उन परम्पराओं का सफल
अनुयायी बनने की क्षमता मुझे प्राप्त हो।
मैं अपने माता-पिता, गुरुजनों और बड़ों
का सम्मान करूँगा, और हर एक
से सौजन्यपूर्ण व्यवहार करूँगा।
मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपने देश और अपने
देशवासियों के प्रति निष्ठा रखूँगा। उनकी
भलाई और समृद्धि में ही मेरा सुख निहित है।

अनुक्रमणिका

अध्याय १

भूमिका

(अ) सभ्यता क्या है ?

सभ्यता का अर्थ—अंग्रेजी अभिव्यक्ति 'सिविलजेशन' (सभ्यता) की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'सिविलिस' से हुई है जिसका अर्थ है, वह जो शहरी जीवन से सम्बन्धित हो अथवा जुडा हुआ हो। शहरी जीवन से मनुष्य की भौतिक प्रगति का बोध होता है। सभ्यता इस प्रकार मानव की भौतिक प्रगति का सूचक है—ठीक उस दिन से लेकर आज तक जबकि पहला मानव इस पृथ्वी पर आया। मानव की यह प्रगति जिसमे आर्थिक, औद्योगिक, व्यावसायिक, वैज्ञानिक, तकनीकी तथा आणविक विकास शामिल है तथा जिसने मानव जीवन को सुविधापूर्ण और आनन्दपूर्ण बनाया है, मानव सभ्यता के नाम से जाना जाता है।

(ब) पृथ्वी का क्रमिक विकास

पृथ्वी सूर्य का एक अंग—तरंगमय सिद्धान्त के हामी शिकागो विश्वविद्यालय के प्रोफेसरो चैंबरलेन तथा मोल्टन का विश्वास है कि पृथ्वी सूर्य का ही एक अंग है। उनके अनुसार खरबो वर्ष पहले सूर्य की अपेक्षा एक बहुत बडा तारा सूर्य के पास से गुजरा और वहाँ से गुजरते हुए उसने सूर्य को चुम्बकीय शक्ति द्वारा अपनी ओर अत्यन्त प्रबलता से खीचा। इससे सूर्य मे प्रचण्ड लहरे उठी, और गुरुत्वाकर्षण की शक्ति द्वारा सूर्य का एक बहुत बडा भाग उससे पृथक् हो गया। इसी से नक्षत्रो का निर्माण हुआ जिसमे से पृथ्वी एक है। चूँकि पृथ्वी सूर्य का एक अंग है इसलिये वह सूर्य के चारो ओर परिक्रमा करती है।

गैसें, आकाश, ठोस आन्तरिक पदार्थ और सागर—पृथ्वी, प्रारम्भ मे, अत्यन्त गर्म गैसो का अग्निपिंड थी। करोडो वर्षों बाद गैसे क्रमश ठण्डी होती गयी और एक ठोस आन्तरिक पदार्थ का निर्माण हुआ। फिर उसके चारो ओर वायु का आकाश बन गया। गर्म धारा के गिरने से जल द्वारा पहले सागरो और सागर-तालो का निर्माण हुआ जो छिछले थे। इस छिछले जल पर ही जब वह पूरी तरह से ठडा पड गया, जीवन का उद्भव हुआ।

(स) पृथ्वी पर जीवन का क्रमिक विकास

पृथ्वी पर जीवन का उद्भव कैसे हुआ, यह अब भी अंधकारपूर्ण है। वैज्ञानिक अभी तक इस विषय पर प्रकाश नही डाल पाये हैं। अधिकाश आदिम मनुष्यो ने अपने-

अपने धर्म तथा विश्वास के अनुसार इसके मम्बन्ध मे विभिन्न कहानियाँ कही है। ससार के सभी धर्म उपदेश देते हैं कि मनुष्य भगवान् द्वारा रचित मिट्टी का पुतला है।

वैज्ञानिक सिद्धान्त—जीवन के उद्भव को ममझाने वालो के दो सिद्धात हैं। ये दोनो सिद्धात हैं —

१ जीव सम्बन्धी सिद्धात, २ क्रमिक विकास का मिद्धात।

जीव सम्बन्धी सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के हामी अग्रेज वैज्ञानिक लार्ड केल्विन के अनुसार जीवन का उद्भव पृथ्वी पर नही हुआ। उमका उद्भव कही और हुआ। सम्भवत मूर्य मे, फिर वहाँ से जीव पृथ्वी पर आया। इस प्रकार यह मिद्धान्त पृथ्वी पर जीवन का उद्भव नही वतलाता, यह इसे हमारी जाँच मे परे वतलाती है।

क्रमिक विकास (इवोल्युशन) का सिद्धान्त—अग्रेजी अभिव्यक्ति 'इवोल्युशन' की उत्पत्ति लैटिन अभिव्यक्ति 'एवोल्योट' से हुई है जिसका अर्थ है लपेटने को हटाना। इसका अर्थ है किसी वस्तु का विकास प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा नीचे के क्रम ने ऊपर के क्रम को, सादे रूप से मिले-जुले रूप को। चार्ल्स रावर्ट डारविन (१८०६-१८८३) नामक एक अग्रेज प्रकृतिवादी इस सिद्धान्त का सवसे वडा प्रणेता था। उसके अनुसार मनुष्य का क्रमिक विकास एक वन्दर से हुआ। इमका प्रतिपादन उसने दो पुस्तको द्वारा किया।

१ जातिमूल,

२ मानव की वश परम्परा।

(१) जीव द्रव्य का सूक्ष्म विन्दु · जीवन के एक कोटानिम विभिन्न रूप—जीवन का पृथ्वी पर कव, कैसे और क्यो उदभव हुआ, अभी तक पता नही चला। तथापि उमके उदभव के जो भी कारण हैं, यह विश्वास किया जाता है कि जीव सवसे पहले पानी मे उत्पन्न हुआ—सूक्ष्म-सूक्ष्म विन्दु रहस्यात्मक रूप मे जिसे जीवद्रक कहा जाता है, उसमे वढने की क्षमता थी, भोजन को पचा कर मासपेशियाँ वनाने की क्षमता थी, साँस लेने की क्षमता थी और प्रजनन की क्षमता थी। जीवित पशु की ये विशेषताएँ हैं। ऐसा जीवित पशु नगा था, उसके ऊपर सिर्फ एक लचीली झिल्ली थी जैसी कि एक कोष्ठक कीटाणु होता है। जीव के पहले रूप को आदिजीव प्रोटोजा के रूप मे वनाया गया।

(२) जीव के अनेक कोटानिम रूप—जीव के एक कोटानिम रूप उदाहरणार्थ एक कोष्ठक कीटाणु और आधुनिक अभिजीव मे से जीव के अनेक कोश्मेय रूप का क्रमिक विकास हुआ। ऐसे जीव छिद्रष्ठ(स्पज) और जल सर्प थे जो क्रमश उत्परिवर्ग, रध्रिण और उदर मे खाली स्थान न होने वाले जीव थे और जीव के इन विभिन्न रूपो ने अनेक ऐसे अगो का विकास किया जो भिन्न कार्य कर सके।
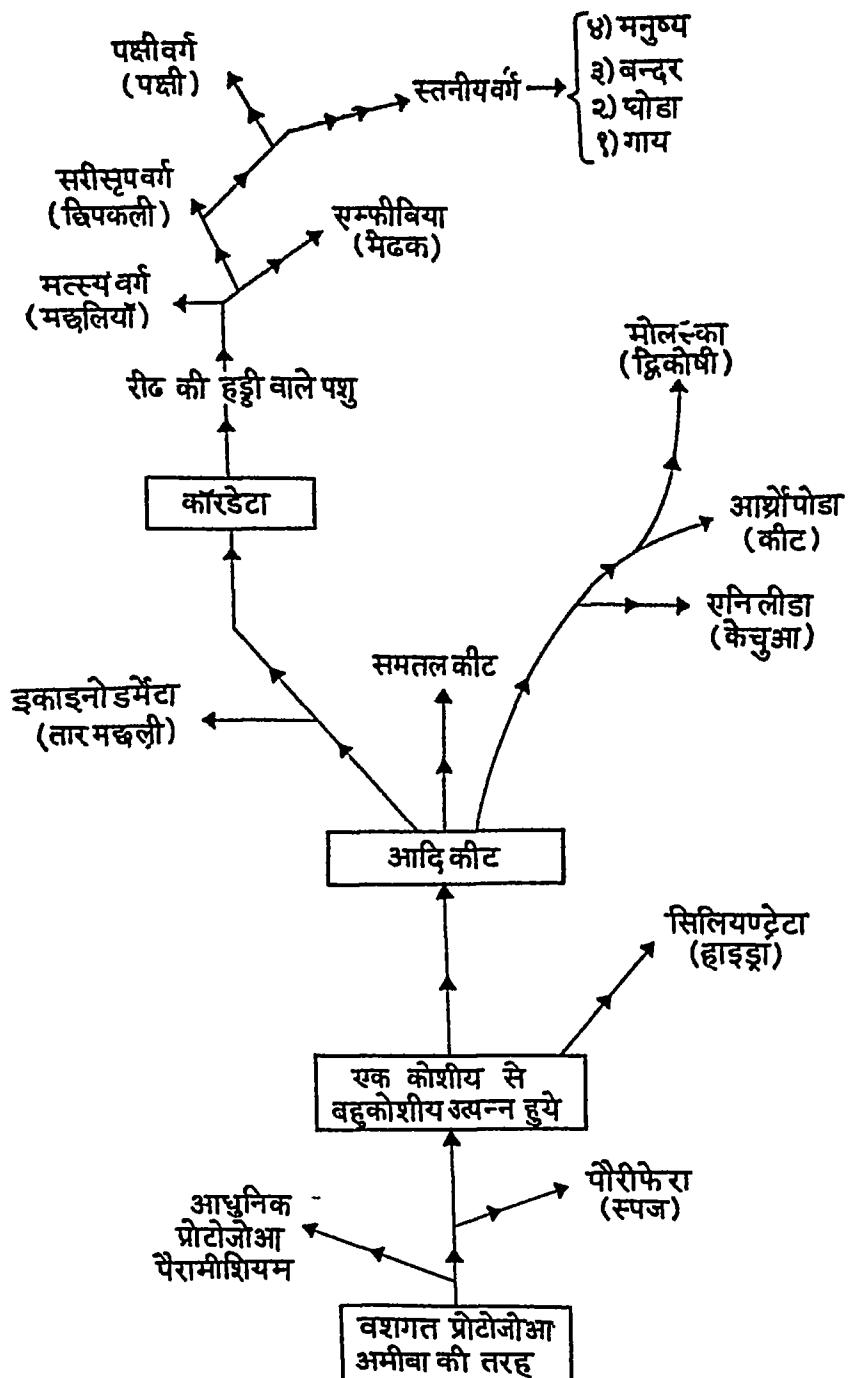
पशुओ के क्रमिक विकास का चार्ट

(३) **आदि रेंगने वाले कीडो तथा रीढ़ की हड्डी वाले जीव**—जीव के क्रमिक विकास की प्रक्रिया मे आगतचरण था कुछ रेंगनेवाले कीडो की उपस्थिति । इनमे विकास की प्रकिया तीन विभिन्न दिशाओ मे मुडी, पहले उन लाल कीडो की उत्पत्ति हुई जिनके शरीर मे छल्ले जैसे जुडे होते है । ऐसे कीडो की जिनके अग एक दूसरे से जुडे हुये होते है तथा घोघे, दूसरे मे सपाट रेंगनेवाले कीडो की उत्पत्ति हुई, तीसरे मे एक विशेप प्रकार के जीव उत्पन्न हुए जिनमे रीढ की हड्डी वाले जीव भी थे । रीढ की हड्डी वाले जीवो मे मछलियाँ थी जो जल मे निवास करती थी ।

(४) **जल-थल मे चलने वाले जीव**—उपरोक्त क्रमिक विकास के अगले चरण मे आये ऐसे जीव जो जल-थल दोनो मे चल सकते थे, जिम गलक्लोम के द्वारा वे स्वांस लेती थी, उनका क्रमिक विकास फेफडो के रूप मे हुआ ।

(५) **रेंगनेवाले जीव**—जल-थल मे रहने वाले जीवो के वाद आये भीमकाय रेंगनेवाले जीव । ये देखने मे अत्यन्त विशालकाय तथा अजीव थे । उनकी तुलना पृथ्वी के राक्षसो से की जा सकती थी । किन्तु जलवायु मे परिवर्तन के साथ उनमे से अधिक पृथ्वी पर से लुप्त हो गये ।

(६) **पक्षी और दूध पिलाने वाले पशु**—रेंगनेवाले कीडो के बाद एक ओर पक्षियो का तो दूसरी ओर पशुओ का जन्म हुआ । ज्यो-ज्यो गर्मी का युग आता गया, पशुओ की सख्या वढती गयी । भीमकाय पशु अधिक दिनो तक जीवित नही रह सके । छोटे आकार वाले पशु ही जीवित रह सके और उनका विकास आज के घोडो, ऊँटो, गायो, सुअरो और वन्दरो के रूप मे हुआ । ये पशु गर्म रक्त वाले थे, उनका शरीर वालो से ढँका हुआ था । उनमे पहले के पशुओ की अपेक्षा विकसित दिमाग भी था । ये वच्चो को जन्म देने की क्षमता रखते थे जिन्हे उनकी माताएँ पाल-पोस सकती थी ।

(७) **वदर, वनमानुष और आधुनिक मनुष्य**—यह विश्वास किया जाता है कि मनुष्य कुछ आदि नर-वानरो का उत्तराधिकारी है । ये नर-वानर बाद मे वनमानुप कहलाये जिनसे क्रमश आधुनिक मनुष्य का क्रमिक विकास हुआ ।

इस क्रमिक विकास के दौरान मनुष्य ने पाँच विशिष्टताओ का विकास किया जिनमे वह पृथ्वी का स्वामी वन गया ।

(१) उसके तन कर खडे होने की क्षमता,

(२) उसके हाथ-पैरो का आसानी से हिलना-डुलना,

(३) उसकी तीक्ष्ण स्थिर दृष्टि,

(४) उसका मस्तिष्क जो निर्णय लेने की क्षमता तथा शक्ति रखता था तथा

(५) उसके वाणी की भाषण शक्ति ।
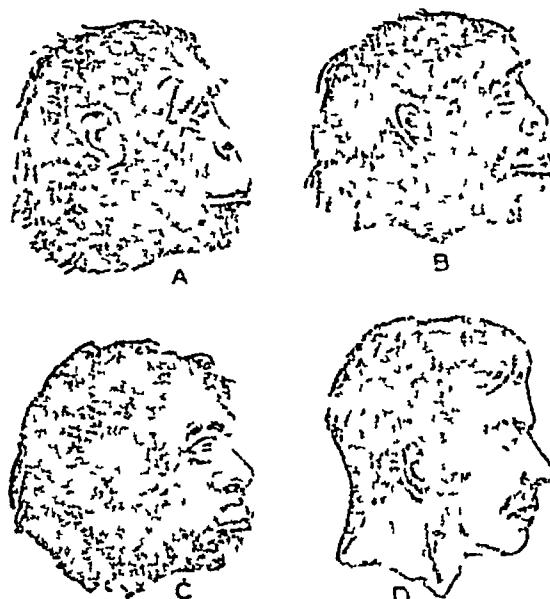
(A) वन्दर, (B) वनमानुप, (C) निकट-मनुष्य, (D) मनुष्य

(द) सभ्यता का प्रागैतिहासिक प्रारम्भ

इतिहास तथा पूर्व इतिहास—मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौतिक, नैतिक, वेदांती और वैज्ञानिक प्रगति को जिस दिन से वह इस नक्षत्र पर आया तब से आज तक को मानव इतिहास का नाम दिया गया है। मानव इतिहास को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है ऐतिहासिक युग तथा प्रागैतिहासिक युग। ऐतिहासिक युग का प्रारम्भ तब से हुआ जब से लिखने की कला का प्रारम्भ हुआ जो पाँच से छह हजार वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। मिस्र तथा वेबीलोन से कुछ ऐसे लिखित रिकार्ड पाये गये हैं जो ई० पू० ३००० वर्ष के है। दूसरी ओर प्रागैतिहासिक युग मानव इतिहास का वह युग है, जब लिखने की कला का मनुष्य को ज्ञान नहीं था। फिर भी, वह अपने ढग से इतिहास गढ रहा था। पुरातत्व विज्ञान अर्थात् प्राचीन अवशेषों, स्मारकों द्वारा सभ्यता तथा संस्कृति के उद्गम तथा विकास पर काफी प्रकाश पड़ा है। प्राकृतिक गुफाएँ, हथियार, औजार, हड्डियाँ, नरकंकाल तथा अन्य प्राचीन अवशेष मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी विजय तथा पराजय की मूक कहानी कहने लगते हैं।

प्रागैतिहासिक युग १० लाख वर्ष पुराना है। इस युग में मनुष्य ने पत्थरों का उपयोग इतना अधिक किया कि उस युग के पत्थर ही उस सुदूर अतीत के बारे में बहुत कुछ जानकारी दे देते हैं। अतएव इस युग को 'पाषाण काल' का नाम भी दिया गया

है। पाषाण काल भी दो भागो मे विभाजित है · एक पूर्व-पाषाण काल तथा दूसरा उत्तर पाषाण काल। पहले का काल लगभग ८०,००० वर्ष तक है तो दूसरा १५,००० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ।

पूर्व-पाषाण काल (पैलियोलिथिक)—पैलियोलिथिक शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्दो 'पैलियोस' अर्थात् प्राचीन तथा 'लिथोस' अर्थात् प्रस्तर युग से हुई है। इस युग को शिकारियो का युग अथवा 'भोजन जुटाने वालो का युग' भी कहा जाता है। अनेक बार नर ककालो के अवलोकन से पता चलता है कि तब अनेक नस्ले थी जिनमे से प्रत्येक की अपनी शारीरिक विशेषताये थी वे हैं (१) पीकिंग मानव, (२) जावा मानव, (३) हैडेलवर्ग मानव, (४) पिल्टडन मानव, (५) निन्डरथल मानव तथा (६) क्रो-मैग्नॉन मानव।
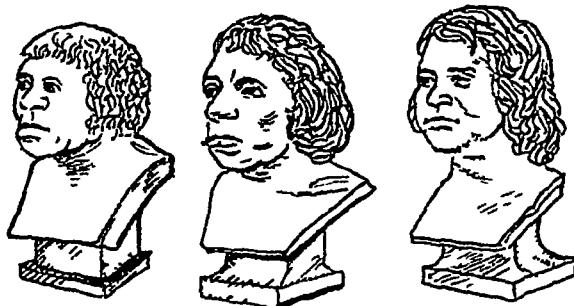
(अ) पिल्टडन मानव, (ब) निन्डरथल मानव,
(स) क्रो-मैग्नॉन मानव

पीकिंग मानव—१९२९ मे एक युवा चीनी डब्ल्यू० सी० पे० चाऊ कू तेन ने एक गुफा मे एक खोपडी पायी जिसे जी एलियट स्मिथ जैसे पुरातत्ववेत्ताओ ने **मनुष्य की खोपडी से मिलती-जुलती सबसे पुरानी खोपडी का नमूना माना**। विश्वास किया जाता है कि पीकिंग मानव आज से ५ लाख वर्ष पूर्व रहता था। चूंकि उसकी खोज पीकिंग (चीन) मे हुई थी अतएव इसे पीकिंग मानव का नाम दिया गया।

जावा का नर बन्दर—१८९१ मे डच सेना के एक सर्जन ने जावा मे एक खोपडी पर चिपक कर बैठने वाली एक टोपी, दो दाँत, जाँघ की एक हड्डी पायी जिसे पुरातत्व-वेत्ताओ ने चलने वाले नर बदर की बतायी। चूंकि इसे जावा मे पाया गया, इसलिये इसका नाम जावा नर बदर का नाम दिया गया। प्राणिशास्त्रियो तथा भू-गर्भशास्त्रियो का मत है कि जावा का नर बदर आज से ५ लाख वर्ष पृथ्वी पर रहता था। उसके मस्तिष्क के ढाँचे का मान ९५० सेटीमीटर है जो चिपेंजी तथा मनुष्य के

लगभग बीचोबीच का है। **जांघ की हड्डी से पता चलता है कि नर बन्दर तन कर खडा हो सकता था।** विद्वानो का मत है कि वह ५ फीट ६ इच ऊँचा रहा होगा।

हैडलवर्ग मानव—१९०७ मे हैडलवर्ग मे एक खोपडी पायी गयी। इसका काल ३ लाख वर्ष पूर्व माना जाता है। इस मानव के मस्तिष्क की क्षमता १००० सेंटीमीटर मानी गयी है। **यह मानव औसत मनुष्य से ½ अधिक ऊँचा था। उसके दाँत आज के मनुष्य के दांत से मिलते-जुलते थे। किन्तु उसकी ठोडी का ठीक से विकास नहीं हो पाया लगता है।** यह कह सकना सम्भव नही कि उसमे बोलचाल की क्षमता थी अथवा नही।

पिल्टडन मानव—१९११ मे डारसन तथा वुडवर्ड ने पिल्टडन, ससेस्कस (इग्लैंड) मे मनुष्य के कुछ अवशेष पाये जिन्हे अब पिल्टडन मानव का नाम दिया गया है। विद्वानो का मत है कि यह १२,५०० वर्ष पूर्व रहता था। उसके मस्तिष्क की क्षमता १,३०० सेटीमीटर मानी गयी है। पिल्टडन मानव के बारे मे अधिक निश्चित जानकारी प्राप्त नही है।

निन्डरथल मानव—१८५७ मे जर्मनी के निन्डरथल स्थान मे मनुष्य के कुछ अवशेष पाये गये। ये निश्चयपूर्वक आदिकालीन मनुष्य के अवशेष थे। ऐसे ही नमूने बेल्जियम, फ्रास, स्पेन, आस्ट्रिया, पैलेस्टीन मे भी पाये गये। **वे छोटे कद के, ढालुए मस्तक वाले, भारी दाँतों तथा जबडों वाले और कुछ विकसित ठोडी वाले थे।** उनके मस्तिष्क की क्षमता १६०० सेटीमीटर अर्थात् आज के मनुष्य से २०० सेटीमीटर अधिक थी। सम्भवत गुफाओ मे रहनेवाले, रोये का उपयोग करने वाले, पत्थर के हथियार बनाकर उनसे भोजन के लिये शिकार करने वाले तथा मृत पशुओ की सूखी हुई खाल का वस्त्र के रूप मे उपयोग करने वाले वे पहले मानव थे।

क्रो-मैग्नॉन मानव—१८६८ मे द० फ्रास के दोडोग क्षेत्र की एक ग्रोटो (नयनाभिराम गुफा) मे असख्य मानव अवशेष पाये गये। ये आज के मनुष्य से मिलते-जुलते मनुष्य के थे। इन अवशेषो से पता चलता है कि क्रो-मैग्नान मानव का बडा भव्य तथा शक्तिशाली ढाँचा था। उनकी ऊँचाई ५ फीट १० इच से लेकर ६ फीट ४ इच तक थी। उनके मस्तिष्क की क्षमता १६०० सेटीमीटर थी। **उनका ललाट सुन्दर, नाक पतली तथा ठोढ़ी विकसित थी।** निन्डरथल के मानव के समान यह मानव भी गुफा-निवासी कहा गया है क्योकि इसके अवशेष भी एक गुफा मे ही मिले हैं। उसे कला मे अभिरुचि रही होगी। क्योकि इस गुफा की दीवारो पर अनेक रगीन चित्र पाये गये हैं।

प्रस्तर युग के मानव की मुख्य उपलब्धियाँ निम्नलिखित थी —

आवास—प्रारम्भ मे मनुष्य पेडो पर या गुफाओ मे रहा। गुफाओ को उसने प्रारभिक आवास बनाया था।

भोजन—प्रस्तर युग के मनुष्य को खेती की कला नही मालूम थी। अतएव वह अपने साथियो के साथ वन मे बीजों, कदमूल फल की खोज मे घूमा करता था, पशुओ का शिकार किया करता था ताकि उसकी क्षुधा शात हो सके।

वस्त्र—प्रस्तर युग मे मनुष्य को बुनने की कला नही आती थी। अतएव वह शिकार किये हुये पशुओ की सूखी खाल पहना करता था।

औजार, पुर्जे तथा हथियार—पत्थर के बने हुए अनेक औजार, पुर्जे तथा हथियार भी पाये गये है। ये इस प्रकार बनाये गये थे कि हाथ मे आ सके और अपना काम भी पूरा कर सके। प्रोफेसर हेस, मून और वेलैंड के अनुसार "वे इतने अच्छे बने है कि उनका निर्माण तीव्र बुद्धि तथा कुशल अँगुलियो ने ही किया होगा।"

कला—प्रस्तर युग के मनुष्य की कला मे अभिरुचि रही होगी और वे अच्छे कलाकार रहे होंगे। हड्डियो, हाथी दाँत, पत्थर तथा फेंके जाने वाले भालो जैसी वस्तुओ पर उनकी खुदाई, कढाई और चित्रकारी बडी ही कलात्मक तथा विस्मयजनक रही है। लाल, पीले और काले ये तीनो रग बहुत प्रयोग मे लाये गये थे।

अग्नि—अग्नि का आविष्कार कैसे हुआ, यह एक ऐतिहासिक पहेली है। सामान्य रूप से विश्वास किया जाता है कि भूकप से निकलने वाले पिघले पदार्थ ने ही उसे आग बनाना सिखाया होगा अथवा बिजली गिरने से जलते हुये वन मे उसने आग को देखा होगा। अत मे चकमक पत्थर को रगड कर उसने आग जलाई होगी और उसमे ईंधन डालकर उसे प्रज्वलित रखा होगा। अग्नि का अन्वेषण प्रस्तर युग की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। आग ने अँधेरे पर विजय पा ली और मनुष्य विना डर के धरती पर सोने लगा, क्योकि जानवर आग से डरते थे।

बोलचाल—बोलचाल का प्रारम्भ कैसे हुआ, यह एक ऐतिहासिक पहेली है तथापि मनुष्य के क्रमिक विकास के किसी चरण मे भय अथवा भूख के इशारो, प्यास अथवा विपत्ति ने ही सीधी-सादी बोलचाल की भाषा को जन्म दिया होगा।

धार्मिक विश्वास—इन सबके अतिरिक्त प्रस्तर युग के मानव ने मृत्यु के वाद की जिंदगी मे कोई आस्था रखी होगी क्योकि यह पाया गया है कि शव के साथ भोजन, वस्त्र, जल आदि भी गाड दिया गया था। डा० विल डूराट का कथन है, "जब हम समूचे प्रस्तर युग पर ध्यान देते हैं तो एकाएक मुँह से निकल पडता है—वह खोजो और आविष्कारो की यह कैसी निराली सूची है। इससे पहले इस विश्व मे ऐसा कुछ भी देखने मे नही आया था।"

नवपाषाण (निओथिलिक) युग—"निओथिलिक" शब्द की उत्पत्ति दो ग्रीक शब्दो "निओ" अर्थात् नव और "लिथोप" अर्थात् प्रस्तर से हुई है जिसका अर्थ है "उत्तर पाषाण काल"। यह इस नाम से यो जाना गया, क्योकि इस युग मे नई और

बेहतर क्षमता का उपयोग किया गया ताकि पत्थर के औजार, हथियार और पुर्जे बनाये जा सके। इस युग का नाम खाद्य-उत्पादको अथवा "कृषको का युग" भी दिया गया है। प्रो० डेविस के अनुसार "उत्तर पाषाण मानव" आज के मनुष्य के सीधे पूर्वज हैं।

नवप्रस्तर मानव की निम्नलिखित उपलब्धियाँ थी —

आवास—उत्तर पाषाणकाल मे मनुष्य ने आवास के रूप मे गुफा का त्याग करके एक ऐसे प्लेटफार्म पर लकडी का मकान बनाया जो झील के किनारे पानी की सतह के ऊपर था। ऐसे प्लेटफार्म लट्ठो के सहारे खडे थे। डा० जे० एम० वेस्टेड इस ओर ध्यान दिलाते हैं कि 'वैंगर' स्विटजरलैंड मे लगभग ५०,००० लट्ठे झीलो के चारो ओर गाँवो को सहारा देने के लिये खड़े किये गये थे। उनके मकान सुविधापूर्ण थे और उनमे लकडी का फ़र्नीचर था।

शासन—अधिकाश परिवारो ने अपने मकान पास-पास बनाये थे और वे एक छोटे गाँव के रूप मे थे। कुछ गाँव वाणिज्य तथा व्यवसाय के केन्द्र बन गये थे और शीघ्र ही नगर बन गये। यही पर सरकार का बीज बोया गया जो एक नेता के अतर्गत सगठित हुई। यह उसका कर्त्तव्य था कि वह जीवन तथा सपत्ति की रक्षा करे और उसके एवज मे कर के रूप मे किसानो के फसल का एक भाग पाये। इस प्रकार सरकार अस्तित्व मे आयी।

कृषि—खेती करने की कला को पाषाणकालीन मानव का एक विस्मयजनक परिवर्तन माना जा सकता है। कब और कैसे मानव ने बीज बोये और फसल काटने की कला सबसे पहले सीखी, यह एक रहस्य ही है। हल और फावडा खेती के मुख्य औजार थे। अब लोगो ने खेती के लिये धरती के टुकडे का स्वामित्व लेना प्रारम्भ किया जिसने समाज को दो भागो मे विभक्त किया "भूमिस्वामी" तथा "भूमिहीन"। इससे इन दोनों के बीच एक शाश्वत सघर्ष का प्रारम्भ हुआ—एक ऐसा सघर्ष जो पहले अस्तित्व मे नही था।

पशुओ को पालतू बनाना—कैसे और कब पशुओ को पालतू बनाया जाने लगा और उनका प्रजनन कब शुरू हुआ, यह अधकारपूर्ण है। डा० डुरान्ट का कथन है कि एक विशिष्ट सामाजिक, प्राकृतिक, सामाजिकता ने समझदार तथा वन्य पशुओ के बीच सहयोग का सूत्रपात किया होगा। कुत्ता, बकरी, गाय, सूअर, बैल तथा घोडा वे मुख्य पशु थे जो पालतू बनाये गये। लगता है, पाषाण काल के मानव ने गाय के दूध को आहार बनाया था।

बुनने की कला—बुनना मानव की प्रारभिक कलाओ मे से है। **उसने यह कला मकडी के जाल बुनने अथवा पक्षी के घोंसला बनाने से सीखी होगी। डा बिल डुराट का कहना है, पत्तियो के छाले और घास के रेशों को कपडो, दरियो और कसीदाकारी**

के लिये बुना गया। कई बार इनकी बुनाई इतनी उत्तम हुई कि आधुनिक मशीनो का साधन होते हुए भी वह खूबी नही देखी जा सकती। इसके उपरात उसने ऊन तथा अन्य रेशो को विभिन्न सुन्दर परिधानो मे बुनना शुरू किया। उन वस्त्रो को मोहक रगो से रगा गया।

मिट्टी के बतन बनाने की कला—कब और कैसे मनुष्य ने मिट्टी के वर्तन बनाने शुरू किये यह एक अन्य ऐतिहासिक रहस्य है। शायद गीली मिट्टी के आकस्मिक रूप से आग लग जाने से तप जाने के बाद अथवा सूर्य की गर्मी से तप जाने के बाद मनुष्य ने मिट्टी से वर्तन बनाने की कला सीखी। पहले तो इन वर्तनो की उपयोगिता मात्र थी, बाद मे उसे कलात्मक रूप देने के लिये गीली मिट्टी को पकाने से पहले कुम्हार ने उसमे कुछ सादी आकृतियाँ बनायी। इसके उपरात चित्रकार वर्तनो पर कुछ सुन्दरतम आकर्षक चित्र खीचने लगे।

लिखने की कला—लिखने की कला मानव नस्ल ने कैसे और कब सीखी, यह अभी तक ज्ञात नही तथापि इसकी बहुत सभावना है कि कुम्हार ने अपनी पहचान अथवा सजावट के लिए गीली मिट्टी पर नाखून अथवा अंगुलियो के द्वारा अपना चित्र अकित किया हो। शायद इससे ही मनुष्य को लिखने की कला का सकेत मिला। प्रोफ़ेसरो—हेस, मून तथा हेलैंड—का कथन है कि "अतएव जिस गीली मिट्टी ने कुम्हार को कलश दिया, शिल्पकार को आकृतियाँ दी और भवन निर्माणकर्त्ता को ईंटे दी, उसी ने लेखक को भी लेखन की सामग्री दी।"

नये आविष्कार—आटा पीसने की चक्की तथा सान देने का पत्थर उत्तर पाषाण काल के मनुष्य का मूल आविष्कार था। इनकी सहायता से वह अन्य पत्थरो को भी चिकना और तेज बना सका। कुल्हाडी, एक अन्य आविष्कार थी जिसने उसे सभ्यता की ओर प्रगति करने मे वनो का स्वामित्व प्रदान किया। पहिया उसका तीसरा आविष्कार था। पहिया का आविष्कार उद्योग तथा सभ्यता के लिए अनिवार्यों मे से था। इसके द्वारा मनुष्य भारी मात्रा मे वस्तुओ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने लगा। क्रमश वह उसका अन्य उपयोग भी करने लगा। इसने अन्य आविष्कार भी किये जिनमे चरखी, उत्तोलन दड, सीढी, छेनी, हसिया, करघा, मछली फँसाने की बसी और सूई उल्लेखनीय हैं।

धार्मिक विश्वास—उत्तर पाषाण काल के मानव की कुछ धार्मिक मान्यताएँ थी। सूर्य पूजा तथा पूर्वज-पूजा एक बहुत सामान्य रिवाज था। इसके अतिरिक्त युद्ध देवता को अच्छी फसल के लिये अथवा युद्ध मे विजय पाने के लिये मानव बलि देने का भी रिवाज था।

(य) सभ्यता का ऐतिहासिक प्रारम्भ

ऐतिहासिक सभ्यता का प्रारम्भ धातु के साथ और लेखन कला के अन्वेषण के साथ ईसा से ५००० वर्ष पूर्व की समाप्ति के आस-पास हुआ।

धातु युग—कब और कैसे धातु का उपयोग मनुष्य ने प्रारम्भ किया, यह अधकारपूर्ण ही है। उत्तर पाषाण काल के बाद ईसा से ४ हजार वर्ष पूर्व धातु युग का आरम्भ हुआ। मनुष्य ने जिस पहली धातु को जाना, वह थी तांबा। उसके बाद आया कांसा और फिर आया लोहा।

चूंकि तांबा एक मुलायम धातु है, उसे युद्ध तथा शांति के भारी कामो के लिये प्रयोग मे नही लाया जा सकता था। अतएव उसे मजबूत बनाने के लिये उसमे एक मिलावट की जरूरत पड़ी। जैसे तैसे सदियों बाद किसी ने तांबा को जस्ता या टिन से मिलाने की कला सीखी और इस प्रकार कांसा या पीतल का निर्माण हुआ। कांसा की खोज ५००० वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा से ३ हजार वर्ष पूर्व से अधिक पुरानी नही है और यह खोज सुदूर पूर्व मे हुई। इसके बाद लोहा मनुष्य के काम आने लगा।

उत्तर पाषाण काल से धातु युग के बीच की अवधि मानव की प्रगति मे एक और महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुआ। लकड़ी तथा पत्थर के औजार बनाने मे मस्तिष्क को अधिक सोच-विचार नहीं करना पड़ता था। किन्तु धातुओं से कृषि के औजार तथा हथियार बनाने के लिये अमूर्त पर विचार करके उचित योजना बनाने की आवश्यकता थी। धातुओं की खोज के बिना इस्पाती भवनों, बड़े-बड़े पुलो, विशाल कारखानों की आज कल्पना भी नही की जा सकती थी। इसी युग, सुदूर पूर्व मे लिखने की कला का भी विकास हुआ। इस प्रकार ऐतिहासिक सभ्यता की नीव डाल दी गई थी।

सभ्यता का प्रारम्भ नदी-घाटियों से हुआ—सभ्यता की प्रक्रियाओ का प्रारम्भ तथा विकास सर्वप्रथम मिस्र, मेसोपोटामिया, फारस, चीन तथा भारत मे हुआ। हाँ, इन प्राचीन अन्वेषणो का काल बता पाना अत्यत कठिन है। साथ ही यह भी बतलाना उतना ही कठिन है कि पूर्व का कौन-सा क्षेत्र मानव सभ्यता का सबसे पहला स्थान था। तथापि इन देशो मे सभ्यता का प्रारम्भ तथा विकास नदियो के तटो पर हुआ जिसके दो मूल कारण थे।

अच्छी और उपजाऊ जमीन की उपलब्धि—सभ्यता की पूर्व आवश्यकता है विस्तृत, अच्छी और उपजाऊ जमीन की सरलता से उपलब्धि ताकि किसान आवश्यकता से अधिक खाद्यान्न पैदा कर सके। खाद्यान्न की प्रचुरता ने मनुष्य को जीने के लिए सघर्ष करने से मुक्ति दी और उसे बेहतर तथा सुखमय जीवन के लिए सोचने का पर्याप्त समय मिलने लगा।

अनुकूल जलवायु—सभ्यता के विकास के लिए दूसरी अनिवार्य शर्त है अनुकूल जलवायु की जो किसान को बारह मास बाहर काम करने दे और प्रोत्साहित करती रहे।

उपरोक्त दोनो शर्तों को मिस्र की नील घाटी, मेसोपोटामिया की टिग्रिस और यूफेटेट्स घाटी, चीन की यांगसीक्यांग और ह्वांगहो घाटी और भारत की सिंधु घाटी ने पूरा किया था। अतएव सभ्य समाज का सबसे पहले उद्‌भव यहीं हुआ।

प्रश्नावली

१ सभ्यता का आप क्या अर्थ निकालते हैं ?

२ पृथ्वी के क्रमिक विकास को समझाइये।

३ पृथ्वी पर जीवन के क्रमिक विकास के विभिन्न सिद्धातो की चर्चा कीजिए।

४ "इतिहास" तथा "पूर्व-इतिहास" के बीच सामान्य अतर है, स्पष्ट कीजिए।

५ पूर्व पाषाण काल की विभिन्न नस्लो की चर्चा कीजिए।

६ पूर्व पाषाण काल मे मानव की विभिन्न उपलब्धियो की चर्चा कीजिये।

७ उत्तर पाषाण काल से आप क्या समझते हैं ? उत्तर पाषाण काल के मानव की क्या उपलब्धियाँ थी ?

८ निम्नलिखित पर छोटी टिप्पणियाँ लिखिये —

(अ) पृथ्वी का क्रमिक विकास,

(ब) क्रमिक विकास वाले सिद्धात के अनुसार पृथ्वी पर जीवन का क्रमिक विकास,

(स) जावा का नर बदर,

(द) हैडलबर्ग मानव,

(क्ष) पिल्टडन मानव,

(त्र) निन्डरथल मानव तथा

(ज्ञ) क्रो-मैग्नान मानव।

———

अध्याय २

मिस्री सभ्यता

(अ) भूमिका

मिस्र मनोहारी देश—मिस्र प्राचीन सभ्यता के गढ़ों में से एक है। यह एक मनोहारी देश है जहाँ पर मनोरंजक और कलात्मक स्मारक और प्राचीन जीवन के अवशेष देखे जा सकते हैं। विशाल पिरामिड, [illegible] स्फिंक्स, रोसेटा प्रस्तर, चित्रकला और लेखन सामग्री तथा मिस्री [illegible] सभी की एक कहानी है, जो प्राचीन मिस्रवासियों की सफलताओं और असफलताओं के बारे में बतलाती है।
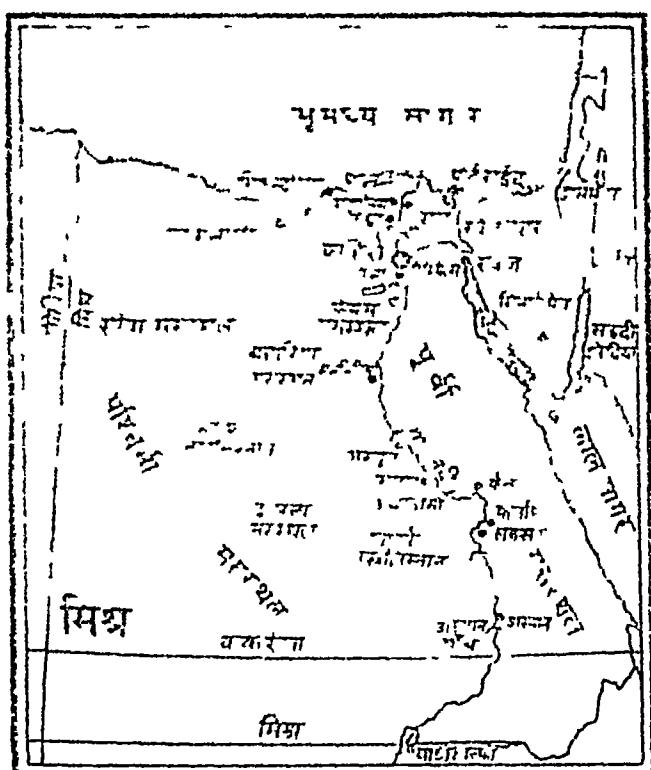
मिस्र की भौतिक रचना

सभ्यता पर भौगोलिक प्रभाव—प्राचीन मिस्र मे मानव जीवन बहुत कुछ वहाँ की भौगोलिक स्थितियो से प्रभावित था। दो रेगिस्तानों, पश्चिम मे सहारा और पूर्व

मे सिनाय के बीच से बहती हुई नील की घाटी ने, न सिर्फ मिस्रवासियो को भोजन उपलब्ध कराया, उसने उन्हे कैलेंडर भी प्रदान किया। उसने जहाजरानी, व्यापार और यातायात की सुविधाएँ प्रदान की। इन रेगिस्तानो ने मिस्र को शेष ससार से अलग कर दिया, अतएव मिस्र को अपनी मूल्यवान सभ्यता का विकास करना पडा।

(ब) मिस्र का सामाजिक योगदान

मिस्र का नर शासक 'फाराओ' नाम से जाना जाता था। वह एक दिव्यात्मा माना जाता था जिसकी तुलना किसी मानव से नही की जा सकती थी।

मिस्री समाज का ढाँचा सूची स्तभ के रूप मे था और छ सामाजिक वर्गों मे विभाजित था। इसके शिखर पर थे शाही परिवार के सदस्य, शाही अगरक्षक अधिकारी और राज दरबार के लोग जो कुलीन वर्ग के थे। कुलीन वर्ग के नीचे आता था सैन्य वर्ग, जो राज्य की प्रभावशाली शक्ति और सत्ता का प्रतीक था। सैनिक के साथ ही विशिष्ट माने जाने के लिए एक अन्य आवेदनकर्त्ता था—मदिर का पुजारी। पुजारी वर्ग को समाज मे अत्यत शक्तिशाली और सम्मानित समझा जाता था। प्राचीन मिस्री समाज के सामाजिक क्रम मे सीढी की निचली चूडी पर चौथा स्थान प्राप्त था, मध्यवर्ग को। इसमे वे स्वतत्र व्यक्ति थे जो अत्यत कुशल, मजदूर, कारीगर, व्यवसायी और दूकानदार थे। इनकी स्थिति भी काफी अच्छी थी। उनसे निचले वर्ग मे भूमि से लगे दास थे जो शाही भूमि तथा मदिरो से जुडे हुए थे। भूमि का स्वामित्व बदलने के साथ-साथ इनके स्वामी भी बदल जाया करते थे। इन्हें अपने स्वामियो के प्रति अनेक कर्त्तव्य करने पडते थे। सामाजिक सीढी की निम्नतम चूडी पर था दासवर्ग। ये पुरुष तथा स्त्री दोनो हुआ करते थे, किंतु सभी विदेशी अथवा युद्धबन्दी थे।

सुख-सुविधायें—उच्चवर्ग का जीवन सुख-सुविधापूर्ण था जैसा कि मिस्री साहित्य तथा स्मारको से प्रकट होता है। उनके सुन्दर बँगले और बगीचे, उनके कलात्मक फर्नीचर और चाकू-छुरी, भीतरी कमरो की सजावट और उनके सुन्दर चित्र तथा मूर्तियाँ जो उनके घरो को प्रशसित करती थी, न सिर्फ उनके वैभव की अपितु उनकी सुरुचि की प्रतीक थी।

महिलाओं की स्थिति—मिस्री समाज की असाधारण विशिष्टता थी। उस समाज मे महिलाओ की भी बेजोड स्थिति थी। मिस्र ही इतिहास मे पहला ऐसा देश है, जिसने सर्वप्रथम महिला शासक को जन्म दिया। वह थी महारानी हात्सपेट जो एक योग्य, कुशल और अत्यत सफल शासक थी। महिलाओ को वहाँ सपत्ति तथा उत्तराधिकार के भी अधिकार प्राप्त थे। डा० जे० ई० स्वेन के अनुसार 'मिस्र मे महिलाओ को जो स्थान प्राप्त था, वह किसी भी अन्य प्राचीन सभ्यता मे नही पाया जाता और उससे अधिक अधिकार महिलाओ को हाल ही मे प्राप्त हुए हैं।'

(स) मिस्र का आर्थिक योगदान

कुदाली सभ्यता—हल की सभ्यता—प्रारम्भ मे खेती कुदाली की सहायता से हाथ से की जाती थी जिससे गति धीमी होती थी तथा थकावट आ जाती थी। अत मे किसी बुद्धिमान मिस्री किसान ने कुदाली मे एक लम्बा डडा लगाकर उसे जुए के सिरे पर लगाकर दो बैलो के कधो पर डाला। इस प्रकार कुदाली सभ्यता हल की सभ्यता

प्राचीन मिस्र की खेती एव पशुपालन

मे परिवर्तित हुई। इस प्रकार मिस्रियो ने हमारी आज की व्यापक कृषि प्रणाली की नींव डाली। वे गेहूँ, जौ, प्याज, सेम, लहसुन और विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ और फल उपजाने लगे।

दस्तकारी, वाणिज्य और व्यापार—प्राचीन मिस्रवासी विभिन्न प्रकार की दस्तकारी और वस्तुओ का निर्माण करने के लिए विकास मे अग्रगामी रहे। हजारो जौहरियो, कुम्हारो, बढ़इयो, पत्थर तराशने वालो, राजगीरो, चित्रकारो, स्वर्णकारो और अनेक प्रकार के कुशल मजदूरो और कारीगरो ने जीवन को विलासमय, सुविधा-पूर्ण और पूर्ण बनाया। वाणिज्य और व्यापार, वस्तु-विनिमय प्रणाली द्वारा होता था। मिस्री व्यापारी जो देश मे जाते उनके उत्पादनो से अपने देश के उत्पादनो का विनिमय करते।

धातुओं की खोज और उपयोग—सभवत प्राचीन मिस्र निवासियो द्वारा ही धातुओ की खोज सर्वप्रथम की गयी। सबसे पुरानी धातु जिसे मिस्रवासियो ने खोजा—ताँबा थी। उसके बाद ही पीतल, काँसा और लोहा खोजा गया। डा० जे० एच० बेस्टेड लिखते हैं—आधुनिक इस्पाती भवन, हजारो मशीनो की आवाज से हरहराते विशाल कारखाने, कभी अस्तित्व मे ही नही आते, यदि पर्यटक मिस्रवासी लोहे की छोटी गोली इतने समय पूर्व उस ऐतिहासिक दिन को लेकर नहीं घूम रहे होते।

(द) मिस्र का राजनीतिक योगदान

केन्द्रीय सरकार—प्राचीन मिस्रवासियो ने समूची नील घाटी के लिए एक केन्द्रीय सरकार बनायी हुई थी। फारोह ही पूर्ण सत्ताधारी तथा स्वय ही उच्चतम न्यायालय भी था। वह अपने विस्तृत राज्य पर अपने विशाल भवन मे बैठा हुआ शासन करता था। उस भवन मे सरकार के विभिन्न दफ्तर थे। फारोह को उसकी

प्रजा पृथ्वी पर भगवान का प्रतिनिधि मानती थी और उसके प्रति सभी की श्रद्धा थी। थटमोस ३ जो ई० पू० १४७९ से १४४७ तक मिस्र का शासक था। मिस्र का नेपोलियन माना जाता था।

वरिष्ठ परिषद—फारोह की एक परामर्श समिति थी जिसे सार अथवा महान् लोग कहते थे। किंतु उसका परामर्श बाध्यकारी नहीं था।

वीजियर—शासन का प्रमुख वीजियर होता था जिसे फारोह नियुक्त करता था। वह प्रधानमंत्री, मुख्य न्यायाधीश और राष्ट्रीय कोष के प्रमुख के रूप मे कार्य करता था।

स्थानीय और केन्द्रीय दफ्तर—दो प्रकार के अधिकारी वीजियर की सहायता किया करते थे। वे थे स्थानीय अधिकारी तथा केन्द्रीय अधिकारी। स्थानीय अधिकारी कर एकत्रित करते और दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमे देखते। केन्द्रीय दफ्तर राजा के दस्तावेज और हिसाब रखते। प्राचीन मिस्र मे कानूनी अदालतो का उचित विकास हुआ था। स्थानीय अदालतो द्वारा दीवानी तथा फौजदारी दोनो प्रकार के मुकदमे चलाये जाते थे। मेम्फिस थेब्स और हेलियोपोलिस मे उच्च अदालते भी थी। गुनाहगारो को कडी सजा दी जाती थी जो आज असभ्यतापूर्ण मानी जायेगी।

डाक प्रणाली—एक प्राचीन मिस्री प्रतिलिपि मे कहा गया है—मुझे डाक वहन करने वाले के द्वारा पत्र लिखना। उसमे पता चलता है कि उस काल मे नियमित डाक सेवा का विकास हो चुका था।

महारानी हात्सपेट—मिस्र ही पहला विदित प्राचीन देश है जिसने संसार को एक महान् महिला शासक को जन्म दिया। वह शाही युग की महारानी हात्सपेट थी। उसने २१ वर्ष (१५०१ ई० पू० से १४७९ ई० पू०) तक मिस्र पर शासन किया। उसने मदिर बनवाये, वाणिज्य का विकास किया और कारनक नगर को सौदर्यशाली बनाया। वह जनता के सामने सैनिक वेशभूषा और नकली दाढी मे आती थी। उसे सर्वप्रथम सूर्यपुत्र कहा जाता था।

महारानी हात्सपेट

(य) साहित्यिक और वैज्ञानिक योगदान

लेखन-कला और लेखन सामग्री—प्रारम्भ मे "चित्रमय" लेखन ही होता था अर्थात् प्रतीक चित्रो का ही उपयोग होता था जिनसे अर्थ निकाला जा सकता था। उसके
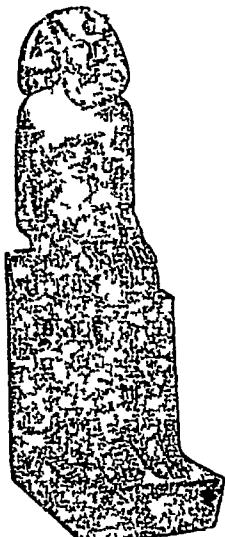
वाद आयी ध्वनिलेखन । अत मे मिस्री निवासियो ने एक २४ अक्षरो की वर्णमाला का आविष्कार किया । उससे लेखन कार्य सरल और सादा हो गया । मानव द्वारा ज्ञात वह पहली वर्णमाला थी । इस वर्णमाला का नाम था "हिरेटिक" । इस सदर्भ मे १७९८ मे नैपोलियन के सैनिको द्वारा मिस्र मे पाये गये और फ्रास लाये गये रोसेटा पत्थर और काला पत्थर का उल्लेख किया जा सकता है । उसमे तीन भाषाओ मे वाक्य खुदे हुए हैं—

(१) हिरोग्लाफिक जिसे सिर्फ मिस्र के धर्मगुरु ही कह सकते थे । (२) हिरेटिक जो लोकप्रिय मिस्री हस्तलिपि था और (३) ग्रीक फ्रेच विद्वान् शैवपोलियन को उसको पढने मे लगभग दो शतक लग गये ।
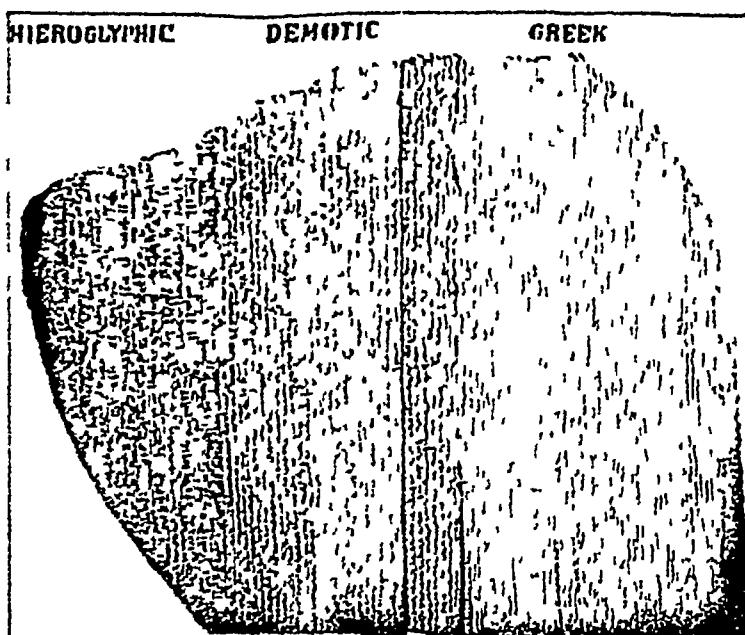
रोसेटा पत्थर और काला पत्थर

मानव इतिहास लेखन-सामग्री का सवसे पहले पता लगानेवाले प्राचीन मिस्रवासी ही थे । (१) स्याही—उन्होंने पानी मे सब्जी का गोद मिलाकर उसे गाढा किया फिर चूल्हे पर के वर्तनो मे लगे कालिख को उसमे भली भाँति मिलाया । इस प्रकार एक उत्तम स्याही तैयार हो गयी (२) पेन—उन्होने नरकट की टहनी को पैना कर दिया जिसने कलम का काम किया । (३) कागज—नील नदी के किनारे उन्होंने नरकट का पौदा देखा । ये पीले होते थे । इन्हे काटा जा सकता था और दवाकर इनकी चद्दरे वनायी जा सकती थी जिन्हे पालिश करके वाद मे आवश्यक लवाई और चौडाई मे काटा जा सकता था । अतएव कागज का पूर्व नाम "पैपीरोस" आज भी अपभ्रश के वाद अग्रेजी मे "पेपर" कहा जाता है ।

ज्ञान और साहित्य—प्राचीन मिस्रवासियो ने अपने आपको महान् साहित्यिक साबित किया । प्राचीन मिस्र के ग्रन्थालयो मे कागज को मोडकर मर्तबानो मे रखा पाया गया है और ये व्यवस्थित ढग से रखे पाये गये हैं । कागजो मे ऐतिहासिक वर्णन, कहानियाँ, जादू के नुस्खे, कानूनी दस्तावेज, भक्तिगान, प्रेम तथा युद्ध, राजा-रानियो तथा राजकुमार, राजकुमारियो के प्रेम पत्र, नैतिक और वेदात की बाते तथा नाटक लिखे हुये है । डा० डुराट के अनुसार यह साहित्य वास्तविकतापूर्ण व उमग और उत्साह से पूर्ण था ।

वैज्ञानिक सहयोग—मिस्र मे विज्ञान की विभिन्न शाखाओ जिसमे गणित है और औषधि का विकास भी हुआ था ।

खगोल शास्त्र—खगोलशास्त्री धर्मगुरु थे । एस० एस० विलियम्स के अनुसार उन्होंने पृथ्वी के एक चौकोर सदूक जैसा होने की कल्पना की जिसमे कीलो पर पर्वत और उसके ऊपर आकाश उठाया हुआ था । नील मे पानी का बहाव कब तेज होगा, इसकी भविष्यवाणी वे कर सकते थे । हजारो वर्षों तक वे नक्षत्रो की स्थिति और गति का पता लगाते रहे ।

सूर्य कैलेंडर—मिस्रवासियो ने एक नया कैलेडर (सूर्य कैलेडर) बनाया जिसमे वर्ष को मौसमो के अनुसार तीन भागो मे बाँटा गया । प्रत्येक ४ माह का था । पहला मौसम था "जल-प्रलय" का अर्थात् वह काल जब नील नदी मे बाढ आ जाती थी और फिर उसका पानी उतर जाता था, दूसरा "आने वाला समय" जब पौधे उगते थे और कृषि हो सकती थी तथा तीसरा शरदकाल, फसल काटने का और इकट्ठा करने का समय । इस प्रकार पूरा वर्ष १२ महीनो मे बाँटा गया था । माह ३० दिनो का था । आखिरी मे ५ दिन जोडकर वर्ष उन्होंने ३६५ दिनो का कर दिया । अतिरिक्त ५ दिन छुट्टी के दिन थे जबकि समारोह मनाया जा सकता था, विश्राम किया जा सकता था । यह महत्त्वपूर्ण है कि मिस्र का सूर्य कैलेडर लगभग सही था । उसमे सिर्फ छ घटे कम थे, वर्ष मे एक चौथाई दिन ।

पालरेमो प्रस्तर—वर्ष को एक दूसरे से पृथक् करने के लिये प्राचीन मिस्र-वासियो ने हर वर्ष को उस वर्ष घटित किसी महत्त्वपूर्ण घटना के नाम पर देना शुरू किया । बाद मे उन्हे यह अधिक सुविधाजनक लगा कि प्रत्येक शासक के वर्ष भी सख्या को गिनकर उसकी तिथि निश्चित करे, उदाहरणार्थ अमुक राजा के शासन के प्रथम वर्ष मे अथवा दसवे वर्ष मे आदि आदि , इन सबका उल्लेख एक पत्थर मे मिलता है । पालरेमो सिसली के सग्रहालय मे पाया गया है और इसी कारण इसका नाम पालरेमो प्रस्तर दिया गया है ।

छायाघडी—खगोलशास्त्र के ज्ञान से प्राचीन मिस्रवासी ईसा से १३०० वर्ष पूर्व एक छायाघडी का निर्माण करने मे भी समर्थ हुए । यह घडी अत्यन्त व्यावहारिक

थी और एक पटरी एक दूसरे को काटती हुई एक वस्तु से "क्रासपीस" से बनी थी। पटरी का एक सिरा "क्रासपीस" से कुछ ऊँचाई पर जुडा हुआ था।

प्रात काल "क्रासपीस" पूर्व की ओर मोड दिया जाता था और उसकी छाया पटरी पर पडती थी जिस पर छ अक लिखे हुये थे जो प्रत्येक घन्टे के लिये थे। ज्यो-ज्यो सूर्य ऊपर उठता, पटरी पर पडने वाली "क्रासपीस" की छाया छोटी होती जाती। इस प्रकार दोपहर तक दिन के छ घन्टो का पता उस पटरी से लग जाता था। दोपहर को उसे पश्चिम की ओर कर दिया जाता था और पहले की तरह के बाद छ घन्टो का पता लगता चलता था। इस प्रकार दिन के १२ घन्टो का पता चल जाया करता था।

छायाघडी
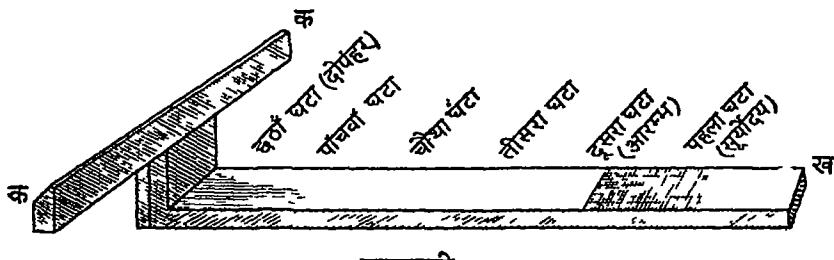
शरीर रचना—प्राचीन मिस्रवासियो ने शरीर रचना के बारे मे भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनका विश्वास था कि मानव-शरीर की रक्त-नलियो मे वायु, जल तथा द्रव का प्रवाह था। उनके अनुसार हृदय ही प्राणी की शक्ति का प्रणेता था। प्रवाह-प्रणाली का वही केन्द्रविन्दु माना जाता था।

गणित—गणित शास्त्र का प्राचीन मिस्र मे पर्याप्त विकास हुआ लगता है तभी वे विशाल पिरामिडो का निर्माण कर सके जिनके निर्माण मे गणित की गणना पर पूरा अधिकार आवश्यक था।

रेखागणित—मापने के बारे मे मिस्रवासियो ने असाधारण सफलता प्राप्त कर ली थी। वे त्रिभुजो, चतुर्भुजो, समकोण चतुर्भुजो, वृत्तो, घनो आदि को माप सकते थे। पीपो के घनत्व और गोलार्द्ध की मात्रा को भी माप सकते थे। उन्होंने वृत्त की परिधि का उसके व्यास से ३ १६ का अनुपात निकाला। जवकि आधुनिक गणितज्ञ ३ १६ से चार हजार वर्षों मे ३ १४१६ तक की प्रगति कर सका है।

उन्होंने गणित और रेखागणित के बीच की क्रमिक प्रगति का पता लगाया और वच्चो के लिये गिनती गिनने के "एवेक्स" की भी खोज की।

गणित—प्राचीन मिस्रवासियो ने गणित क्रियाओ—जोड, वाकी, भाग के तरीको की खोज की, किन्तु गुणा करने का तरीका नहीं खोज पाये। अतएव गुणनफल जोड करने से ही पाया जा सकता था।

भारी आँकडे—मिस्रवासी भारी आँकडो का प्रयोग करते थे । १ के लिये एक पाई, २ के लिए दो पाई, ९ तक के लिए नौ पाइयाँ और १० के लिए नया चिह्न ०, दस के दो चिह्न २० के बराबर, दस के तीन चिह्न ३० के बराबर और दस के नौ चिह्नो का अर्थ ९० होता था तथा १०० के लिए एक नया चिह्न था । सौ के दो चिह्न *का अर्थ २०० और सौ के तीन चिह्नो का अर्थ ३०० होता था । इस प्रकार सौ के नौ* चिह्नो का अर्थ ९०० होता और तब १००० का नया चिह्न होता था । अन्त मे अपने सिर पर ताली देते हुए मनुष्य के चित्र का अर्थ होता था १०,००,००० । इस चित्र का भाव इतनी बडी सख्या पर आश्चर्य प्रकट करना था ।

भाग—भाग के बारे मे मिस्रवासियो को कुछ कठिनाइयाँ हुई थी । सभी भागो को उन्हे तोडना पडता था । जिसे अधिक सख्या सूचक की एक शृखला बनायी जाती थी । प्रत्येक मे एक सख्यासूचक होता था तभी उनका गणित सम्बन्धी गणनाओ मे प्रयोग हो पाता था । उदाहरणार्थ $\frac{३}{४}$ को समझाने के लिये $\frac{१}{२} + \frac{१}{४}$ लिखते थे । इसका अपवाद सिर्फ $\frac{२}{३}$ भाग था जिसे वे वैसा का वैसा ही प्रयोग मे लाते थे ।

बीजगणित—गणित की इस शाखा मे प्राचीन मिस्रवासियो ने बहुत कम प्रगति की थी । वे पहले डिग्री के बीजगणित के समीकरण जानते थे ।

चिकित्सा—प्राचीन मिस्र का गौरव उसकी औषधि मे है । इसमे नि सदेह वे प्रणेता थे । गणित के समान ही इसकी शुरुआत भी धर्मगुरुओ से हुई और उसका उद्भव भी तावीजो और टोनो से हुआ । तान्त्रिक धर्मगुरुओ ने रोग को शरीर पर प्रेतात्माओ का आक्रमण माना । अतएव उसकी चिकित्सा तावीजो और जादू-टोनो से की गयी, जो जन सामान्य मे टिकिया की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय थी । इसके पश्चात् सामान्य चिकित्सको, शल्य-चिकित्सको और सभी प्रकार के विशेषज्ञो का विकास हुआ ।

चिकित्सा प्रतिलिपि—चिकित्सा और शल्य-क्रिया से सम्बन्धित अनेक प्रतिलिपियो को खोजा गया है जिन्हे दो श्रेणियो मे विभाजित कर सकते है ।

१ वे जो वास्तव मे चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तके हैं ।

२ वे जो प्रचलित और लोकप्रिय जादू-टोने के नुस्खो से सम्बन्धित है ।

एडविन स्मिथ प्रतिलिपियाँ चिकित्सा सम्बन्धी अनेक प्रतिलिपियो को खोजा गया है जिनमे से एक १५ फीट लम्बी हैं और उसकी तिथि ई० पूर्व १६०० है । यह उस काल से भी पहले की प्रतिलिपियो पर आधारित है । चूँकि इसकी खोज एडविन स्मिथ ने की थी, उसे एडविन स्मिथ की प्रतिलिपियाँ नाम दिया गया है । चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित यह ससार की प्राचीनतम ज्ञात प्रतिलिपि है । यह शल्य क्रिया तथा वाह्य चिकित्सा पर एक निबन्ध है ।

रोगों के प्रदान और निदान—प्राचीन मिस्रवासी अनेक रोगो मे पीडित थे जिनमे से कुछ थे रीढ की क्षमा, चेचक, वाल पक्षाघात, रक्तपात, गठिया, आँत रोग। इन रोगो के विरुद्ध वे वृहद् पत्र सहिता से सुसज्जित थे । कुछ मिस्री निदान ग्रीको का ग्रीको से रोमनो को रोमनो से हमे दिये गये ।

(च) आर्थिक और दार्शनिक योगदान

प्राचीन मिस्र से धर्म का प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था।

जडात्मवाद और विश्वासवाद—प्राचीन मिस्र निवासी जड पदार्थों तथा वृक्ष, पर्वत, नदी और मूर्ति के आराधक थे। उनका विश्वास था कि इन जड पदार्थों पर शक्तिशाली ऐसी आत्माओ का प्रभुत्व है **जिनका आदेशो द्वारा मानव गतिविधियो का सचालन होता है। इसे जडात्मवाद कहते हैं। विश्वासवाद का अर्थ है पशुओ-पक्षियों की पूजा**। प्राचीन मिस्रवासी पक्षियो और लोमडी, वैल, वकरी, मगरमच्छ, सर्प, गाय, विल्ली, कुत्ता आदि की भी पूजा करते थे।

बहुदेवत्ववाद बहुदेवत्ववाद का अर्थ है अनेक देवताओ की आराधना । वैसे तो प्राचीन मिस्रवासी अनेक देवताओ को पूजते थे, किन्तु दो उनमे विशिष्ट थे। एक - रा-एमान दूसरे ओसिरिस रा-एमान बहुदेवता था जो आकाश मे अपनी सुनहरी नौका मे विचरण करता था। रा को सर्वोच्च देवता माना जाता था और मिस्री धर्मशास्त्रो मे उसका सर्वोच्च स्थान था। ओसिरिस इस देवता का पुत्र था जो नील मे वाढ लाता था, अन्नो को उपजाता था इसकी तुलना हम अपने यम से कर सकते हैं। इसिस, होरम और सेट छोटे-छोटे देवता थे। फारोह पृथ्वी पर देवताओ का प्रतिनिधि माना जाता था। अतएव उन्हे असीमित अधिकार प्राप्त था।

मृत्यु के वाद जीवन मे विश्वास—प्राचीन मिस्रवासियो का मृत्यु के वाद जीवन मे दृढ विश्वास था। उनके अनुसार मृतात्मा इस लोक ओसिरिस के राज्य को जाती थी। वहाँ ओसिरिस मृत व्यक्ति की आत्मा 'का' को एक पख से तौलता था। यदि 'का' अपने सत्कार्यों के कारण उस पख से वजन मे हल्का हुआ तो वह स्वर्ग के सभी आनन्द लूट सकेगा। किन्तु यदि वह कुकर्मो के कारण वजन मे भारी हुआ तो उसे नर्क की यातनाएँ भोगनी होगी।

आत्मा की यात्रा और मृतकों की पुस्तकें—यह विश्वास भी किया जाता था कि आत्मा पृथ्वी से 'सत्य के कक्ष' तक की यात्रा जहाँ अतिम निर्णय दिया जाता है, वडी खतरनाक है। अतएव कुछ निर्देश, सम्मोहन और प्रार्थनाएँ वनायी गयी थी। जिन्हे एक पुस्तक मे एकत्र किया गया था जिसका नाम था 'मृतको की पुस्तकें'। ये पुस्तकें
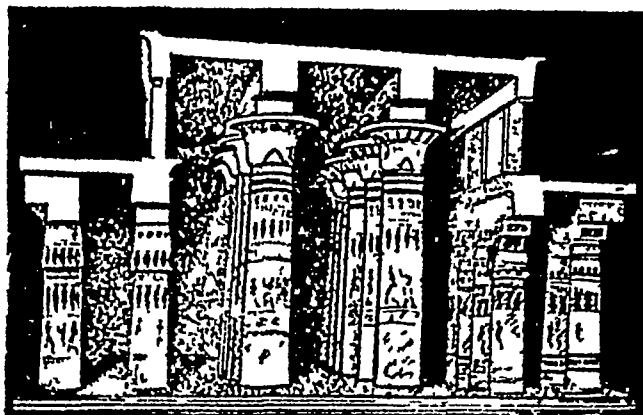
कर्नाक का मन्दिर

लस्कर का मन्दिर देवता होरस की प्रतिष्ठा मे बनवाया गया था। जबकि फिग्ले का मन्दिर देवता इसिस को अर्पित था। इनके अलावा लियोपालिस हारेएल बाहरी ओर आबू सिंबडे मे अन्य बडे मन्दिर थे। ये सभी मन्दिर अपनी भव्यता और विशालता के लिये उल्लेखनीय है।

अखनातून और उसकी पत्नी

मूर्तिकला—मिस्रियो द्वारा मूर्तिकला का अधिक विकास किया गया था। मूर्तियाँ पत्थरो से तराशी जाती थी अथवा लकडी से बनायी जाती थी और उन पर रग अच्छी तरह लगाया जाता था जो कलात्मक उत्तमता और सौदर्य का प्रतीक था। आँखो मे स्फटिक लगाई हुई राजाओ और रानियो की मूर्तियाँ तो अद्वितीय हैं। मिस्री मूर्तिकला के अग्रलिखित अद्वितीय लक्षण थे—

(१) मूर्तिकारो ने फाराह की मूर्तियो का पत्थर एक ९० फीट ऊँचे टुकडे को तराश कर बनाया था जिसका वजन सैकडो टन है। स्फिन्ना महान का १३ फीट ऊँचा ८ इन्च चौडा तथा शरीर की आकृति वाला शरीर १६० फीट लम्बा है।

(२) फाराह की भीमकाय मूर्तियाँ दिखने मे भावशून्य थी।

(३) अशाति इन मूर्तियो की अन्य विशेषता थी।

(४) किम्री मूर्तिकला की अन्य विशेषता शरीर-रचना का अनुपातहीन होना है।

चित्रकला—प्राचीन मिस्र मे चित्रकला स्वतन्त्र रूप से विकसित नही हो पायी। वह भवन निर्माण कला और मूर्तिकला की सहायक कला बनकर रह गयी तथापि मिस्री चित्रकार ने इन्द्रधनुष के प्रत्येक रग का विकास किया। इसकी मुख्य विशेपता गति को चित्रित करना था। चित्रकार ने उडते हुए पक्षियो, वन मे विचरण करते पशुओ, सोती हुई मछलियो को बडी कुशलता से चित्रित किया। कला की वस्तुओ के दोष को ढँकना ही प्राचीन मिस्र की चित्रकला का ध्येय था। इख्लोटन के शासन काल मे और उसके बाद ही इस कला का विकास हुआ।

मिस्रियो ने कुछ छोटी-मोटी कलाओ को भी विकसित किया जैसे कि फर्नीचर की कला, जवाहरात की कला और सगीत की कला।

प्रश्नावली

१ प्राचीन मिस्र के उत्तरदान को समझाइये।

२ प्राचीन मिस्री समाज के सामाजिक ढाँचे की चर्चा कीजिये।

३ प्राचीन मिस्र के आर्थिक योगदान को समझाइये।

४ प्राचीन मिस्र के राजनीतिक योगदान क्या थे ?

५ प्राचीन मिस्र की साहित्यिक और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ क्या थी ?

६ प्राचीन मिस्र के धार्मिक और दार्शनिक विचारो की चर्चा कीजिये।

७ कला और भवन निर्माण कला के क्षेत्र मे प्राचीन मिस्रवासियो की क्या उपलब्धियाँ थी ?

८ निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये —

(१) सूर्य कैलेडर और पालरेमो प्रस्तर,

(२) छायाघडी,

(३) मृतको की पुस्तके,

(४) 'ममी' चिर शव,

(५) हालेटन का एकेश्वरवाद,

(६) पिरामिड,

(७) प्राचीन मिस्र मे मूर्तिकला।

अध्याय ३

मैसोपोटेमियाई सभ्यता

(अ) परिचय

भूगोल का प्रभाव—उपजाऊ धरती, यातायात के साधनो के लिए उपयुक्त नदियो तथा हल्की जलवायु के उपयोगी प्राकृतिक गुणो के कारण प्राचीन मिस्री लोग अपनी निजी सस्कृति तथा सभ्यता का विकास कर सकने मे सफल हुए थे। यही चीजे थीं,
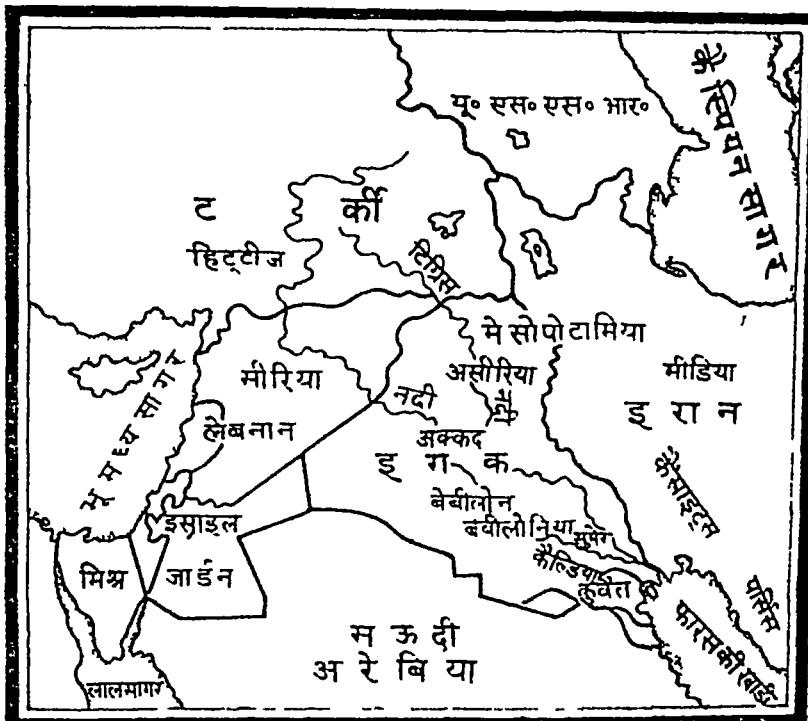
मेसोपोटामिया की स्थिति

जिन्होंने मैसोपोटेमिया के लोगो को अपनी मिश्रित सस्कृति तथा सभ्यता विकसित करने मे सहायता दी। "मैसोपोटेमिया" ग्रीक शब्द है, जिसका अर्थ होता है, दो नदियो के बीच का स्थान, यानी द्वावा, ये दोनो नदियाँ थी, पूरव मे तिगरीस तथा पश्चिम में यूफ्रेटीस। जिन सीमाओ के बीच घिरे देश को आज ईराक कहा जाता है, मैसोपोटेमिया वही पर स्थित था, प्राचीन काल मे "दो नदियो के बीच की धरती" को शिनार की धरती पुकारा जाता था और "ओल्ड टेस्टामेट" के हिब्रुओ ने उसे ईडन उद्यान कह कर पुकारा है।

मैसोपोटेमिया जातियाँ—अनेक जातियाँ लगातार मैसोपोटेमिया पर हमला करती रही, जिसके कारण वहाँ अनेक साम्राज्यों का उत्थान और पतन हुआ। निम्नलिखित पांच जातियाँ ऐसी है, जिन्होंने मैसोपोटेमिया की संस्कृति और सभ्यता को शकल दी।

(१) सुमेरियाई, (२) अक्लादी, (३) ऐमोरियाई, (४) असीरियाई और (५) कालिडयाई।

सुमेरियाई (३५०० ईसा पूर्व-२५०० ईसा पूर्व—इस जाति को सुमेरियाई इसलिए कहा जाता है क्योंकि यूफ्रेटीस टाइग्रिस घाटी के जिस इलाके में यह जाति ३५०० ईसा पूर्व के आसपास रहती थी, उसे 'सुमेर' कहा जाता है। सुमेर नगर के राजा को 'पाटेसी' कहा जाता था, जिसका अर्थ होता है 'ईश्वर का इजारेदार किसान'। अनेक नगरों के शासकों के बीच की प्रतिद्वंद्विता और लड़ाइयों ने नगरों का नाश कर दिया और अतत अरब के उत्तरी भाग से आये अक्लादियो ने २५०० ईसा पूर्व के आसपास उन्हे पूरी तरह पराजित कर दिया।

अक्लादी (२५०० ईसा पूर्व-२३७० ईसा पूर्व)—अक्लादी चरवाहों की जाति थी। उन्होंने यूफ्रेटीस-टाइग्रिस घाटी मे अपने राजा सारगन प्रथम की तरह पहला विशाल साम्राज्य स्थापित किया। उन्होंने सुमेरियाई संस्कृति के अनेक तत्त्व अपनाये, जिसके परिणामस्वरूप सुमेरी-अक्लादी संस्कृति का जन्म हुआ। जब २३७० ईसा पूर्व के आसपास उनकी शक्ति क्षीण हुई तो सीरिया से आयी ऐमोराइट जाति ने उन्हे पराजित कर दिया।

ऐमोरियाई या प्राचीन बैबिलोनियाई (२३७० ईसा पूर्व से २ ८० ईसा पूर्व)—ऐमोरियाइयो ने सबसे पहले बैबिलोन पर अपना प्रभुत्व जमाया। इसीलिए वे प्राचीन बैबिलोनियाई कहलाये। उनका महानतम और शक्तिशाली राजा हामुरबी (२१२३ ईसा पूर्व-२०८० ईसा पूर्व) था, जिसका साम्राज्य बहुत विशाल था और जिसने पूर्णतया केन्द्रीय शासन व्यवस्था की स्थापना की। २०८० ईसा पूर्व मे हामुरबी की मृत्यु के साथ विशाल बैबिलोनियाई साम्राज्य का भी पतन हो गया।

असीरियाई (१२०० ईसा पूर्व ६२६ ईसा पूर्व)—ऐमोरियाइयो के बाद असीरियाई आये, जिन्होंने पहले असूर पर अपना प्रभुत्व जमाया और यह नगर शीघ्र ही उनके साम्राज्य की राजधानी बन गया। बाद मे उन्होंने असूर को छोड़कर निनेवेह को अपनी राजधानी बनाया। असीरियाई जाति स्वभाव से ही लड़ाकू थी, इसलिए तीन शताब्दियो तक जहाँ कही भी वे गये, उन्होंने वर्णनातीत विनाश किया, बरबादी फैलायी और रक्त की नदियाँ बहायी। सारगोन द्वितीय (७२२ ईसापूर्व-७०५ ईसा पूर्व) और उसके बेटे और उत्तराधिकारी सेनाचेरिब (७०५ ईसा पूर्व-६८१ ईसा पूर्व) ने समस्त उपजाऊ धरती को अपने कब्जे मे कर लिया। असुरबानीपाल

(६६० ईसा पूर्व-६२६ ईसा पूर्व) जो कि इसाराहाड्डोन का वेटा और सेनाचेरिव का पोता था, अतिम महान् असीरियाई सम्राट् हुआ ।

खालिडयाई या नवीन वैबिलोनियाई (६०४ ईसा पूर्व-५०० ईसा पूर्व)—असुर-वानीपाल की मृत्यु से मैसोपोटेमिया के दक्षिण पूर्व मे रहने वाले खालिडयाइयो को प्रोत्साहन मिला और उन्होंने असीरियाई शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । उन्होंने निनेवेह के नगर को जलाकर ध्वस्त कर दिया । नेवुचद्रेजर ने वैविलोन नगर को दोबारा वनवाया और इसे नये साम्राज्य की राजधानी के रूप मे पुनर्स्थापित किया । इसीलिए खालिडयाइयो को नया वैविलोनियाई कहा जाता है ।

(व) सुमेरियाई, वैबिलोनियाई तथा असीरियाई समाज

सुमेरियाई और वैविलोनियाई समाज छ सामाजिक वर्गों मे वँटा हुआ था —

राजा—सामाजिक ढाँचे मे सर्वोच्च स्थान राजा का था । उसे धरती पर ईश्वर का एकाकी प्रतिनिधि माना जाता था ।

पुजारी और कवि—राजा के वाद पुजारी-वर्ग का स्थान आता था, जिन्हे समाज मे सर्वाधिक आदर दिया जाता था । वाद मे कवियो को भी इसी वर्ग मे शामिल कर दिया गया । शुरू-शुरू मे कवि ही मदिरो के पुजारी होते थे । वाद मे कवियो को सरकार के नागरिक विभाग मे ऊँचे-ऊँचे ओहदो पर नियुक्त किया जाने लगा ।

अमेलू—सुमेरियाई और वैविलोनियाई समाज के उच्चवर्ग मे राजा और पुजारी कवियो के वाद सामतो का क्रम आता था—जो दरअसल 'बुजुर्ग' होते थे और जन्म से ही सामत भी । पत्रो मे उन्हे 'अमेलू' कहकर सम्वोधित किया जाता था, और हामुरवी-सहिता मे इनका काफी जिक्र आया है । वे वरिष्ट सभा-मडल के सदस्यो के रूप मे वडी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे, वे न्यायाधीश और निर्धारक होते थे, दरबारी और सेना-अधिकारी होते थे । इसीलिए वे प्रतिष्ठावान भी होते थे और अतुल शक्ति के स्वामी भी ।

मुशकेनू—अमेलू के वाद मुशकेनू का क्रम आता था । हामुरवी सहिता मे, मुशकेनू के भी कई सदर्भ आये हैं, जिसका साधारण अर्थ होता है 'निम्नवर्गीय' या 'साधारण' । इस वर्ग मे किसान, कलाकार, कामगार, हस्तकलाकार, व्यापारी, दूकान-दार तथा उत्पादनकर्ता आदि आते थे । आज इन्हे हम मध्यवर्ग के नाम से जानते हैं ।

दास—निम्नतम सामाजिक सीढी पर दासो या गुलामो का स्थान था, वे युद्ध-बन्दी होते थे, जिन्हे जानवरो की तरह खरीदा और वेचा जा सकता था ।

स्त्रियों के अधिकार—स्त्रियो को काफी हद तक स्वतन्त्रता हासिल थी । वे अपनी इच्छा के अनुसार अपना पेशा चुन सकती थी, और ऊँची लेखिकाएँ होती थी । सपत्ति वना सकती थी और अपनी मन-मर्जी का व्यापार कर सकती थी । सक्षेप मे कहे

तो उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा अच्छी थी। लेकिन असीरियाइयो और चाल्डियाइयो के युग मे उनकी प्रतिष्ठा काफी गिर गयी थी।

(स) सुमेरियाई, बैबिलोनियाई तथा असीरियाई आर्थिक जीवन

कृषि, पशु पालन तथा दुग्ध व्यापार—मैसोपोटेमियाइयो का मुख्य व्यवसाय कृषि ही था। वे गेहूँ, जौ, फल और खजूरे उगाते थे। वे पशुओ और भेडो को पालते थे और दूध का व्यापार करते थे।

ऊनी वस्त्रोद्योग—भेडो से ऊन प्राप्त होने से मैसोपोटेमियाइयो को ऊनी वस्त्रोद्योग विकसित करने मे बडी मदद मिली। सुमेरियाई ऊनी वस्त्र सारी सभ्य दुनिया मे बडे चाव से खरीदे और पहने जाते थे।

सुमेरियाई कलाएँ—खूबसूरत आभूषण, बढिया धातु की चीजे, चमडे का सामान, कताई और बुनाई और बर्तन बनाना—ये सब सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सुमेरियाई कलाएँ थी। धातु का सामान बनाने मे उन्हे विश्व भर मे ख्याति मिल चुकी थी। वे ताँबे के बर्तन, हथियार, यत्र और अन्य उपयोगी वस्तुएँ भी बनाते थे। सोने, चाँदी और शीशे का उपयोग भी वे करते थे।

व्यवसाय और व्यापार—मैसोपोटेमियाइयो ने भारत, चीन तथा अन्य पडोसी देशो के साथ बडे पैमाने पर व्यापार को विकसित किया। व्यापार का आधार अदला-बदली ही था। फिर भी कभी-कभी माल के बदले मे सोना-चाँदी भी स्वीकार कर लिया जाता था। सभी अनुबन्ध, व्यापार, बाजार, माल का लेन-देन तथा अन्य व्यावसायिक तथा औद्योगिक कार्य हामुरबी सहिता के अनुसार होते थे। अत मे, हर तरह का लेखा-जोखा रखने के लिए सुमेरियाइयो ने करीब ३५० चिह्नो का विकास किया, जिनमे मे हरेक का एक निश्चित उच्चारण था।

(द) राजनीतिक चिंतन मे सुमेरियाइयो का योगदान

नगर-राज्य और राजा—मानव जाति के लिखित इतिहास मे, सुमेरियाई, शायद पहले ऐसे लोग थे, जिन्होंने अपने आपको राजनीतिक दृष्टि मे नगर राज्यो मे सगठित किया। हर नगर-राज्य अपने राजा के नेतृत्व मे अपनी स्वतत्रता की बडे उत्साह मे रक्षा करता था। नगर-राज्य अनेक थे, जैसे—ऊर, उम्मा, लेगाश, निप्पुर, विश, कुथा, सिप्पर तथा बैबिलोन। राजा को 'पाटेसी' के नाम से जाना जाता था, जिसका अर्थ होता था पुजारी—राजा या ईश्वर का 'इजारेदार-किसान' जिसका सीधा अर्थ यह निकलता है कि सरकार धर्म से बँधी हुई थी। इसीलिए, बैबिलोनियाई सरकार स्वभाव से धर्मतान्त्रिक थी।

सामतवादी पद्धति—सम्राट् ने अपने साम्राज्य मे सामती प्रथा को विकसित किया। हर सफल युद्ध के बाद वह भूमि के बडे-बडे भाग अपने बहादुर सरदारो को

उपहार स्वरूप देता था। उनसे कर भी नही लिया जाता था। अपने-अपने भूखडो मे वे कानून, शाति और अनुशासन वना कर रखते थे। युद्ध के दिनो मे वे सम्राट् को अपने सैनिक देते थे।

ऊर के विधान—यह एकतान्त्रिक तथा सामतवादी प्रशासन ऊर के विधान पर आधारित था जिसे ऊर-एगूर तगा डूंगी ने लिखित रूप दिया। वाद मे यही विधान "हामुरवी की प्रख्यात सहिता का उद्गम" वने। हामुरवी सहिता की तुलना मे ये विधान स्थूल और सादे थे। ये कानून साम्राज्य के समस्त व्यावसायिक कार्य-कलापो पर लागू होते थे जिनमे ऋण तथा अनुवध, क्रय तथा विक्रय भी शामिल थे।

अदालतें और पच—फौजदारी तथा दीवानी, दोनो तरह के मामलो के लिए नियमित अदालतो की स्थापना भी की गयी। फिर भी हरेक मामला पहले पचो के सामने पेश किया जाता था, कि वे मामले को सुलह-समझौते से ही सुलझा ले। किसी मामले मे जव यह सुलह-समझौता नही हो पाता था, तव दोनो ओर के लोगो को यह आजादी होती थी कि वे अदालत की सहायता ले।

सेना और युद्ध-कला—मनुष्य जाति के इतिहास मे सुमेरियाई शायद सवसे पहले लोग थे जिन्होंने सेनाओ का सगठन किया और युद्ध-कला को विकसित किया। वे भालो, ढालो और चमडे के शिरस्त्राणो का इस्तेमाल युद्ध के शस्त्रो के रूप मे करते थे—और लडाई मे पक्तिवद्ध होकर लडते थे।

(ई) राजनीतिक चितन मे वैबिलोन का योगदान

वैबिलोनिया का सबसे ज्यादा प्रतापी राजा हामुरवी (२१२३-२०८० ईसा पूर्व) था, जिसने विशाल वैबिलोनियाई साम्राज्य की स्थापना की और उस पर शासन किया। उसने पूर्णतया केन्द्रीय शासन का सगठन भी किया।

वैबिलोनिया की धर्मतांत्रिक सरकार—प्राचीन वैबिलोनियाई या एमोरी सरकार प्रकृति मे धर्मतान्त्रिक थी। शासन के पास राजनीतिक ही नही, धार्मिक सत्ता भी होती थी। वास्तव मे मैसोपोटेमिया के सभी शासक धरती पर ईश्वर के एकाकी प्रतिनिधि माने जाते थे।

राजा और स्थानीय सूबेदार—हामुरवी अपने साम्राज्य का शासन स्थानीय सूवेदारो के माध्यम से चलाता था। वह अपने स्थानीय सूवेदारो को पत्र लिखता रहता था, जिनमे उसकी ओर से आदेश रहते थे। सूवेदार भी अपने सदेशवाहको के जरिये अपने सम्राट् को पत्र लिखते थे। इन पत्रो से वैबिलोनियाई साम्राज्य के प्रशासन पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। यदि कोई भी अधिकारी रिश्वत लेते पकडा जाता था, तो उसे हामुरवी तुरत कडी से कडी सजा देता था।

विधिनिर्माता हामुरबी—हामुरबी ने अपने समय मे उपलब्ध सभी विधानो को एकत्र किया। इनमे ऊर के विधान भी सम्मिलित थे, जिन्हे सुमेर मे ऊर-एगेर तथा डूगी ने लिपिबद्ध किया था। उसने सभी तरह के सामाजिक तथा आर्थिक चलनो का भी सग्रह किया —भले ही ये चलन एक-दूसरे के विपरीत ही क्यो न हो। तब उसने उन्हे रीतिबद्ध तरीके से सग्रहीत किया, उनमे सुधार किया और जहाँ कही भी जरूरत महसूस हुई, उसने नये कानून भी जोडे। अन्त मे उसने उन्हें एक सविधान या सहिता के रूप मे लिपिबद्ध किया। हामुरबी की सहिता मे आये विधानो के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं—

विधिनिर्माता हामुरबी

(१) पूरी सहिता आठ फीट लबे खूबसूरत काले पत्थर पर बढिया ढग से खुदी हुई है, पत्थर के ऊपरी सिरे पर एक दृश्य बना हुआ है, जिसमे राजा हामुरबी को शामाश देवता यानी सूर्य-देव से विधियाँ लेते हुए दर्शाया गया है।

(२) सहिता मे जहाँ एक ओर जागरूक किस्म के नियम हैं, वही पर पाशविक किस्म के दड भी हैं।

(३) यह समान दड के नियम पर आधारित है। इसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य की आँख निकाल लेता है, या दाँत तोड देता है या कोई अग काट देता है, तो उसे दड भी बिल्कुल वैसा ही दिया जायेगा। धीरे-धीरे इन जगली सजाओ के स्थान पर जुर्माना किया जाने लगा।

(४) सहिता मे अपराधी तथा पीडित व्यक्ति के वर्ग और समाज मे उसके स्थान के अनुसार दड भी असमान दिया गया है। उदाहरण के लिए, चाँदी के साठ सिक्को के लिए किसी आम आदमी की आँख निकाली जा सकती थी, जब कि किसी दास की आँख मात्र तीस सिक्को के लिए ही निकाल ली जाती थी। बहरहाल,

अभिजात्य वर्ग के किसी भी सदस्य के विरुद्ध किया गया कोई भी अपराध भयकर परिणाम सामने लाता था ।

(५) अनेक प्रकार के अपराधो के लिए मृत्युदड देने का विधान था—जैसे बलात्कार, परायी स्त्री या पराये पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध, अगवाह करने, चोरी और डकैती आदि के लिए ।

(६) सहिता ने कीमतो, वेतनो और पारिश्रमिको का नियमन भी किया और हरेक व्यक्ति को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने का विधान रखा ।

(७) सहिता ने उत्तराधिकार के विधान भी निर्धारित किये, जिनके अनुसार मृतक के पुरुष बच्चे ही मृतक की सपत्ति के वैधानिक और प्रत्यक्ष वारिस हो सकते थे ।

(८) हामुरबी ने, मनुष्य जाति के इतिहास मे पहली बार ऐसी न्याय पद्धति की स्थापना की, जिसमे न्यायाधीशो की अदालतो तथा अपील की अदालतो को स्थान दिया गया । ऐसा लगता है कि बेबिलोनिया मे पेशेवर वकीलो का अस्तित्व नही था और अपील करने वाला खुद ही अपनी बात अदालत के सामने रखता था । फिर भी मुकदमेबाजी को जहाँ तक सम्भव हो, प्रोत्साहन नही दिया जाता था । उच्चतम न्यायालय राजा का ही होता था, जिसमे लोग अपील करते थे और राजा स्वय न्याय करता था । विधवाओ, अनाथो तथा गरीबो के साथ हमेशा न्याय किया जाता था ।

सहिता का मूल्याकन—सहिता का सबसे बडा महत्त्व इस तथ्य मे है कि इसने मानव-जीवन तथा राष्ट्रीय जीवन के करीब-करीब हर पहलू को छुआ है । अगर इसे सामयिक मानदडो की दृष्टि से देखे, तो यह सहिता निस्सदेह हामुरबी की चिरस्थायी और विराट उपलब्धि था ।

(फ) राजनीतिक चिंतन मे असीरियाइयो का योगदान

असीरियाई साम्राज्य और स्थानीय स्वायत्तता—असीरियाई मानव जाति के इतिहास मे पहले ऐसे लोग थे, जिन्होंने शक्ति या कूटनीति से अनेक राज्यो को एक प्रभुसत्ता सपन्न शासक के अधीन एकत्र किया । फिर भी, असीरियाई साम्राज्य कई अर्थों मे एक 'उदार साम्राज्य' था । उसने सभी बडे नगरो को अपने अदरूनी मामलो के प्रशासन मे स्थानीय स्वायत्तता प्रदान कर रखी थी । इतना जरूर है कि हर नगर के स्थानीय शासक को केन्द्रीय सत्ता को मान्यता देनी पडती थी । मातहत राज्य कई बार केन्द्रीय सत्ता के विरुद्ध विद्रोह भी कर देते थे, जिसकी वजह से वहाँ स्थायी सशस्त्र सेनाओ की जरूरत पडी ।

शक्ति का सरकारी राष्ट्रीयकरण—साम्राज्य की प्रगति के कारण सेना असीरियाई सरकार का महत्वपूर्ण अंग बन गयी थी। शल्मनसर तृतीय का बेटा और उत्तराधिकारी सेनाचेरिब असीरिया का सामान्य सैनिक शासक था फिर भी सेनाचेरिब का पोता असुरबनीपाल जिसने ६६८ ईसा पूर्व से ६२६ ईसा पूर्व तक असीरिया पर शासन किया, असीरियाइयों के बीच विद्वान शासक साबित हुआ।

असीरिया सम्राट का सूर्य नगर पर आक्रमण

युद्ध के घातक लौह-शस्त्र—असीरियाई लोग मानव जाति के इतिहास में पहले ऐसे लोग थे, जिन्होंने युद्ध के घातक लौह शस्त्रों का उत्पादन और उपयोग किया—जैसे भाले, धनुष-बाण, तीर, गदा, गाड़ियाँ और लड़ाई में काम आने वाले गुर्ज आदि।

मनोवैज्ञानिक शस्त्र—इनके अतिरिक्त शत्रुओं को भयभीत करने के ख्याल से, उन्होंने मनोवैज्ञानिक शस्त्रों का इस्तेमाल भी शुरू किया। वे अपने दुश्मनों पर कल्पनातीत अत्याचार करते थे और उन्हें तरह-तरह की यातनायें देते थे, जिनसे दुश्मनों की पत्नियों में भय व्याप्त हो जाता था। "पराजित शत्रु के उच्चाधिकारियों से विशिष्ट किस्म का बर्ताव किया जाता था।" डा० विल डूरेंट लिखते हैं, "उनके कान, नाक, हाथ और पाँव काट लिये जाते थे या उन्हें ऊँची मीनारों से नीचे फेंक दिया जाता था, या उनका तथा उनके बच्चों का सर कलम कर दिया जाता था। कई बार उन्हें कोड़े लगाये जाते थे या उन्हें धीमी आँच पर जिन्दा भून डाला जाता था।"

धर्म राजा का आधार-स्तम्भ—सेना असीरियाई राजा का पहला आधार-स्तम्भ थी। दूसरा स्तम्भ था धर्म (गिरजाघर) और सभी कानून भी उसी के नाम से बनाये जाते थे। हर चीज उसी के नाम से होती थी। राजा अपने आपको आकाश देवता या सूर्यदेव का अवतार कहा करता था। सभी घोषणाएँ इसी नाम से की जाती थीं।

प्रांतीय सूबेदार—असीरियाई सम्राट् आजकल के जासूस अधिकारियों की तरह अपने विशिष्ट व्यक्तियों को शाही जासूसों के रूप में नियुक्त करता था, जिनका

लंबा-चौड़ा जाल पूरे साम्राज्य में फैला रहता था। उनका काम होता था प्रांतीय शासकों और उनके "सहयोगियों" के कार्य-कलापों पर नजर रखना और प्रांत के मामलों के बारे में सम्राट् को तुरन्त सूचित करना।

फारसियों ने असीरियाइयों के इस साम्राज्यवादी शासनतंत्र की अपने देश में नकल की और बाद में रोमनों ने भी इस शासन-प्रणाली को अपने देश में स्थापित किया।

असीरियाई कानून—असीरियाई राजाओं ने सुमेरियाई और बैबिलोनियाई कानूनों को ही अपनाया—केवल सैन्य राज्य की जरूरतों के मुताबिक उनमें थोड़ा-बहुत फेर-बदल किया।

(ग) वैज्ञानिक चिंतन में सुमेरियाइयों का योगदान

सुमेरियाई लेखन कला—सुमेरियाई लोग सरकंडे की नोक से मिट्टी की नर्म पट्टिकाओं पर लिखते थे। जब धूप में सुखा लिया जाता था या मिट्टी में तपा लिया जाता था, तो वे बेहद मजबूत बन जाती थीं। चूंकि सरकंडे की नोक पर तेज नोक वाली हड्डी लगी रहती थी, इसलिए इस तरह के लेखन को "क्यूनी फार्म" के नाम से जाना जाता था। अंत में, उन्होंने करीब ६०० चिह्नों का विकास किया, जिनमें से अनेक शब्द-विचार थे—यानी एक-एक शब्द, एक-एक विचार को अभिव्यक्त करता था—जबकि शेष ध्वनि शब्द थे, जो ध्वनियों को व्यक्त करते थे। लेखन की यह कला करीब ४००० वर्षों तक चलती रही। इसके बाद पहली सदी ईसापूर्व में फिनीशियाई वर्णमाला ने इसे पृष्ठभूमि में ढकेल दिया।

सुमेरियाई चन्द्र कैलेंडर—सुमेरियाइयों ने चन्द्र-कैलेंडर का विकास भी किया, जिसके अनुसार एक नये चन्द्र से लेकर दूसरे नये चन्द्र तक के बीच का समय एक महीने का होता था और बारह महीनों से एक वर्ष बनता था। जब कभी उन्हें लगता था कि वर्ष में एक महीना कम पड़ गया है, वे वर्ष में एक महीना और जोड़ लेते थे, ताकि वह ऋतुओं के अनुरूप बन सके। साथ ही, हर वर्ष को किसी महत्त्वपूर्ण घटना से जोड़कर नाम दे दिया जाता था—ये घटनाएँ तूफान, युद्ध या किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति की मृत्यु होती थी। बाद में पूरब के यहूदियों, फारसियों तथा मुसलमानों ने भी इस चन्द्र कैलेंडर को अपनाया।

सुमेरियाइयों की माप-इकाई-साठ—समय तथा स्थान के माप के लिए सुमेरियाइयों ने ६० की ईकाई शुरू की। इसी के अनुसार ६० सेकेंड से एक मिनट बनता है, ६० मिनट से एक घंटा, उन्होंने वृत्त के ३६० अंशों का आविष्कार भी किया। लेकिन शून्य के लिये सुमेरियाइयों के पास कोई चिह्न नहीं था।

सुमेरियाइयों के पहियेदार छकडे और रथ—सुमेरियाइयो ने पहिये मे सुधार किया और वे पहियेदार गाडियो और रथो का उपयोग भी करते थे।

सूर्य का डायल और पानी की घडी—दिन के समय के माप के लिये सुमेरियाइयो ने सूर्य के डायल और पानी की घडी जैसे यत्रो का आविष्कार किया। सुमेर मे पानी की घडी उसी सिद्धात पर आधारित थी, जिस पर उसमे पूर्व प्रचलित आवर-ग्लास आधारित था। आवर-ग्लास काँच के दो गोलो से बना होता था जो एक पतली-सी गर्दन से जुडे रहते थे, जिसमे से होकर रेत जैसी कोई चीज ऊपर के गोले मे से नीचे के गोले मे आती रहती थी। यह यत्र आज तक उपयोग मे लाया जा रहा है।

(ह) वैज्ञानिक चितन मे बैबिलोनियाइयो का योगदान

ज्योतिष शास्त्र—ज्योतिष शास्त्र नक्षत्रो की गति से किसी व्यक्ति के कार्य-कलापो, मामलो और भाग्य पर पडने वाले प्रभावो का अध्ययन करता है। बैबिलोनियाइयो को पाँच नक्षत्रो का ज्ञान था। ये नक्षत्र थे—बुद्ध, शुक्र, मगल, गुरु और शनि। बैबिलोनियाइयो का विश्वास था कि ये पाँच नक्षत्र तथा सूर्य और चन्द्र किसी भी व्यक्ति के भाग्य का नियत्रण करते हैं। इसीलिये उनमे से हर नक्षत्र को एक-एक देवता के साथ जोड दिया गया। बुद्ध को नाबु देवता से जोडा गया, शुक्र को इश्तर से, मगल को नर्गल से, गुरु को मार्दुक से, शनि को निनिब से, सूर्य को शामाश से और चन्द्र को सिन से।

खगोलशास्त्र—बैबिलोनियाइयो ने २००० ईसा पूर्व मे ही नक्षत्रो और सितारो के बीच के अतर को स्पष्ट कर दिया था। उनके विश्वास के अनुसार सितारो की आकाश मे स्थिति अविचल है, जबकि नक्षत्र घूमते रहते हैं। (आधुनिक खगोल शास्त्र के अनुसार नक्षत्र सूर्य के चारो ओर नियमित गति से घूमते हैं) चाल्डियाइयो या नव बैबिलोनियाइयो ने ग्रहो के योगो तथा सूर्य और चन्द्र के ग्रहणो का पता लगाया। इन्होने नक्षत्रो के मार्ग का अध्ययन किया। वे सर्द तथा ग्रीष्म सक्रातिकाल भी तय कर लेते थे। साथ ही वासतिक और शारदीय विषुव भी।

चन्द्र कैलेंडर—बैबिलोनियाइयो ने वर्ष को बारह चन्द्र-मासो मे विभाजित किया, और पहले छ महीनो को ३०-३० दिनो मे, जबकि दूसरे छह महीने २९-२९ दिनो के रखे गये। इस प्रकार उनका वर्ष ३५४ दिनो का होता था। फिर भी चन्द्र-वर्ष को ऋतुओ के अनुरूप ढालने के लिये वे बीच-बीच मे किसी वर्ष मे तेरहवाँ महीना भी जोड लेते थे। हर महीना चन्द्र की चार अवस्थाओ के अनुरूप ही चार सप्ताहो मे विभाजित था। एक दिन की अवधि एक चन्द्रोदय से दूसरे चन्द्रोदय तक मानी जाती थी। इस प्रकार, महीने के चार सप्ताहो, घटे के ६० मिनटो और मिनट के ६० सेकडो वाले विभाजन को बैबिलोनियाइयो से ही हमने विरासत मे पाया है।

इसके साथ ही प्रत्येक दिन का नामकरण भी सात देवताओं के नाम पर किया गया। इस प्रकार जिस दिन सूर्यदेव, शामाश की पूजा होती थी, उस दिन को रविवार कहा गया। इसी प्रकार सोम (चन्द्र) की पूजा के दिन को सोमवार कहा गया और इसी प्रकार शनिवार तक के अन्य दिनों का नामकरण हुआ।

खगोलशास्त्रीय प्रेक्षण—चाल्डियाइयों (यानी नव-बैबिलोनियाइयों) ने करीब ३६० वर्षों तक वैज्ञानिक और निरतर खगोलशास्त्रीय प्रेक्षण कार्य किया—और यह प्रेक्षण कार्य ही खगोलशास्त्र को लेकर मानव जाति के इतिहास मे प्रथम खगोल-ज्ञान प्रस्तुत करता है। उनके यहाँ दो विश्वविख्यात खगोलशास्त्री नबू-रिमान्नू और किडिन्नू भी हुए।

नबू-रिमान्नू ने सूर्य-चन्द्र की गतियों की तालिकाएँ सग्रहीत की और इन दोनो आकाशीय ग्रहो द्वारा दैनिक, मासिक और वार्षिक चक्कर लगाने मे लगने वाले समय का हिसाब लगाया। इसने सूर्य और चद्र-ग्रहण की निश्चित तिथियाँ भी प्रस्तुत की। उसके कथनानुसार एक वर्ष मे ३६५ दिन, ६ घटे, १५ मिनट और ४१ सेकड होते हैं।

करीब एक शताब्दी बाद, एक अन्य चाल्डियाई खगोलशास्त्री, किडिन्नू, ने भी ऐसी ही तालिकाएँ बनायी लेकिन उसकी तालिकाएँ और भी अधिक सुनिश्चित थी। नाबू-रिमन्नू की ही तरह उसने भी सूर्य और चन्द्र द्वारा वार्षिक चक्कर लगाने मे लगने वाले समय का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया और उसका समय "केवल एक सेकड ही ज्यादा था और आकाशीय पिडो की गति के बारे मे उसका अनुमान अपनी सुनिश्चितता मे उस अनुमान से भी बेहतर है, जिसके अनुसार आधुनिक खगोलशास्त्री एक ऊँचे अरसे मे काम करते आ रहे हैं।" \

बैबिलोनियाई चिह्न और तालिकाएँ—बैबिलोनियाइयो ने तीन अको के लिए तीन चिह्नो का विकास किया। एक चिह्न १ के लिए, जिसे ९ तक दोहराया जाता था, और एक चिह्न १० के लिये, जिसे ५० तक दोहराया जाता था, और एक चिह्न १०० के लिए। हिसाब को सरल बनाने के लिये, बैबिलोनियाइयो ने गुणा और भाग की तालिकाएँ ही नही बनायी, बल्कि मूल अको के आधे, चौथाई, तिहाई, वर्ग और घन की तालिकाएँ भी बनायी।

ज्यामिति—बैबिलोन मे ज्यामिति जटिल और ऊबड-खाबड भूखडो के माप तक विकसित हो चुकी थी। मनुष्य जाति के लिखित इतिहास मे बैबिलोनियाई, लगता है, पहले ऐसे लोग थे, जिन्होने वृत्त के ३६० अशो मे विभाजित होने के विचार को प्रतिपादित किया, और इस प्रकार समय और स्थान, दोनो के माप के लिये ६० को इकाई के रूप मे प्रतिपादित किया। इसी प्रकार उन्होंने एक घटे को ६० मिनटो तथा हर मिनट को ६० सेकडो मे विभाजित किया। फिर भी उन्होंने वृत्त की परिधि और व्यास

के बीच का अनुपात ३ माना जो किसी खगोलशास्त्रियो के राष्ट्र के लिये बहुत कूड हिमाव कहा जाना चाहिये।

चिकित्सको के नियम, शुल्क और जुर्माने—बेबिलोन के राजा हामुरबी के तहत औषधि-शास्त्र की ओर भी कुछ ध्यान दिया गया। उसने अपनी सहिता मे चिकित्सको द्वारा लिये जाने वाले शुल्क का भी जिक्र किया है—और उनके पेशे मे सम्बन्धित अपराधो के लिये दड का भी। "अगर कोई चिकित्सक कोई गलती करता था तो उसे रोगी को हर्जाना देना पडता था, भयकर भूलो के मामलो मे उनकी अँगुलियाँ काट ली जाती थी ताकि वह भविष्य मे किसी तरह का प्रयोग आसानी से न कर सके।"

दुरात्माएँ और जादू—प्राचीन मिस्रियो की तरह उनका भी यह विश्वास था कि बीमारियाँ और कुछ नही, रोगी द्वारा किये गये किसी पाप के कारण उसके शरीर का दुरात्माओं द्वारा जकडा जाना ही है। इसलिये बीमारियो का इलाज भी झाड-फूंक, मत्रोच्चार, जादुई शब्दो तथा प्रार्थनाओ द्वारा किया जाता था, ओषधियो का प्रयोग सिर्फ इसलिये किया जाता था कि उससे डर कर शरीर को जकडने वाला शैतान बाहर निकल जाये।

(न) वैज्ञानिक चिंतन मे असीरियाइयो का योगदान

असीरियाइयो का प्रमुख योगदान राजनैतिक चिंतन और सैन्यवाद के क्षेत्रो मे ही रहा। वैज्ञानिक चिंतन के क्षेत्र मे उन्होंने कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नही किया।

वनस्पतिशास्त्र—असीरियाइयो के काल मे वनस्पतिशास्त्र की उन्नति अवश्य थी, उन्होंने पौधो की लम्बी सूचियाँ तैयार की। ऐसा उन्होंने शायद औषधियो के उपयोग के कारण किया—और इस तरह विज्ञान की इस शाखा की उन्होंने नीव डाली।

औषधि शास्त्र—असीरियाइयो ने करीब-करीब पाँच सौ ओषधियो और उनके प्रयोग की सूची बनायी। ये ओषधियाँ वनस्पति और खनिज, दोनो तरफ की थी। इन्होंने विभिन्न रोगो के अलग-अलग लक्षणो का ब्योरा भी प्रस्तुत किया।

(ज) सुमेरियाई कलाएँ

पत्थरो पर खुदाई की कला—पत्थरो पर नक्काशी करने की कला मे सुमेरियाइयो ने बहुत विकास किया। वे अलग-अलग आकारो की पत्थर की मुहरे बनाते थे और उन पर बेहद खूबसूरत नक्काशी भी करते थे। नक्कासी द्वारा वे डिजाइन और चित्र बनाते थे। सामान्यतया, मिट्टी की पट्टिकाओ पर बने दस्तावेजो पर व्यक्तियो के हस्ताक्षर देने की बजाय इन्ही मुहरो का इस्तेमाल किया जाता था।

सुमेरियाई कारीगरी—धातुओ के सामान बनाने के काम मे सुमेरियाई विश्व-विख्यात हो चुके थे। वे ताँबे के बर्तन, हथियार, सयत्र और अन्य जरूरत की चीजे

बनाते थे। सोने-चाँदी तथा सीसे का प्रयोग भी आम था। डा० जे० एच० ब्रस्टेड का कहना है कि "सुनार के काम में और कारीगरी का कमाल तो नजर आता ही था, डिजाइन की खूबसूरती भी दिखाई देती थी।"

(क) वैबिलोनियाई कलाएँ

वैबीलोन की स्थापत्य कला—वैबिलोनियाइयों की स्थापत्यकला का महानतम योगदान जिग्गूरात के निर्माण के रूप मे रहा। यह ऊँची मीनार के आकार मे बना एक मदिर था जो कि नगर के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक कार्यों का केन्द्र था। बोरिसप्पा का विशाल जिग्गूरात, जो सात सृष्टियो की अवस्थाओं के नाम से प्रसिद्ध था, ६५० फीट ऊँचा था। यह एक सात-मजिल भवन था, और हर मजिल एक-एक ग्रह को समर्पित थी, इन मजिलो के रग भी प्रतीकात्मक थे। पहली मजिल का रग काला था, जो शनि का रग था, दूसरी का सफेद था, जो शुक्र का रग था, तीसरी का रग लाल, जो गुरू का रग था, चौथी का नीला जो बुध का रग था, पाँचवी का रग रक्तिम जो मगल का रग था, छठी का रजत, जो चाँद का रग था और सातवी का सुनहरी, जो कि सूर्य का रग था। जिग्गूरात की इमारत मीलो दूर से भी दिखायी दे जाती थी। वैबिलोनियाई मेहराबों का निर्माण भी करते थे, जिनसे बाद मे आने वाले लोगों को पानी और जमीन पर पुल वगैरह बनाने मे बडी मदद मिली। वे तोरण, गुबद और स्तम्भ बनाते थे।

वैबिलोन की मूर्तिकला—वैबिलोनियाइयो की मूर्तिकला विकसित नहीं हो पायी। उनकी मूर्तियाँ कठोर, भारी और एकरूपता से भरी होती थी। फिर भी उनके द्वारा बनायी गयी जानवरो की मूर्तियाँ अपेक्षाकृत प्रभावशाली थी।

वैबिलोन की चित्रकला—वैबिलोन के चित्रकार दीवारो और बुतो पर सुन्दर चित्रकारी करते थे। फिर भी इस कला मे वे मिस्रियो से बहुत पीछे थे।

वैबिलोन का सगीत—वैबिलोनियाई सगीत मे बहुत शौकीन थे। वे वीणा, ढोल, बिगुल, घटियाँ, सीगो और तार वाले सगीत-वाद्यो को बजाते थे। मदिरो, महलो और सामतो के निवास-स्थान पर हर मौके पर गीत गाये जाते थे। गीत अकेला गायक भी गाता था, गायक समूह भी। वाद्य-वृन्द का प्रबन्ध बहुत अच्छा रहता था।

चाल्डियाइयों के लटकते हुए उद्यान—चाल्डियाई या नव-वैबिलोनियाई अपने शाही महलो की छत पर सुन्दर लटकते हुये उद्यान बनाते थे। ऐसा विश्वास किया जाता था कि राजा नेबुचाड नजर (Nebuchad Nezzar) ने अपनी एक रानी के लिए इस तरह के उद्यान बनवाये थे। वह मीडिया के राजा की बेटी थी और अपने देश के उद्यानो की उसे बहुत याद आती थी।

(ल) असीरियाई कलाएँ

असीरियाई स्थापत्य कला—असीरियाइयो ने निनेवेह् नगर की स्थापना की जो अपनी चमक-दमक, शान-शौकत, चकाचौंध और सुदृढता मे अद्वितीय था ।

मंदिर—तिगलाथ मिलेसर प्रथम ने आशूर के अनेक पत्थर के मदिर वनवाये । एक मदिर का अतर्भाग "आकाश के गुवद-सा चमकीला था ।" मदिरो और शाही भवनो की सज्जा के लिए सगमरमर, सिलखडी, ताँवे, चाँदी और सोने का खुलकर उपयोग किया जाता था ।

महल—सेन्नाचेरिब ने निनेवेह् मे "अद्वितीय" नाम से ख्यात शाही महल वनवाया जो अपने आकार मे मैसोपोटेमिया मे तव तक बने सभी महलो मे वडा था । इसकी दीवारो, छतो और फर्श मे इतनी कीमती धातुएँ, पत्थर और लकडी लगी थी, और फर्श मे इतनी चमकीली ईंटे लगी थी कि देखने वाले की आँखे चौंधिया जाती थी ।

नगर की दीवारें—निनेवेह् का नगर दो दीवारो से घिरा हुआ था । ये दीवारे आठ मील लम्वी, सौ फीट ऊँची और पचास फीट चौडी थी । ये दीवारे वाहरी हमलो से नगर की रक्षा करती थी ।

असीरियाई मूर्तिकला—असीरियाई मूर्तिकला आदमियो, जानवरो और पक्षियो की यथार्थवादी और हूवहू मूर्तियाँ वनाने मे निपुण थे । फिर भी सज्जा के लिये असीरियाइयो द्वारा वनायी गयी आदमी की मूर्तियाँ कठोर, गँवारू और एकरूपता से ग्रसित नजर आती हैं ।

असीरियाई कलाकारो की प्रतिमा के दर्शन हमे सभी तरह के जानवरो—जैसे शेरो, घोडो, गधो, वकरियो, भेडो, कुत्तो, हिरणो, पक्षियो आदि के चित्रण मे होते हैं । विश्राम की मुद्रा को छोडकर शेष सभी तरह की मुद्राओ मे इन जानवरो को चित्रित किया गया है ।

असीरियाई मूर्तिकला का मुख्य उद्देश्य सैन्यवाद की भावना को हर तरह से गौरवान्वित करना ही था ।

असीरियाई चित्रकला—असीरियाई चित्रकला की सवसे वडी खासियत उसकी डिस्टेपर चित्रकला थी । असीरिया चित्रकार सफेद, नीले, काले और लाल रगो का प्रयोग वहुतायत से करते थे ।

(म) धार्मिक और दार्शनिक योगदान

सुमेरियाई की धार्मिक विश्वास और रीतियाँ निम्नलिखित थी—

देवता, फरिश्ते और शैतान—सुमेरियाई कई तरह के देवताओ की पूजा करते थे, जैसे—शामाश (सूर्य देवता), एनलिल (पर्वत देवता) और एनकी (जल देवता),

असीरिया की मूर्तिकला

इन्नी (धरती की कुमारी देवी), निनगिरसु (सिंचाई देवता), ताम्मुज (वनस्पति देव), सिन (चन्द्रदेव) आदि। इनके अतिरिक्त वे फरिश्तों और दुरात्माओं के अस्तित्व में भी विश्वास करते थे।

पुजारियों की भूमिका—धार्मिक और सामाजिक जीवन मे पुजारी की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। सच तो यह है कि सुमेरियाई नगरो का शासन पुजारी राजा ही चलाते थे और उन्हे पाटेसी कहा जाता था।

मृत शरीरो का घर मे ही दफन—सुमेरियाई मृत शरीरो को घर के फर्श के नीचे दफनाते थे और मृत शरीर के साथ खाने के मर्तबान, रुपये, सोने और चाँदी के आभूषण वाद्य-यत्र और हर तरह के बर्तन रख देते थे।

मृत्यु के बाद व्यक्तियों और पशुओ की सेवाएँ—अत मे, शाही मकबरो मे पता चलता है कि आमतौर पर शाही मृतको के साथ उसके अगरक्षको, नौकरो और नौकरानियो रथ के साथ बँधे बैलो आदि को दफना दिया जाता था ताकि वे अपने स्वामी के साथ जा सके और उसकी मृत्यु के बाद भी उनकी सेवा कर सके।

प्राचीन बेबिलोनियाई धार्मिक विश्वास और रीतियाँ—बेबिलोनियाई तीन देवताओ की पूजा करते थे—जिनके नाम थे मार्दुक, इश्तर और तामुज। मार्दुक का स्थान सब देवताओ से ऊँचा था। इश्तर को सभी देवताओ की जननी माना जाता था और उसे पेड़-पौधो और सभी जीवधारियो के प्रजनन पर अधिकार प्राप्त था, इश्तर देवी जननी थी। वह सौंदर्य और प्रेम की देवी थी। तामुज देव को इश्तर का पति माना जाता था और वह वनस्पति का देवता था। लोग इन देवताओ की पूजा कुछ तो इनसे भय खाकर करते थे और कुछ उन्हे प्रसन्न करने के ख्याल से कि उन्हे वक्त पर बारिश, अच्छी फसल और इसी तरह के अन्य वरदान मिलते रहे।

असीरियाई धार्मिक विश्वास और रीतियाँ—असीरियाई चूंकि लडाकू होते थे, इसलिए उनकी रीतियाँ भी नृशस और हिंसात्मक होती थी। उन्होने सरकार सहित समस्त मानव जीवन को ही सैन्यीकृत बना डाला था। अत उनका राष्ट्रीय देवता भी एक ही था—अशूर, सूर्य-देवता जो स्वय लडाकू था और अपने शत्रुओ पर कतई दया नही करता था। असीरियाइयो का विश्वास था कि अशूर के मदिर के सामने बदियो को सजा देने से उसे दैवी आनन्द की प्राप्ति होती थी।

चाल्डियाई धार्मिक विश्वास और रीतियाँ :

नक्षत्रीय धर्म का विकास—चाल्डियाइयो ने नक्षत्रीय—यानी नक्षत्रो से सबधित धर्म का विकास किया। उन्होने सभी देवताओ को विभिन्न ग्रहो और नक्षत्रो से सबद्ध किया। उदाहरण के लिए मार्दुक को गुरु और इश्तर को शुक्र से सबद्ध करके देखा जाने लगा और ये देवता करीब-करीब यत्रीवृत ढग मे सृष्टि पर शासन करते थे।

नियतिवाद का उदय—चाल्डिआइयो ने नियतिवाद को विकसित होने दिया यानी उन्होने ऐसा नजरिया अपनाया कि आदमी को अपनी नियति के आगे झुक जाना चाहिए। दूसरे शब्दो मे, नियतिवाद हर आदमी को आदेश देता है कि वह देवताओ के

आगे पूर्ण समर्पण कर दे, उनमे पूरी आस्था रखे और यह उम्मीद रखे कि अत मे सब अच्छा ही होगा ।

आदमी का अवमूल्यन देवताओ को सर्वसत्ता सम्पन्न और शक्तिमान बना देने का परिणाम यह हुआ कि आदमी का अवमूल्यन हो गया । मरणशील होने के कारण किसी भी व्यक्ति की तुलना सर्वसत्तासम्पन्न, सर्वशक्तिमान और भावनाहीन देवताओ से नही की जा सकती थी, जो ग्रहो मे निवास करते थे और आदमी का भाग्य बनाते-बिगाडते रहते थे । आदमी का अवमूल्यन हो गया और वह अकिंचन प्राणी रह गया ।

प्रश्नावली

१ मैसोपोटेमिया की विभिन्न जातियो की व्याख्या कीजिए ।

२ सुमेरियाइयो, बैबिलोनियाइयो और असीरियाइयो के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर विचार कीजिए ।

३ राजनीतिक चितन के क्षेत्र मे सुमेरियाई योगदान की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये ।

४ असीरियाइयो के राजनीतिक योगदान पर विचार कीजिए ।

५ सुमेरियाइयो और असीरियाइयो के वैज्ञानिक योगदान पर विचार कीजिए ।

६ बैबिलोनियाइयो का वैज्ञानिक चितन मे क्या योगदान रहा ?

७ कला तथा स्थापत्य के क्षेत्रो मे मैसोपोटेमियाई योगदान पर विचार कीजिए ।

८ सुमेरियाइयो, बैबिलोनियाइयो और असीरियाइयो के धार्मिक विश्वासो, रीतियो और दर्शन के बारे मे आप क्या जानते हैं ?

९ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) हामुरबी की सहिता
(आ) असीरियाई सरकार
(इ) नाबू-रिमान्नू और किडिन्नू
(ई) बैबिलोनियाई कलाएँ
(उ) असीरियाई कलाएँ

———

अध्याय ४

फारस की सभ्यता

भूमिका—फारस या ईरान, फारस की खाडी के पूर्व मे एक छोटा-सा भूमि का टुकडा है जिसे प्राचीन काल मे 'पारा' के नाम से जाना जाता था। वह पर्वतो और रेगिस्तानो से भरा हुआ था। नदियाँ कम थी, शीतकाल मे यहाँ भयकर सर्दी पडती थी और ग्रीष्मकाल मे भयकर गर्मी। ऐसे भौगोलिक जलवायु के कारण यहाँ के निवासी एक कर्मठ पर्वतारोही नस्ल के बन गये।

मेडस और फारसी भारत-यूरोप की दो ऐसी शक्तिशाली नस्ले थी जिन्होंने एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की। यह साम्राज्य फारस की खाडी से काला सागर तक फैला हुआ था।

फारस · साइरस, कैंबिसस और दारियुस महान् के अतर्गत

साइरस (ई०पू० ५५२ से ई०पू० ५२८)—साइरस फारस के एक छोटे से राज्य आशम का राजा था जो मेडेस के अतर्गत था। ई० पू० ५४९ मे साइरस ने मेडेस के आधिपत्य के विरुद्ध झडा उठाया और अत मे अपने को मेडेस का स्वामी भी सिद्ध कर दिया। फारसवासियो ने धनुर्विद्या और घुडसवारी एसीरियनो से सीखी थी। साइरस ने लीडिया के विरुद्ध चढाई की और उसके शासक क्रोसस को ई० पू० ५४६ मे बन्दी बना लिया। तब उसने इओनिया (ग्रीक) के नगरो पर आक्रमण किया और ई० पू० ५४३ तक उसमे से अधिकाश को अपने राज्य मे मिला लिया। एक जन्मजात योद्धा होने के कारण साइरस का लडते-लडते ही ई० पू० ५२८ मे युद्ध-क्षेत्र मे देहान्त हो गया।

कैंबिसस (ई० पू० ५२९-५२१)—कैंबिसस साइरस महान् का पुत्र और उत्तराधिकारी था। ई० पू० ५२५ मे कैंबिसस ने मिस्र को जीत कर अपने साम्राज्य मे मिला लिया। फलस्वरूप फारस का साम्राज्य एक ओर नील नदी के मुहाने से भमध्य-सागर के पूर्व मे एगियन तक फैल गया और उसके भी आगे उत्तर-पश्चिम भारत तक जा पहुँचा। कैंबिसस अदूरदर्शी और क्रूर था, ई० पू० ५२१ मे उसने आत्महत्या कर ली।

दारियुस महान् (ई० पू० ५२१- ८५ —अदूरदर्शी और क्रूर कैंबिसस का उत्तराधिकारी बना दारियुश महान् जो कुलीन स्वभाव का, बुद्धिमान्, उदार योद्धा होने के साथ-साथ कला और साहित्य का सरक्षक था। युद्ध और शाति दोनो मे वह बेजोड रहा। वह फारस के सिहासन पर ई० पू० ५२१ मे बैठा और ई० पू० ४८५ तक शासन करता रहा। पूर्व शासक द्वारा आत्महत्या करने पर फारस के भिन्न प्रान्तो को

विद्रोह करने के लिए संकेत मिल गया। दारियुस ने विद्रोह को पूरी क्रूरता और पूर्णता से दबा दिया। उदाहरणार्थ उसने बेबीलोनिया के ३००० प्रमुख व्यक्तियों को सूली पर चढा दिया ताकि कानून और व्यवस्था स्थापित की जा सके और अन्य लोगों को शिक्षा मिल सके। तथापि इस युद्ध के बाद उसके मस्तिष्क में संघर्ष मच गया और उसने युद्ध के शस्त्रास्त्र एक ओर रख दिये और इतिहास के सबसे बुद्धिमान्, योग्य और प्रगतिशील शासकों में से एक बना। भारी करों के बावजूद, उसके शासन में प्रजा सुखी थी, क्योंकि

दारियुस महान्

उसका प्रशासन उदार था। वाणिज्य, व्यवसाय और उद्योगों की प्रगति हुई और दारियुश के अन्तर्गत विदेश व्यापार भी चमक उठा। फारसवासियों ने ३९ चिह्नों की एक वर्णमाला बनाई और उसका उपयोग मिट्टी की टिकियों पर किया। साराश में, फारसी साम्राज्य का चहुँमुखी विकास हुआ और शाही प्रशासन ने दारियुश के अतर्गत एक ऐसी उत्तम प्रणाली को जन्म दिया जो मानव के लिए अनुपम उपहारों में से एक है।

(स) फारसियों का सामाजिक और सास्कृतिक जीवन

सामाजिक वर्ग—प्राचीन फारसी समाज चार मुख्य भागों में विभक्त था, जो निम्न थे (१) सामत सरदार, (२) भाड़ुत, (३) किसान-मालिक और (४) गुलाम।

सामंत सरदारो के पास बहुत अधिक कृषिभूमि थी और वे समाज मे बहुत प्रतिष्ठित, प्रभावशाली तथा शक्तिशाली थे। उनकी भूमि को उनके भाडेदार जोतते-बोते थे और बदले मे उन्हें फसल का एक अमुक अश दिया करते थे।

किसान-मालिक छोटी भूमि के मालिक थे। वे अपने खेतो को स्वय जोतते-बोते थे। कई बार एक से अधिक किसान मालिक कर सहयोगिता के आधार पर बडी भूमि पर भी खेती करते थे। सामाजिक सीढी के एकदम नीचे के गुलाम विदेशी ही हुआ करते थे। ये गुलाम युद्ध के बाद लाये जाते थे और किसी अन्य वस्तु की भाँति खरीदे और बेचे जाते थे।

व्यक्तित्व की विशेषता—प्राचीन फारसी प्राचीन सुदूर पूर्व के सुन्दरतम व्यक्तियो मे से थे। वे तने हुए और अत्यन्त सुन्दर होते थे। उनका नख-शिख बडा अच्छा होता था और उनके व्यवहार मे कुलीनता प्रकट होती थी।

फारसी लोग स्पष्टवादी, खुले मस्तिष्क वाले, उदार तथा अतिथियो का सम्मान करने वाले थे। फारसी लोग स्वच्छता पर बहुत ध्यान देते थे। वास्तव मे उसे जीवन की सबसे बडी नियामत मानते थे। अच्छा काम भी यदि गदे हाथो द्वारा किया हुआ होता तो बेकार माना जाता था।

उनकी वेशभूषा—अधिकाश फारसियो ने मेडियो की वेषभूषा और आभूषण अपनाया हुआ था। वे चेहरे को छोडकर पूरा शरीर ढँका रखते थे, पगडी से लेकर जूतो तक। उनकी दृष्टि से शरीर का कोई अन्य अग दिखलाई पडना अशोभनीय था। औरतो की पोशाक भी लगभग वैसे ही होती थी जो पुरुषो की, सिर्फ वक्ष पर कुछ फर्क होता था। पुरुष लबे बाल-दाढी रखते थे। पुरुष तथा स्त्री दोनो को ही प्रशाधनो का चाव था।

ब्याह और परिवार—अभिभावक अपने बच्चो के वयस्क होते ही उनके ब्याह की व्यवस्था किया करते थे। मैसपैरो के अनुसार भागी कबीले मे भाई-बहन, पिता-पुत्री, माता-पुत्र के बीच ब्याह का किया जाना एक सामान्य बात थी। कुँवारे-कुँवारियो को समाज मे प्रतिष्ठा की दृष्टि मे नही देखा जाता था। बहु-विवाह का सामान्य रिवाज था।

परिवार सभी सस्थाओ मे पवित्रतम है। जरतुस्त अहूर-मज्द से पूछता है—"ओ भौतिक ससार के निर्माता, जो पवित्रतम, वह कौन-सा दूसरा स्थान है, जहाँ पृथ्वी सबसे सुखी अनुभव करती है ?" अहूर-मज्द कहता है—वह जगह घर है।

स्त्रियो की स्थिति—प्राचीन फारस मे स्त्रियो को उच्च सामाजिक स्थान प्राप्त था। आज की आधुनिक नारी के समान तब की नारी स्वतन्त्र और बेपर्दा होकर सब जगह घूमती-फिरती थी। जायदाद की मालकिन थी, प्रबन्धकर्त्ता थी। अपने पति के

कारबार को उसकी अनुपस्थिति मे सँभालती थी। तथापि उसकी मामाजिक स्थिति दारियुस महान् के बाद नीचे गिर गयी। वह एकात मे और दूसरो से पृथक् रहने लगी और अत मे इसी ने मुसलमानो की पर्दा प्रथा को जन्म दिया।

शिक्षा—शिक्षा सिर्फ धनी वर्ग के पुत्रो को धर्म-गुरुओ द्वारा मदिर या घर मे दी जाती थी। अवेस्ता ही पाठ्यक्रम था। विषय थे—धर्म, ओपधि और कानून और शिक्षा का तरीका जबानी था। उच्च वर्ग के कुछ लोग उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे जिसमे वे प्रशासन मे अधिकारी का पद पा सके। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए घोर परिश्रम और तपस्या करनी पडती थी।

इस प्रकार फारसवासियो का सास्कृतिक जीवन उत्साहप्रद और गतिमान था।

(द) फारसवासियो का आर्थिक जीवन

कर्मठ पर्वतीय नस्ल होने के कारण फारसी जीविका के लिए व्यापार और समय-समय पर युद्ध पर निर्भर करते थे।

कृषि—जेंद-अवेस्ता के अनुसार कृषि की स्तुति मानव के मूलभूत और कुलीनतम व्यवमायो मे से है। भूमि पर खेती सामन्तो-सरदारो के भाडेदारो, विदेशी-गुलामो, मालिक-किसान द्वारा की जाती थी। लकडी का हल जिसमे धातु की नोक लगी होती थी, बैलो द्वारा खीचा जाता था। खेतो मे पानी बनावटी सिंचाई द्वारा पहुँचाया जाता था। खेतो मे गेहूँ और जौ उगाये जाते थे। मास-मदिरा के वे लोग शौकीन थे और इनको पर्याप्त मात्रा मे खाते-पीते थे।

उद्योग—फारस मे उद्योग का विकास नही हुआ था। तथापि फारस का सम्राट् सुदूर पूर्व के देशो से पर्याप्त राजस्व वसूल किया करता था और उसी से औद्योगिक वस्तुएँ खरीदा करता था।

व्यापार—वाणिज्य को लम्बे-चौडे जलमार्ग से तथा सडको से बडा प्रोत्साहन मिला। फिर भी फारसवासी व्यापार को हेय दृष्टि से देखते थे। उनके अनुसार बाजार झूठ का स्रोत है।

(इ) राजनीतिक विचारधारा को प्राचीन फारस का योगदान

फारस की शाही सस्था—फारस की शाही सस्था दारियुस महान् द्वारा मानव को दी गयी एक अनुपम भेट है। उसका सविस्तार वर्णन यो है —

शाहशाह और सामन्तों के परिवार—सिद्धात मे फारस के शाह को जो शाहो का शाह था, पूर्ण सत्ता, असीमित अधिकार प्राप्त था। वह पृथ्वी पर ईश्वर का एक-मात्र प्रतिनिधि माना जाता था और सिर्फ उसी के प्रति उत्तरदायी था। धार्मिक समा-रोह मे उसकी भूमिका उसकी दिव्य स्थिति को प्रकट करती थी। वह अपनी इच्छा-

चुनाव करने पर रखता था। फिर भी शाही अधिकार कुछ हद तक सामन्ती परिवारों द्वारा सीमित कर दिया गया था। इसके अलावा शाहशाह आम तौर पर अपनी मन्त्रि-परिषद से परामर्श लिया करता था। मन्त्रि-परिषद् के सदस्य वे सामन्त हुआ करते थे जिन्हें शाहशाह ने बड़ी-बड़ी जागीरें दे रखी थीं और जो उसे सैनिक और सामग्री की सहायता दिया करते थे। ये सामन्त व्यावहारिक तौर पर अपने क्षेत्र के अधिपति थे।

फारस
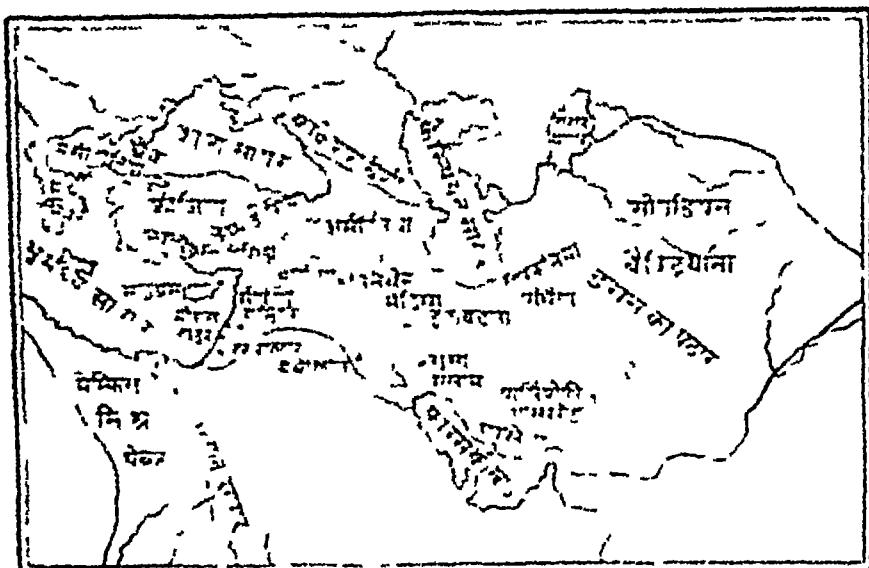
साम्राज्य का सत्रपी मे विभाजन—उसने अपने विशाल साम्राज्य को २० क्षत्रपियो मे विभाजित किया था। मिस्र, पैलेस्टिन, सीरिया, फोनेसिया, लीडिया, फ्रीगिया, आयोनिया, अर्मीन्यिा, कप्पाडोनिया, सिलीसिया, आर्मेनिया, काकेशिया, बेबीलोनिया, मेडिया, पर्शिया, आधुनिक अफगानिस्तान और बलूचिस्तान, सिंधु के पश्चिम का भारत, सोगडियाना, बैक्ट्रिया तथा मेसागेटी के क्षेत्र और केन्द्रीय एशियाई कबीले। प्रत्येक प्रान्त एक राज्यपाल के अधीन था। राज्यपाल को 'सत्रप' कहा जाता था। वे सत्रप अपने क्षेत्र मे जब तक कि वे शाहशाह को लगान नकद अथवा वस्तुओ के रूप मे दिया करते थे, पूरी तरह सत्ता सम्पन्न थे।

सेनापति प्रत्येक सत्रप मे—सत्रप द्वारा संभावित विद्रोह को रोकने के लिये प्रत्येक प्रांत मे एक सेनापति भी नियुक्त था। वह सत्रप के अन्तर्गत नही था। सीधे फारस के शाहशाह के प्रति ही उसकी निष्ठा थी।

शाही सचिव—सत्रप, सेनापति के अलावा दारियुस ने एक शाही सचिव की भी नियुक्ति कर रखी थी जो प्रत्येक प्रान्त के प्रशासन कार्य पर उसे समय-समय पर रिपोर्ट दिया करता था। वह सीधे शाहशाह के प्रति ही उत्तरदायी था।

शाही सेना फारस साम्राज्य का मुख्य आधार स्तम्भ उसकी शाही सेना थी, जिसमे विभिन्न सत्रपियो के डिवीजनो का प्रतिनिधित्व था। प्रत्येक डिवीजन का अपना-अपना अलग चिह्न था। शाहशाह को अधिकार था कि १५ से ५० वर्ष के सभी योग्य शरीर वालो को वह अनिवार्य रूप मे सेना मे भर्ती कर सकता था। जो ऐसा नही करता था उसे अनेक क्रूर यातनाएँ दी जाती थी।

शाहशाह के गुप्तचर—शाहशाह के प्रति राज्यपाल का विद्रोह रोकने और उसका पता लगाने के लिए दारियुस ने ऐसे अधिकारियो की नियुक्ति की थी जो उसके आँख और कान कहे जाते थे अर्थात् गुप्तचर थे। वे साम्राज्य भर मे घूमते रहते थे और शाहशाह को किसी भी अवज्ञा की सूचना दिया करते थे।

कर—प्रत्येक सत्रपी को शाहशाह को प्रतिवर्ष अमुक रकम या वस्तुएँ करके रूप मे देनी होती थी।

चौडी सडकें और डाक-प्रणाली—ये अनेक सत्रपी एक दूसरे मे लम्बी, चौडी और अन्य सडको से जुडी हुई थी। १७०० मील लम्बी शाही सडक साम्राज्य के एक छोर से दूसरी छोर तक जाने वाली प्राचीन ससार की भव्यतम और सबसे लम्बी सडक है। इन सडको ने सिर्फ विद्रोह को तुरन्त दबा देने मे सहायता की। व्यापार, वाणिज्य और यात्रा मे भी सहायक हुई। डाक-प्रणाली भी निपुण और तीव्रगति से चलने वाले सदेशवाहको के हाथो मे थी, जिनकी सेवा पूर्व मे अपूर्व थी।

न्याय का प्रशासन—न्याय का प्रशासन सुव्यवस्थित था। ऐसे दुभाषिये थे जो कानून के प्रवक्ता थे। वे मुकदमे मे लगे लोगो को कानून की बारीकियाँ समझाते थे। तथापि समझौतो को प्रोत्साहित किया जाता था। न्याय देने मे विलम्ब नही होने दिया जाता था। अन्यायपूर्ण न्यायधीशो को जीवित ही जला दिया जाता था। रिश्वत लेना और देना दोनो दण्डनीय थे। सजे का रूप अमानवीय और क्रूर था।

सिक्कों का प्रचलन—फारस के शाह सोने और चाँदी के सिक्को के लिये प्रसिद्ध थे। सिर्फ शाहशाह ही सोने के सिक्के ढलवा सकता था जबकि सत्रप और सेनापति चाँदी और ताँबे के सिक्के ढलवाते थे। सोने का सिक्का 'दारिक' के नाम से जाना जाता था और वजन ८ ४ ग्राम होता था जबकि चाँदी का सिक्का शाकेल कहलाता था और वजन मे ५ ६ ग्राम होता था।

इस प्रकार फारसी साम्राज्य शाही सरकार के प्रयोग मे रोम के पूर्व मे सबसे सफल था।

सिन्धु घाटी मे ईरानियो (फारसियो) का आक्रमण (५१७ बी० सी०)— हेरोडोटस के अनुसार ५१७ बी० सी० मे डेरियस (दारा) ने स्काइलेक्स की कमान के अन्तर्गत पंजाब मे सिन्धु घाटी की खोज के लिये नव-सेना की एक टुकड़ी भेजी थी। अत राजपूताने के रेगिस्तान तक सिन्धु घाटी पर डेरियस ने अपना आधिपत्य एव सर्वस्व अवश्यमेव स्थापित कर लिया होगा। इस प्रकार सिन्धु घाटी का पूरा प्रान्त डेरियस के साम्राज्य का २०वां प्रान्त बन गया। यह प्रान्त फारसी साम्राज्य का सबसे धनी, सम्पन्न एव घनी आबादी का प्रान्त माना जाता था। फारसी व ईरानी आक्रमण के निम्नलिखित प्रभाव थे —

(१) भारतीय सूबे के सूबेदार, राजा फारस के सम्राट् को दस लाख पौंड के मूल्य की स्वर्ण-धूलि या नजराना, मालगुजारी के रूप मे पेश करना पड़ता था।

(२) फारस की सेना मे भरती होने के लिये सैनिको की पूर्ति भी इसे करनी पड़ती थी। डेरियस के पुत्र जेरेक्सीज के शासन काल (४८६-४६५ बी० सी०) मे जिसने यूनान पर हमला किया था, फारस की सेनाओ मे भारतीय सेना की भी एक टुकड़ी थी।

(३) फारस के सम्राटो के अन्तर्गत रह कर जिन भारतीयो ने यूनानियो के विरुद्ध युद्ध किया था वे उनके सम्पर्क मे आये। इस प्रकार सर्वप्रथम भारत का सम्पर्क पश्चिमी ससार से स्थापित हुआ।

(४) चूंकि भारतीय सूबे पर फारसी शासन लगभग दो शताब्दियो तक रहा अत मौर्य वंश के शासन काल मे प्रशासनिक तंत्र एव व्यवस्था मे कुछ उसका प्रभाव पड़ा तथा साथ ही साथ लोगो के रीति-रिवाज भी इससे प्रभावित हुए।

(५) ऐसा विश्वास किया जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने दरबार मे फारसी सम्राटो के दरबार की कुछ प्रथायें लागू की थी।

(६) सम्राट् अशोक के शिलालेख फारस के सम्राट् डेरियस प्रथम के लेखों की ही तरह थे।

(७) ऐसा विश्वास किया जाता है कि वे भारतीय जो फारस सम्राट् के प्रशासन मे नौकर थे, उन्होने अरमैक वर्णमाला से खरोष्टी वर्णमाला का विकास किया जो दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जाती है।

(८) भारतीयो ने फारसी सिक्को के ढालने की तकनीक एव प्रक्रिया को सीखा जिसका प्रभाव भारतीय सिक्को के ढालने पर पड़ा। फारसी सिक्के उनके ढालने की सफाई और सरचना मे भारतीय सिक्को से अधिक श्रेष्ठ थे।

(९) और अन्त मे फारसी आक्रमण का प्रभाव काफी हद तक भारतीय कला, शिल्पकला एव वास्तु कला पर पडा ।

प्रोफेसर आर० डी० बनर्जी के अनुसार गोल घण्टाकार पीठिका वाले अशोक-स्तम्भ जिनके ऊपरी पीठिका मे साँड और शेर अकित है, फारसी शिल्प मे प्रभावित है ।

(फ) फारस मे कला और भवन-निर्माण कला

भवन-निर्माण कला—वास्तुकला या भवन-निर्माण कला मे वास्तु कलाविदो और शिल्पियो ने न केवल प्राचीन मिस्र, बेबीलोनिया एव असीरिया की कला को अपनाया अपितु उन्होंने भवन-निर्माण कला मे अपनी कुछ मौलिक परिकल्पनाएँ भी विकसित की । यह तथ्य पासरगेड, इकबटना, परसीपोलिस, सूसा एव नक्सी-रुस्तम के शाही महलो एव फारस के राजाओ की कबरो और मकबरो की बनावट से सिद्ध होता है ।

शाही भवन—प्लेटफार्मों (चबूतरो) पर शाही महल बनाये जाते थे । इन महलो मे लम्बे एव ऊँचे जीने नीचे प्लेटफार्म (चबूतरे) के पास से ऊपर तक बनाये जाते थे ।

इनकी लम्बी सीढियो की बनावट मेसोपोटामिया की बनावट की नकल लगती है । ये सीढियाँ इतनी पृथक्-पृथक् और चौडी थी कि इन पर दस घुडसवार एक साथ चढ सकते थे । भवन-निर्माण के इतिहास मे यह एक अद्वितीय उदाहरण है । प्रो० फर्ग्युसन के अनुसार ये ससार के किसी भाग की अपेक्षा अत्यन्त भव्य सीढियाँ हैं । यहाँ का विशाल चबूतरा १५०० फीट लम्बा और १००० फीट चौडा तथा २० से ५० फीट ऊँचा है । इसमे से गदा पानी निकालने की भी एक भूमिगत व्यवस्था है जो उलझन भरी है । सुरगे ६ फीट व्यास वाली चट्टानो को काटकर बनाई गयी हैं ।

यह अभूतपूर्व है कि चेहिल मीनार अर्थात् सेरेसेक्स प्रथम का महान् कक्ष एक लाख वर्ग फीट से अधिक है—प्राचीन मिस्र के करनाक मदिर से भी बडा । इसके ७२ सगमरमरी स्तम्भो मे से १३ ही बच रहे हैं । इनके ६४ फीट ऊँचे स्तम्भ अपनी कला-पूर्ण सुन्दरता, भव्यता, सूक्ष्मता आदि के लिए प्राचीन मिस्र और मिस्र से भी अधिक स्मरणीय है । इनके प्रवेश-द्वार पर स्थित परवाले साँड असीरिया की कला और भवन निर्माण कला की अनुकृतियाँ हैं ।

साइरस और दारियुस प्रथम की कब्रें—साइरस और दारियुस प्रथम की पासर-गेड और नक्शे-ए-रुस्तम स्थित कब्रो पर मिस्री और हिंदू भवन-निर्माण कला का प्रभाव है ।

डा० विल डुराट कहते हैं—फारसी कला के बारे मे जो प्राय सभी कलाओ के बारे मे कहा जा सकता है, वह औरो से ली हुई थी ।

छोटी कलाएँ—फारसियो ने छोटी-मोटी कलाओ जैसे फर्नीचर बनाने, सजावट, सगीत, हीरे-जवाहिरात आदि मे भी कुछ योगदान किया। उनका फर्नीचर साज-सज्जापूर्ण होता था। यहाँ तक कि उनकी मेजो पर सोने का पानी चढा होता था, कीमती धातुएँ और पत्थर जडे हुए होते थे। उनके कालीन अत्यत मुलायम होते थे। उनकी बनावट और रग दोनो ही आकर्षक थे। वे हार्प, बाँसुरी और ढोल जैसे वाद्य यत्र उपयोग मे लाते थे। हीरे-जवाहिरात की वस्तुएँ उन्हे बहुत प्रिय थी। इनमे कर्णफूल, हार, पायजेब उल्लेखनीय हैं, जिनमे कीमती पत्थर जटे हुए होते थे। फारसी शाहशाह सोने के सिहासनो को जिनकी बाँहे सोने की और पैर भी सोने के होते थे, बहुत पसद करते थे। इस प्रकार ऐश्वर्य का प्रदर्शन किया करते थे।

लेखन कला—फारसियो ने ३६ नोकदार किन्तु उत्तरोत्तर मोटे चिह्नो की एक वर्णमाला बनायी थी। प्राचीन फारसी भाषा सस्कृत से मिलती-जुलती थी और दोनो भारतीय-यूरोपीय भाषाओ के समूह से निकली। फारसी मिट्टी की टिकियो पर लिखा करते थे और बडे पत्थरो पर खुदाई के लिये वही भाषा काम मे आती थी।

यद्यपि विश्व सभ्यता को फारस का योगदान कम है किन्तु जैसा कि प्रो० हार्नशा ने कहा है, इससे इकार नही किया जा सकता कि फारसी साम्राज्य का सगठन युद्ध के लिये नही बल्कि शान्ति के लिये किया गया था। वह लूट से नही बल्कि वाणिज्य से जीवित था।

प्रश्नावली

१ सरकार के गठन, लेखन कला तथा अन्य कलाओ के क्षेत्र मे फारसी की चर्चा कीजिए।
२ राजनीतिक विचारधारा के क्षेत्र मे फारसी का क्या स्थान था ?
३ फारसियो का सामाजिक जीवन कैसा था ?
४ फारसियो के आर्थिक जीवन की चर्चा कीजिए।
५ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —
(अ) साइरस, (आ) कैंबिसस, (इ) दारियुस महान्।

पाँचवाँ अध्याय

यूनान का गौरव

(अ) परिचय

यूनानियो की अद्वितीयता—यदि मानव-जीवन का मूल्य डालरो, पौंडो और रुपयो मे नापा जाये, तो प्राचीन यूनानी (Greeks) बहुत गरीब माने जायेंगे। दूसरी ओर यदि इसे इस दृष्टि से मापा जाये कि लोगो द्वारा उपेक्षित और प्रोत्साहित मूल्य कौन-कौन से हैं, कला, स्थापत्य, साहित्य, विज्ञान, दर्शन के क्षेत्र मे उनकी उपलब्धियाँ क्या हैं, उन्होने क्या राजनीतिक प्रयोग किये, तो प्राचीन यूनानी लोग, निस्सदेह, प्राचीन विश्व मे अद्वितीय सिद्ध होते हैं। इसीलिये इस तरह की जाति के अध्ययन का रोचक, ज्ञानवर्धक और निर्देशमय होना स्वाभाविक है।

यूनानी कौन थे ?—क्लासिकीय यूनानी कौन थे ? यूनानी लोग मुख्यतया चार जातियो से मिलकर बने थे, जो इस प्रकार थी—एकियाई (Achaeons) जो एजिया की लहरो को पार करने वाली तथा यूनान की भूमि पर बसने वाली पहली जाति थी, एओलियाई, डोरियाई तथा आयनिआई जातियाँ (the Aeolians, the Dorians and the Ionians)। इनमे से अतिम दोनो जातियो ने यूनान के इतिहास मे बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यूनान के प्राकृतिक गुण तथा यूनानी सस्कृति पर उनका प्रभाव—यूनान एक प्रायद्वीप है, जिसके तीन ओर भूमध्य सागर है। इसलिए इसका तटवर्ती प्रदेश काफी लम्बा-चौडा है। इसका भीतरी भाग पहाडो द्वारा छोटे-छोटे प्रातो मे बँटा हुआ है। तट के साथ-साथ अनेक द्वीप हैं, विशेष तौर से पूर्वी तट पर।

(१) समुद्र की सरल पहुँच के कारण यूनानी सामुद्रिक और उपनिवेश-निर्माता जाति के रूप मे विकसित हुए। धरती के अनुपजाऊपन ने भी सामुद्रिक कार्यों को विकसित करने के लिए उन्हे मजबूर किया—खास तौर पर व्यापार के लिए उपनिवेश स्थापित करने के लिये।

(२) पहाड पूरे देश को छोटे-छोटे प्रातो मे विभक्त कर देते थे जिसके कारण छोटे-छोटे प्रभुतासपन्न नगर राज्यो का विकास हुआ, और इस तरह विशिष्टता की भावना को प्रोत्साहित किया।

(३) एजियन सागर के द्वीप यूनान और एशिया माइनर के बीच की कडी बने—एशिया माइनर की सभ्यता ज्यादा पुरानी थी, इसीलिए यूनान का पूर्वी भाग, जो एशिया के सामने पडता था, पश्चिमी भाग से पहले ही सभ्य बन गया।

(४) अतत , चूँकि यूनान की जलवायु चिपचिपी है और धरती बहुत उपजाऊ नही है, इसलिए यह स्वाभाविक था कि यूनानी लोग ओजस्वी, स्फूर्तिवान और परिश्रमी बन गये ।

यूनान (ग्रीस) के नगर राज्य

एक ओर जहाँ पूर्वीय साम्राज्य का विकास एव उन्नयन नदी-घाटियो के अचलो मे हुआ, वही दूसरी ओर यूनानी नगर राज्यो (ग्रीक सिटी स्टेट्स) का विकास एव उदय एजियन सागर के तटो एव उसके आरपार फैले द्वीपो मे हुआ । यूनान नगर के निवासी अपने नगर राज्यो को पोलिस कहते थे । अरगास, कोरिन्थ एव थिवीज आदि
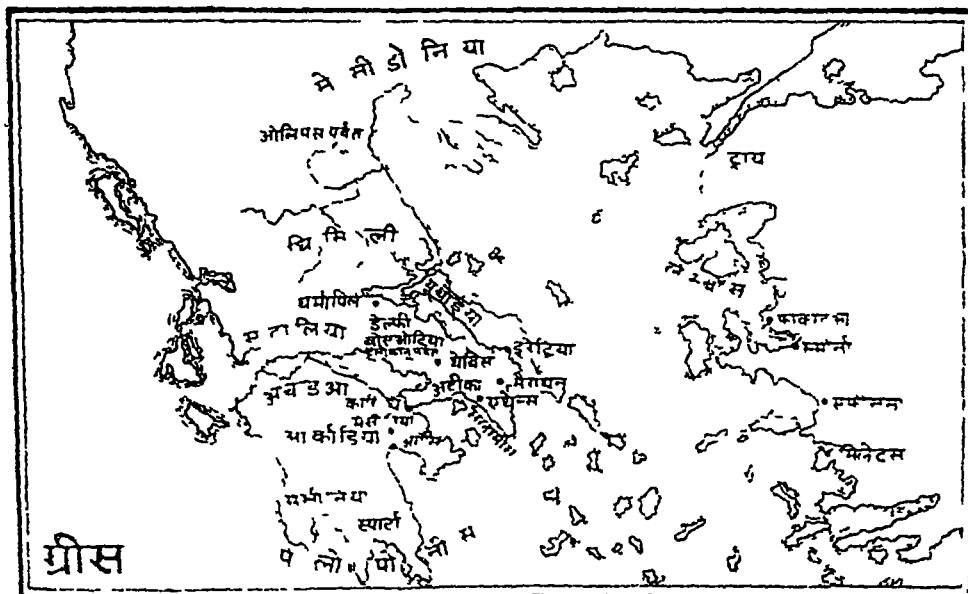
कुछ ऐसे ही महत्त्वपूर्ण नगर राज्य थे । यूनानी नगर राज्यो (ग्रीक सिटी स्टेट्स) की कुछ विशेषताएँ नीचे दी गई हैं —

(१) छोटा आकार—यूनानी नगर राज्यो का आकार एव विस्तार छोटा होता था । ५वी शताब्दी मे अट्टिका नगर राज्य के वयस्को (बालिगो) की जनसख्या केवल १,१९,००० थी, जिसमे केवल ४०,००० व्यक्तियो को ही नागरिकता प्राप्त थी अर्थात् उतने ही व्यक्ति उस राज्य के नागरिक थे । एथेन्स नगर राज्य की जनसख्या (आबादी) का एक बडा भाग दासो का था ।

(२) राजनैतिक रूप से अच्छी तरह सगठित—प्रत्येक यूनानी नगर राज्य राजनैतिक रूप मे अच्छी तरह सगठित था और पूर्णरूपेण स्वतन्त्र था । साथ ही साथ उसे अपनी स्वतन्त्रता के लिए गौरव भी था ।

(३) **सक्रिय सार्वजनिक एव देशभक्ति का जीवन**—नगर राज्य के नागरिक से राज्य के प्रशासनिक मामलो मे सक्रिय भाग लेने की अपेक्षा की जाती थी। ऐसे सक्रिय सार्वजनिक जीवन द्वारा मनुष्यो की बुद्धि का परिमार्जन होता था और वह अधिक तीक्ष्ण वन जाती थी। मनुष्य प्रत्येक वस्तु के प्रति समालोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाता था। नगर राज्य के नागरिक इतने उद्‌बुद्ध और जागरूक होते थे कि वे किसी भी जुल्म या दमनात्मक कार्य को मूक रहकर नही सह सकते थे। इस प्रकार प्रत्येक नगर राज्य के नागरिक अपने राज्य के प्रति तीव्र निष्ठा एव देशप्रेम की भावना से ओतप्रोत होते थे। दूसरे शब्दो मे राज्य, समाज का पर्याय वन गया था। दोनो एक समझे जाने लगे थे।

(४) **सीधा या प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र**—यूनानी नगर राज्य सीधे या प्रत्यक्ष प्रजातत्र के एक विशिष्ट नमूने या उपकरण थे। राज्य के नागरिक प्रत्यक्ष रूप मे सभी सरकारी कार्यों मे भाग लेते थे चाहे वे सैनिक हो या असैनिक इन सभी मे नागरिक सीधे और प्रत्यक्ष रूप मे भाग लेते थे। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है राज्य के सभी नागरिक राज्य की सरकार एव प्रशासन के सचालन मे सीधे तौर से सम्बद्ध होते थे।

(५) **समाज एव राज्य का एक ही अर्थ**—प्राचीन काल के यूनानी नगर राज्य सर्व शक्तिमान एव सर्व विद्यमान होते थे। मानव जीवन के सभी पक्ष उसके अन्तर्गत आते थे। ऐसे राज्यो का मुख्य उद्देश्य अपने सभी नागरिको के जीवन को अधिक सुन्दर तथा वेहतर बनाना था। इसके फलस्वरूप राज्य के प्रत्येक नियत्रण का उद्देश्य उक्त लक्ष्यो को प्राप्त करना होता था, और इन लक्ष्यो को प्राप्त करने की प्रक्रिया को कार्यान्वित करने मे राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एव धार्मिक मामलो के बीच कोई फर्क या अन्तर नही माना जाता था। यूनानी नगर राज्य की सही परिभाषा वर्क के मतानुसार "सभी विज्ञान मे भागीदारी, सभी कलाओ मे भागीदारी, सभी धर्माचरणो मे भागीदारी तथा सभी पूर्णताओ मे भागीदारी का नाम यूनानी नगर राज्य था।

सामान्यतया राज्य का प्रत्येक नागरिक प्रशासनिक विधान सभा का सदस्य होता था। साथ ही साथ वह सैनिक तथा न्यायाधीश भी होता था। वह अपने सभी सार्वजनिक कार्यों को स्वय करता था। इस प्रकार प्राचीन यूनानी नगर राज्य समाज के प्रत्येक अगो से ऐसे घुल-मिल गये थे कि वे और समाज समानार्थी हो गये थे और दोनो को एक ही समझा जाता था। यूनानी नगर राज्य एक साथ ही राज्य (गिरजाघर) एव पाठशाला आदि सभी था।

(६) **राजनैतिक परिवर्तन की आवृत्ति**—यूनानी नगर राज्यो की सरकारो की सरचनाओ मे राजनीतिक परिवर्तन हुए। राजतन्त्र से प्रारम्भ होकर कालान्तर मे इनकी सरकारे निरकुश तानाशाही की ओर अभिमुख हुई। अत्याचारी शासन तन्त्र के

स्थान पर अभिजात वर्ग के व्यक्तियो का शासन-तन्त्र आया। इसके पश्चात् सगठित असैनिक राजतन्त्र की नीव पडी।

अन्त मे इसके स्थान पर प्रजातन्त्र उदय हुआ। उस समय की यूनानी धारणा एव विचारो के अनुसार प्रजातन्त्रात्मक सरकार को एक विकृत प्रकार की सरकार माना जाता था। इस प्रकार पुन क्राति की शुरुआत हुई।

(७) **अन्तर्राष्ट्रीय विचार वैषम्य**—यद्यपि यूनानी नगर राज्यो ने राजनैतिक विकास के उच्च स्तर को प्राप्त कर लिया था, और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की गारटी भी राज्यो द्वारा दी जाती थी। तथापि उनमे आपसी मतभेद, वैमनस्य एव आन्तरिक घृणा तथा ईर्ष्या आदि चरम बिन्दु पर थी। अत इसके फलस्वरूप सगठित एव एकतापूर्ण यूनानी नगर राज्यो का निर्माण हो सका। अधिक से अधिक वे केवल एक लचर एव ढीला राज्यो का सघ स्थापित कर सके। इसलिये वे कमजोर हो गये और कालान्तर मे मेसिडोनिया तथा रोमन सबल शक्तियो के सामने टिक न सके और घुटने टेक दिये।

(आ) यूनानी समाज

समाज का चतुर्मुखी वर्गीकरण—यूनानी समाज का ढाँचा सीधा-सादा था। शिखर पर राजा का स्थान था। उससे नीचे सामतो का स्थान आता था। शुरू-शुरू मे सभी सरकारी पदो पर इन सामतो का एकाधिकार रहता था, लेकिन बाद मे, इन पदो का मार्ग सभी नागरिको के लिए खुल गया। ये सामत भू-स्वामी कुलीन वशत्व का निर्माण करते थे और इनके पास बडी-बडी जमीदारियाँ और अनेक दास होते थे। इनमे से कुछ व्यापारी भी होते थे। सामत वर्ग के नीचे सामान्य मुक्त जन का क्रम आता था, जिनके पास धरती के छोटे-छोटे टुकडे रहते थे, जिसमें वे खुद ही खेती करते थे। तीसरा सामाजिक वर्ग श्रमिक खेतिहरो (Thetes) का था जो भूमिहीन मुक्तजन ही होते थे और पारिश्रमिक के लिए मजदूरी करते थे। सामाजिक पीढी की सबसे निचली पायदान पर दास रहते थे जो या तो युद्धबन्दी होते थे या जिन्हे समुद्री डाकुओ से खरीदा जाता था या वे ऋण के कारण गुलाम हो जाते थे। स्त्रियो और गुलामो को नागरिक नहीं माना जाता था, अत औरतो को वह अधिकार और आजादी प्राप्त नही थी, जो उन्हें मिस्र जैसे अन्य देशो मे प्राप्त थी। यूनानियो के परिवार, प्राचीन भारत के आर्यों के परिवारो की तरह पितृवशीय ही होते थे।

(इ) यूनानी अर्थ-व्यवस्था

यूनानी आर्थिक जीवन सपन्न नही था। धरती उपजाऊ नही थी, इसलिये अपनी रोजी कमाने के लिए किसान को बहुत कठोर श्रम करना पडता था। वह गेहूँ, जौ, मटर, दाले, अरिड, अगूर और अजीर आदि उगाता था। सरदार लोग बडी-बडी जमीदारियो के स्वामी होते थे। धनी भी होते थे और वे मुक्त जनो को बडे ऊँचे व्याज पर

पैसा उधार देते थे। जो लोग व्याज-सहित मूलधन नही चुका पाते थे, उन्हे ऋणदाता अपना गुलाम बना लेता था। इस तरह के ऋण से बने गुलामो की सख्या बहुत अधिक थी। परन्तु ५९४ ईसा पूर्व मे सोलोन (Solou) ने एक कानून बनाकर ऋण के आधार पर मुक्त जन को दास बनाने की प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। जब यूनानियो ने एशिया माइनर, कृष्ण सागर के तटवर्ती प्रदेशो, सिसिली, इटली, फ्रास, स्पेन, मिस्र आदि देशो मे अपने उपनिवेश स्थापित कर लिये, तो यूनानी अर्थतन्त्र मे पर्याप्त सुधार हो गया। एथेस के जहाज मिस्र तथा मैसोपोटेमिया से कालीन, चटाइयाँ, हीरे-जवाह-रात, रेशम और गर्म मसाले तथा डैन्यूब (Danube) से पालतू पशु और दास ले जाते थे। यूनानी व्यापारी पश्चिमी भूमध्य सागर मे शराब, बर्तनो, चाँदी के आभूषणो तथा अन्य अनेक उत्पादित वस्तुओ के बदले मे अनाज, दूध के पदार्थ, लकडी, चाँदी तथा सोना खरीद कर लाते थे। यूनानी व्यवसायी उत्पादित पदार्थ बेचकर खाद्य पदार्थ और कच्चा माल लेकर आते थे।

(ई) यूनान का राजनीतिक योगदान

प्राचीन यूनानियो ने राजनीतिक चिंतन मे बहुत बडा योगदान दिया। सोलोन (Solon), क्लीस्थेनीस (Cleisthenes) तथा पैरीक्लीस (Pericles) तीन ऐसे विख्यात व्यक्तित्व थे, जिन्होने राजनीतिक चिंतन मे महान् योगदान दिया।

जब ५९४ ईसापूर्व मे सोलोन का चुनाव मुख्य न्यायाधीशो मे से एक के रूप मे किया गया, तो उसने अपने हमेशा याद रहने वाल सुधारो के द्वारा प्रजातत्र के सामा-जिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पहलुओ की नीव रख दी।

क्लीस्थेनीस ने ५११ ईसापूर्व मे कुछ समकालीन राजनीतिक सस्थाओ का पुनर्गठन किया और कुछ नयी सस्थाओ की स्थापना की, जिनमे बहिष्करण-प्रणाली (System of ostracism) भी शामिल थी जो प्रजातत्र के सुरक्षित परिचालन के लिये एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया सिद्ध हुई।

पेरीक्लीस को, जो ४५९ ईसापूर्व से लेकर ४२९ ईसापूर्व तक—यानी जिस वर्ष मे उसकी मृत्यु हुई, तब तक—३० वर्षों की अवधि मे हर साल सेनाध्यक्ष चुना जाता रहा, जनता द्वारा सबसे ज्यादा आदर और प्रशसा मिली। उसने राजनीतिक सस्थाओ को और अधिक प्रजातन्त्रात्मक बनाया और लोगो मे भी प्रजातन्त्र की भावना का प्रचार किया। इस प्रकार एथेस मे प्रजातन्त्र की शुरुआत सोलोन ने की, क्लीस्थेनीस ने उसे समृद्ध किया और पेरीक्लीस की प्रेरणा ने उसे विकास के शिखर तक पहुँचा दिया।

अपने राजनीतिक चिंतन मे यूनानी लोग निश्चित रूप से आदर्शवादी की बजाय यथार्थवादी या मनोविज्ञानवादी थे। विभिन्न शासन-प्रणालियाँ, जैसे राजतंत्र, दोहरे राजतन्त्र, मण्डल तन्त्र (Oligarchy), अभिजात्यतन्त्र, निरकुश तन्त्र आदि को लेकर भी लोकहित मे परीक्षण किये गये, लेकिन ये प्रणालियाँ असफल रही। अन्तत एक नये किस्म की शासन प्रणाली को क्रियान्वित किया गया, जिसके अन्तर्गत सभी नागरिक राज्य के मामलो के प्रशासन मे हिस्सा ले सकते थे। इसी को विशुद्ध या प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र कहा जाता है। एथेंस के प्रजातन्त्र की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार थी—

पेरीक्लीस

आम सभा (Ecclesia)—एथेंस के २० वर्ष या इससे ऊपर की आयु के सभी मुक्त नागरिक इसके सदस्य थे। आधुनिक शब्दावली मे इसे विधान सभा कहा जा सकता है। आम सभा कानून बनाती थी। युद्ध और शान्ति, संधियो और गठबन्धनो के प्रश्नो पर निर्णय लेती थी, कार्यपालिका-अधिकारियो की नियुक्ति करती थी, जिन्हे "न्यायकर्त्ताओ" (Archons) के नाम से जाना जाता था और जो आम सभा के प्रति उत्तरदायी होते थे। इस प्रकार, सरकार को आम सभा के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया। विधान सभा सप्ताह मे एक बार बैठती थी। इन बैठको मे दो से लेकर तीन हजार तक नागरिक भाग लेते थे।

वरिष्ठ मडल—इस मण्डल मे केवल भूतपूर्व न्यायाधीश ही रहते थे। यह मण्डल सभी फौजदारी मामलो मे उच्चतम न्यायपालिका के रूप मे कार्य करता थाऔर राज्य धर्म के सभी प्रश्नो का फैसला करता था। उसका मुख्य कार्य कानून, व्यवस्था तथा शान्ति बनाये रखना और राज्य के कानूनो का लागू करना होता था। इस प्रकार सरकार का न्यायिक तथा कार्यपालिकीय अग होता था।

पचशतकीय सभा—इस सभा मे पाँच सौ सदस्य होते थे, और इनमे से पचास-पचास का समूह एक-एक क्षेत्रीय कबीले का प्रतिनिधित्व करता था। कुल मिलाकर एथेंस मे ऐसे दस कबीले थे। इस सभा के सदस्यो का चुनाव मतदान से नही होता था बल्कि लाटरी द्वारा एक-एक वर्ष के लिये होता था। सक्षम और सहज कार्य-प्रणाली के ख्याल से, पचास-पचास सदस्यो के हर गुट की एक समिति बना दी जाती थी, जो कि वर्षावधि के दसवे हिस्से के लिये पूरी सभा के नाम पर काम करती थी।
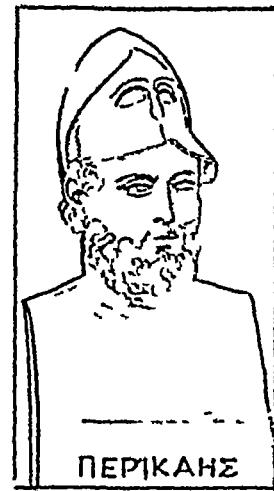
इस समिति मे नौ सदस्य और जोड दिये जाते थे, यानी शेष कबीलो मे से एक-एक। यह सभा आम सभा को अपना कार्य करने मे सलाह और सहायता देती थी।

न्यायालय—पूरे एथेंस मे अनेक न्यायालय थे। इनके न्यायाधीशो का चुनाव भी एथेंस के नागरिको मे से लाटरी द्वारा होता था। इस न्यायालय के सदस्य सरकारी न्यायाधीशो (Archons) की अपील सुन सकते थे। लोकप्रिय न्यायालयो मे अपील का यह अधिकार अतत एथेनियाई प्रजातन्त्र का सुदृढ दुर्ग सिद्ध हुआ।

बहिष्कार की सस्था—नये निरकुशवादियो के उदय पर रोकथाम लगाने और प्रजातत्र की सुरक्षा के ख्याल से क्लीस्थेनीज ने एक उच्चकोटि की सस्था—बहिष्करण को प्रतिपादित किया, जिसके द्वारा राज्य के लिये खतरनाक समझे जाने वाले किसी भी व्यक्ति से शान्तिपूर्वक छुटकारा नही पाया जा सकता था। यह नयी प्रथा इस प्रकार थी यदि आम सभा तथा पचशतकीय सभा, वर्ष मे एक बार, यह निर्णय लेती थी कि किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ के कारण राज्य को किसी तरह का खतरा है, तो प्रत्येक नागरिक को बुलाकर उसे एक "पत्रक" (Ostrakon) पर राज्य के लिए खतरनाक व्यक्ति का नाम लिखने के लिये कहा जाता था। तब इन पत्रको को एक गढे में डाल दिया जाता था। यदि किसी एक व्यक्ति के विरुद्ध ६००० मत एकत्र हो जाते थे, तो उसके दस दिनो के अन्दर-अन्दर राज्य छोड देने और दस वर्ष के लिए जलावतन हो जाने के लिए कहा जाता था। इस प्रथा को "बहिष्करण" भी कहा जाता था, क्योकि बहिष्कृत व्यक्ति का नाम "बहिष्कार पत्रक" पर लिखा जाता था। प्रजातन्त्र के सुरक्षित चलन के लिए यह एक अद्वितीय सस्था थी।

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र—हमारा आज का प्रजातन्त्र अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधिवादी है। इसके विपरीत एथेंस का प्रजातन्त्र प्रत्यक्ष था। सभी नागरिक राज्य के कार्यों के प्रशासन मे प्रत्यक्ष हिस्सा लेते थे। आम सभा के सदस्यो के रूप मे, सभी नागरिको को राज्य की सभी समस्याओ पर बहस करने का अधिकार प्राप्त था। प्रत्येक नागरिक अन्य तीनो प्रकार की सभाओ का सदस्य बनने या कोई भी पद प्राप्त करने की उम्मीद रख सकता था। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक राज्य की सेवा करता था और अपने आप पर भी शासन करता था।

दास सस्था—यह बडे आश्चर्य की बात है कि प्राचीन एथेंस मे दास सस्था को मानवीयता विरोधी या प्रजातन्त्र विरोधी नही माना जाता था। बल्कि इसे जरूरी समझा जाता था, ताकि नागरिक इस योग्य हो सके कि उनके पास राज्य के मामलो में हिस्सा लेने के लिये पर्याप्त वक्त बचा रहे।

यूनानी राजनीतिक सिद्धान्त—यूनानी दार्शनिको ने राजनीतिक चितन को काफी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होने वस्तुत एक राजनीतिक सिद्धान्त का निर्माण

किया । अंग्रेजी शब्द 'पोलिटिक्स' (Politics) यूनानी शब्द 'पोली'(Polie) से निकला है, जिसका अर्थ होता है 'नगर-राज्य' । प्लेटो (Plato) ने अपनी तीन पुस्तको—'द रिपब्लिक' (The Republic), 'द स्टेट्समैन' (The Statesman) तथा 'द लाज' (The Laws) के माध्यम से राजनीतिक चिंतन को ठोस योगदान दिया है। अरस्तू (Aristotle) ने शासन तन्त्रो को छ श्रेणियो मे विभक्त किया—राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र, नागरिकतन्त्र (Polity) (इन्हे उसने सामान्य शासन तत्र बनाया), निरकुशतत्र, मडलतत्र (Oligarchy) तथा प्रजातत्र (ये शासन तत्र के उसके कथनानुसार विकृत थे) । शासन का कर्त्तव्य लोगो का कल्याण और उन्हे सुख प्रदान करना होना चाहिए और ऐसा केवल पहले तीन प्रकार के तन्त्र ही कर सकते हैं । अरस्तू द्वारा ही यह बात जोर देकर कही गयी थी कि मनुष्य सामाजिक और राजनैतिक प्राणी, दोनो है ।

भाषण-क्षमता—प्रजातत्र मे, यूनान मे लोगो के मन को प्रभावित करने के लिए भाषण-क्षमता बहुत बडी भूमिका अदा करती थी । वरिष्ठ मडल, आम सभा, न्यायालयो तथा जन-सभाओ मे वाद-विवाद के दौरान इसकी बहुत उपयोगिता थी । डिमोएस्थेनीज, एथेस का सबसे बडा भाषणकर्त्ता था । मकदून (Macedon) के राजा फिलिप के विरोध मे उसके हृदयस्पर्शी भाषण 'फिलिपीज' (Phillipies) के नाम से जाने जाते हैं ।

(उ) सास्कृतिक चिंतन मे यूनानी योगदान

यूनानियो ने बौद्धिक और कलात्मक क्षेत्रो मे भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और उस क्षेत्र मे उनकी सस्कृति की अच्छी झलक मिलती है ।

जिज्ञासा की भावना—सर्वप्रथम यूनान देश के निवासियो ने यह बात सिखाई कि मनुष्य को अपने परिवेश एव इर्द-गिर्द की स्थिति का वस्तुनिष्ठ एव वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करना चाहिए ।

जीवन के सम्बन्ध मे यूनानी विचार—मनुष्य जाति को यूनानियो की चिरस्थायी देनो मे एक था उनके जीवन के सम्बन्ध मे विचार । यूनानी लोग प्राचीन विश्व मे, शायद पहले ऐसे लोग थे, जिन्होंने सत्य, अच्छाई, सौंदर्य तथा स्वतत्रता जैसे विचारो का प्रतिपादन किया । वे हर अच्छी और खूबसूरत वस्तु से प्यार करते थे । अंग्रेज कवि कीट्स ने निम्नलिखित काव्य-पक्तियो मे इस बात की व्याख्या की है कि यूनानियो ने सौंदर्य बोध को क्यो विकसित किया —

"सौंदर्यमय वस्तु का आनन्द चिरस्थायी है .

इसका प्रियत्व बढ़ता ही जाता है, और वह कभी शून्य में नहीं खो सकता

सौंदर्य सत्य है, सत्य ही सौंदर्य, इतना ही इस धरती पर तुम जानते हो, इतना ही जानने की जरूरत है ।

A thing of beauty is a joy for ever
Its loveliness increases, it will never pass into nothing-
ness,
Beauty is Truth, truth beauty, that is all
Ye know on earth and all ye need to know.

यूनानी भाषा—यूनानियो ने अपनी वर्णमाला फोनीशियाइयो (Phoenicians) से ली। फिर भी उन्होने कुछ नये अक्षर जोडे और कुछ अनावश्यक ध्वन्यात्मक चिह्नो को निकाल दिया। यूनानी उपलब्धियो मे से अनेक को यूनानी भाषा ने ही सभव बनाया और यह भाषा भी मनुष्य जाति के लिए एक दुर्लभ उपहार बन चुकी है। मनुष्य द्वारा निर्मित अभिव्यक्ति माध्यमो मे अब तक की यह सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। यूनानियो के पास दुनिया की हर चीज के लिए एक न एक शब्द मौजूद था। यह एक शास्त्रीय भाषा बन गयी।

यूनानी साहित्य—यूनानी प्रतिभा ने साहित्य की हर विधा मे अपनी अभिव्यक्ति क्षमता का परिचय दिया। महाकाव्य, गीत, नाटक, कविता, इतिहास, जीवनी, अलकार शास्त्र, भाषण, सूक्ति, निबध, प्रवचन, उपन्यास, पत्र-लेखन और साहित्यालोचन—साहित्य की ये सभी विधाएँ यूनानियो की देन है। यूनानियो ने करीब-करीब प्रत्येक ऐसी साहित्यिक शैली का विकास किया, जिसे यूरोपीय साहित्य ने स्वीकार किया। उन्होंने काव्य और गद्य मे वे रचनाएँ की, जिन्हे दुनिया भर मे श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। सादगी, सक्षिप्तता, रूप की श्रेष्ठता, सत्य और सौंदर्य यूनानी साहित्य की अनिवार्य विशेषताएँ है। शैली, कीट्स, आर्नेल्ड और स्विनबर्न के लिए यूनानी साहित्य प्रेरणा का प्रमुख स्रोत सिद्ध हुआ। यूनानियो ने विश्व को होमर के दो महाकाव्यो—'इलियड' और 'ओडिसी'—पिडार और साफो की मृदु गेय कविताओ, दो अत्यत लोकप्रिय दु खात नाटको—एसकिलस के 'प्रोमीथियस बाउड' और 'एगामेमनन'—तथा सोफोक्लीस के 'एटीगान्स' और 'इलेक्ट्रा आफ सोफोक्लेस' सहित सौ नाटको का उपहार दिया। यूरोपिडीस का 'द ट्रोजन विमेन' दिया। एरिस्टोफेन्स के सुखात नाटक दिये। यूनानी नाटको का धर्म और जन-जीवन से गहरा सबध था। अभि-नेताओ की साज-सज्जा के लिए मुखौटो का उपयोग हमेशा किया जाता था। नाटक खुले

हेरोडोटस

नाटक-घरों में खेले जाते थे, जिनमें १५,००० लोग बैठ सकते थे। लोग अभिनेताओं और समूह गायकों का बड़ा आदर करते थे।

यूनानियों ने दो महान् इतिहासकार, हेरोडोटस और थूसीडीडस भी पैदा किये, जिन्होंने शानदार ऐतिहासिक साहित्य की रचना की। हेरोडोटस को इतिहास का जनक कहा जाता है। थूसीडीडस को इतिहास का प्रथम वैज्ञानिक लेखक माना जाता है। लार्ड मैकाले के कथनानुसार 'वह आज तक का महानतम इतिहासकार है।"

यूनानी कला—यूनानी कला की उपलब्धि यथार्थवाद तथा मानवतावाद में रही।

संगीत—यूनानी शायद पहले ऐसे शास्त्रीय यूरोपीय थे, जिन्होंने संगीत सौंदर्य तथा सौंदर्यशास्त्रीय गुणों के कारण इसका विकास किया। यूनानी संगीत चौथी शताब्दी ईसापूर्व तक निश्चित रूप से गायन तक ही सीमित था। डा० जी० ई० स्वेन का मत है कि गायन और वादन का योग बाद में हुआ। पायथागोरस ने संगीत ध्वनि को वैज्ञानिक तरीके से विकसित किया। हेलेनीय युग में, संगीत-रचना ज्यादा व्यावसायिक बन गयी।

मूर्तिकला—मूर्तिकार ऐसी मूर्तियाँ बनाते थे जिनमें मनुष्य गतिशील दिखाई देता था। यह कलात्मक विचार अपने आप में एक कलात्मक क्रांति थी। पैरीक्लीय मूर्तिकार ने शरीर के प्रत्येक अंग में रुचि को विकसित किया। मूर्तिकार ने मानव-शरीर की बारीकियों पर महारत हासिल कर ली थी और इतनी ही सूक्ष्मता से वह नग्न मानव शरीर को चित्रित करता था, लेकिन स्त्रियों के चित्रित करते समय वह उनके परिधान को जहाँ तक संभव हो, पारदर्शी बना देता था। वह अपनी कला के लिए लकड़ी, हाथीदाँत, हड्डी, टेराकोटा, मिलखड़ी, संगमरमर, चाँदी तथा सोने का इस्तेमाल करता था। देवता, पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे, पशु तथा पक्षी उसके मुख्य विषय थे। फीडियास, मायरोन तथा प्रक्सीटेलीज उस युग के योग्यतम मूर्तिकार थे। मूर्तिकारों के राजकुमार फीडियाज ने अपने शिष्यों की सहायता से 'एक शाही जुलूस में चलते एथेंस के प्रभुतासंपन्न लोगों' को चित्रित किया। उसकी एक अन्य चिरस्थायी रचना 'एथेंस' में वर्ग की विशाल कांस्य मूर्ति थी—जो ७० फीट ऊँची थी, सोने और हाथी दाँत की पायदान पर खड़ी हुई, और मुस्कराहट से भरपूर, शिरस्त्राण, ढाल और सुनहरी लबादा
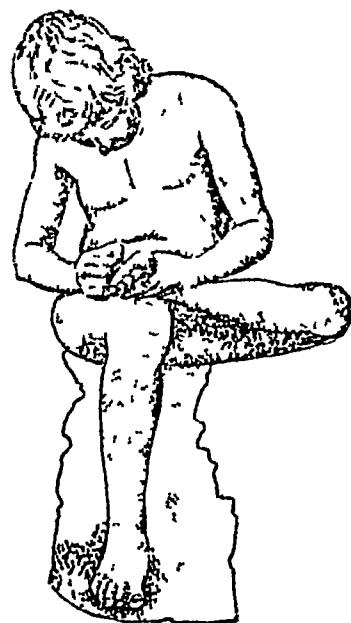
मूर्तिकला

पहने अपने नगर और प्रजा पर नजर रखती हुई। इस प्रकार यूनानी मूर्तिकला मे प्रकृतिवाद, मानवतावाद, निर्दोष रूपत्व, सतुलन आदि विशेपताएँ देखने को मिलती हैं।

स्थापत्यकला—यूनानी चूँकि कल्पनाशील और कलाप्रेमी लोग थे, इसलिए उनकी स्थापत्यकला दुनिया की सर्वाधिक शैली सपन्न कला थी। यूनानी भवनकारो ने तीन तरह के स्तमो का विकास किया, जो डोरिक, आयोनिक तथा कोरिंथियाई नामो से जाने जाते हैं। "डोरिक स्तम काफी मोटाई लिये होते थे और उनके शीर्ष का आकार

पार्थेनोन

वर्ग जैसा होता था, आयोनिक स्तम पतला होता था और उसके शीर्ष पर दो खूबसूरत पट्टिकाएँ रहती थी, कोरिंथियाई स्तभ भी पतला होता था और उसके शीर्ष पर पत्तियो की सुन्दर डिजाइन बनी रहती थी।" एथेसवासी स्थापत्य कला मे बडा आनन्द लेते थे। एथेस को हेलास की शाला बनाने के लिए, वहाँ बडे-बडे मदिर बनाये गये, जो अपने ऐश्वर्य और सौंदर्य मे अद्वितीय थे। कुमार का मदिर जिसे "पार्थेनोन" भी कहा जाता है, विशुद्ध डोरिक शैली मे बना यह मदिर अद्भुत था।

चित्रकला—यूनानी चित्रकला की कला प्रकृति मे स्थापत्यामक ही थी। चित्रकारो के पास तीन तरह की शैलियाँ थी—एक फ्रेस्को (Fresco) या भित्ति चित्र या गीले प्लास्टर पर चित्रकारी, दो, टेंपेरा (Tempera) यानी गीले कपडे या बोर्ड पर चित्रकारी, जिसमे रगो मे अडे की सफेदी या मधु, या किसी चिपचिपे पदार्थ को मिलाया जाता था, तथा तीन, मोमचित्र, यानी जिसमे रगो मे पिघला हुआ मोम मिलाया जाता था, इस तीसरी शैली मे बनाये गये चित्र तैलचित्रो के समान श्रेष्ठ होते थे। थासोसवासी प्लायग्नोटस अपने युग का सबसे बडा चित्रकार था। उसकी अद्भुत रचनाओ मे डायोसरी के मदिर मे बना चित्र, 'रेप ऑफ द लूसीप्पिडी' तथा डेल्फी के मदिर मे बना 'सैक ऑफ ट्रॉय' भी शामिल हैं। ये विशाल भित्ति-चित्र हैं।

(ऊ) स्पार्टा का सैनिकवाद

यदि एथेस की रगो मे प्रजातत्र का रक्त दौड रहा था, तो स्पार्टा की रगो मे जन्मजात, व्यवसायी सैनिक का। स्पार्टा राज्य का प्रमुख ध्येय प्रत्येक नागरिक को बढिया योद्धा और सैनिक बनाना ही था। अत प्रत्येक नागरिक का जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक—सरकार द्वारा इसी एक दिशा मे नियोजित और प्रवृत्त किया जाता था। हर नवजात शिशु की शारीरिक जाँच की जाती थी और

उसका जान जाँच के लिए भी उसका प्रदर्शन किया जाता था । यदि शिशु को बहुत कमजोर या योद्धा बन सकने के अयोग्य समझा जाता था, तो उसे समुद्र में फेंक दिया जाता था । सात साल का हो जाने पर बच्चे को पूरी सैनिक शिक्षा के लिए सैन्य स्कूल में भरती कर लिया जाता था । जहाँ वह तीस साल की उम्र तक प्रशिक्षण प्राप्त करता था । तब उसे बीस बरस या इससे अधिक आयु की लड़की से विवाह करना पड़ता था और सेना में भरती होना पड़ता था । वह बीच-बीच में अपने परिवार के सदस्यों से मिलने भी जा सकता था और जितना जी चाहे, स्वस्थ और तगड़े बच्चे पैदा करके राज्य की मदद भी कर सकता था । साठ साल की अवस्था में उसे सेना से कार्य मुक्त कर दिया जाता था और परिणामस्वरूप वह राज्य के अनुशासन से भी मुक्त हो जाता था । स्पार्टा की स्त्रियाँ भी सैनिकों से कम महत्वपूर्ण नहीं थीं । उन्हें भी बीस साल की उम्र तक कठोर किस्म का शारीरिक प्रशिक्षण लेना पड़ता था और जब भी सेना में उनकी जरूरत आ पड़े, उसके लिए अपने आपको शारीरिक रूप से चुस्त और तैयार रखना पड़ता था । ब्रह्मचर्य स्पार्टा में अपराध था । शादी से पहले पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों को काफी आजादी रहती थी । अंत में, स्पार्टावासियों के मन में राज्य कानूनों के लिए उच्चतम आदरभाव रहता था । इस तरह के जीवन के कारण और मन के पूर्ण नकार के कारण, स्पार्टावासियों का बौद्धिक विकास पूरी तरह रुका-सा रह गया था ।

यूनानी धर्म और दर्शन

यूनानी धर्म—यूनानी अनेक देवताओं और देवियों की पूजा करते थे । जिनका व्यवहार बिल्कुल मानव-जाति के समान होता था और वे मनुष्य की तरह अच्छाइयों और बुराइयों तथा पसंदों-नापसंदों के पुतले होते थे । यूनानियों के अनुसार वे दुनियावी, विलासी, झगड़ालू और गौरवान्वित पुरुष और स्त्रियाँ थे । फिर भी वे अमर थे । देवता गिनती में इतने ज्यादा थे कि जगह की कमी के कारण उनकी पूरी गिनती लिखी भी नहीं जा सकती । यूनानियों के सबसे महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय देवी-देवता निम्नलिखित थे—

(१) जीऊस (Zeus)—सभी देवताओं का राजा और तड़ितवात का स्वामी, (२) डिमीटर (Demeter)—धरती की देवी, (३) हेड्स (Hades)—पाताल लोक का शासक, (४) पोसीदोन (Poseidon)—समुद्र का शासक और भूचालों का स्वामी, (५) हीरा (Hera)—जीऊस की पत्नी, विवाह की देवी, (६) अपोलो (Apollo)—जीऊस का बेटा, प्रकाश का देवता और सौंदर्य-प्रतिमान, (७) एथीना (Athena)—जीऊस की बेटी, बुद्धिमता और स्त्रियों की देवी, कलाओं और ज्ञान की संरक्षिका, (८) डायोनीसस (Dionysus)—शराब का देवता, (९) एरिस (Ares)—युद्ध का देवता और (१०) फीबस (Phoebus)—सूर्य का देवता । इनके अतिरिक्त स्थानीय और गृह देवता-देवियों की पूरी सेना मौजूद थी ।

यूनानी देवताओ को भोजन और शराव भेट चढाते थे और देवी-देवताओ से मैत्री सवध वनाये रखने के लिए उत्सवो के अवसर पर कई तरह की वलियाँ भी चढाते थे । घर मे पिता पुजारी की भूमिका निभाता था ।

यूनानी दर्शन—दर्शन से यूनानियो का मतलब होता था विश्व और मानव को समझने का एक गम्भीर प्रयास—ताकि जीने का सही तरीका खोजा जा सके और लोगो को उसके अनुकूल ढाला जा सके । सुकरात, अफलातून और अरस्तू यूनान की दार्शनिक त्रिमूर्ति थे जो अपने पीछे विश्व भर के लिए जवरदस्त विरासत छोड गये ।

सुकरात (४७०-३९९ ईसा पूर्व)—सुकरात यूनानी प्रतिभा मे जो कुछ श्रेष्ठ और उच्चतम था, उसका प्रतिरूप था । फीडो (Phaedo) ने सुकरात को सर्वाधिक वुद्धिमान्, सर्वाधिक न्यायप्रिय और सर्वश्रेष्ठ वताया है । सुकरात ने वही कुछ सिखाया, जो डेल्फी मन्दिर की एक दीवार पर लिखा था—यानी 'अपने आपको जानो' । उनका मत था कि चूँकि राज्य व्यक्तियो से मिलकर ही वनता है, इसलिए इसे शुद्ध करने तथा वचाने के लिए जरूरी है कि व्यक्ति अपने आपको सुधारे । इसके लिए अच्छाई, सत्य, ईमानदारी, सत् और सौंदर्य को पहचानना और इन्हे अपने भीतर विकसित करना जरूरी है । साथ ही, सुकरात ने उपदेश दिया कि जागरूकता और जिज्ञासा की भावना और तीव्र वाद-विवाद द्वारा, मानव-मन गलतियो को अस्वीकार कर सकता है और इन उच्च आदर्शो को प्राप्त कर सकता है । इस प्रकार ज्ञान और सत्य दो स्वामी थे, सुकरात भक्तिवाद का पुजारी था । लेकिन उसे 'अतर्क-युग' का सवसे वडा शिकार वनना पडा—जव उस पर अपने विचारो द्वारा 'युवको को भ्रष्ट' करने का आरोप लगाया गया । इसलिए उसे विष पीने का दण्ड दिया गया । सुकरात ने कभी कुछ लिखा नही । वह सिर्फ वातचीत ही करता था ।
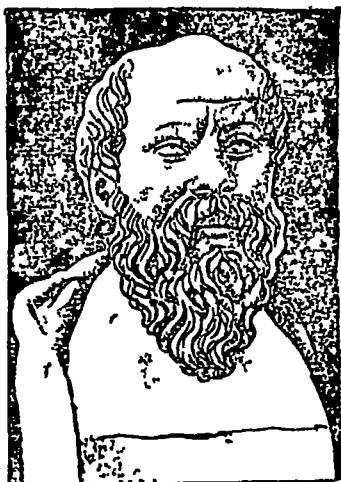
सुकरात

अफलातून (४२७-३४७ ईसा पूर्व)—अफलातून सुकरात का सवसे योग्य शिष्य था । यूरोपीय उसे दर्शन का जनक मानते है और सही ही मानते है । उसने अपने गुरु की वहुत सारी वातचीत को लिखित रूप दिया । इसमे से 'स्टेट्समैन' और 'लाज' सर्वाधिक चर्चित पुस्तके है । 'स्टेट्समैन' मे अफलातून ने सच्चे राजनीतिक का परिचय दिया है—यानी दार्शनिक भी । उसके कथनानुसार, "जव तक दार्शनिक राजा नही

की शांति, जिसे नेकी करने तथा आनन्द और पीड़ा के प्रति उदासीन होकर ही पाया जा सकता है।

आनन्दवाद—यह दूसरा दर्शन था, जिसे एथेंस में एपिक्यूरस (३४२-२७० ईसा पूर्व) ने प्रतिपादित किया। उसके अनुसार शरीर तथा मन का आनन्द ही सबसे बड़ी अच्छाई थी और आनन्द की प्राप्ति 'अक्लमन्दी, अच्छाई और न्यायपूर्वक' जीने से ही होती है। एपिक्यूरस ने भी बीच में रास्ते का उपदेश दिया। दुर्भाग्य से, बाद में, रोमनों ने उसके दर्शन का गलत अर्थ लगाया और आनन्द को ऐंद्रिक आनन्द मान लिया। "खाओ, पीओ और मौज करो, क्योंकि कल को तो मर ही जाना है!" यह कहावत रोमनों में बहुत प्रचलित हो गयी थी।

ऐ   वैज्ञानिक चिंतन को यूनानियों का योगदान

जिज्ञासा की भावना—यूनान के एक प्रख्यात वैज्ञानिक ल्यूसीपस (Leucippus) ने कहा है, 'बिना कारण कभी कुछ नहीं होता, लेकिन हर चीज किसी कारण और आवश्यकता से होती है।' यही जिज्ञासा की भावना थी, या वैज्ञानिक स्वभाव, और चीजों के कारणों के अध्ययन के माध्यम से धरती और आकाश की सभी चीजों को समझने की अनबूझ उत्सुकता, जिसके कारण यूनानी विज्ञान के क्षेत्र में भी अगुआ बन सके।

गणित—यूनान के महानतम और प्राचीनतम गणितज्ञों में से एक था थालीज (Thales), जिसने ज्यामितीय शब्दावली का अन्वेषण किया। उसने वृत्त के व्यास के द्वारा अर्द्धवृत्त करने का तरीका विकसित किया, तथा दो सरल रेखाओं के परस्पर कटाव के कोणों की समानता सिद्ध की। लेकिन आर्किमिडीज (Archimedes) ने गणित के क्षेत्र में शानदार उपलब्धियाँ कीं। उसने गणित की सभी शाखाओं के बारे में लिखा। उसने अंकगणित की शब्दावली का निर्माण किया। यूक्लिड (Euclid) ने ज्यामिति के मूल सिद्धांतों पर तेरह पुस्तकें लिखीं। पायथागोरस (Pythogoras) ने दुनिया को अपने विख्यात् पायथागोरस सिद्धान्त का उपहार दिया।

वनस्पति शास्त्र—अरस्तू के एक शिष्य, थियोफ्रेस्टस (Theophrastus) ने वनस्पति शास्त्र को एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में स्थापित किया। डियोस्कोरिडीज (Dioscorides) ने ईसा के बाद पहली शताब्दी में, अनेक पौधों की पहचान की और उन्हें नाम दिये और उनके औषधि सम्बन्धी महत्त्व के आधार पर उनका वर्गीकरण किया।

भौतिक शास्त्र—भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में, आर्किमिडीज ने उस प्रणाली का आविष्कार किया, जिसके माध्यम से आपेक्षिक घनत्व जाना जा सकता है। वह 'द्रवस्थिति विज्ञान के सम्पूर्ण शास्त्र' का भी आविष्कर्ता था।

खगोल शास्त्र—पाइथागोरस यूनान ही नहीं पूरे मानव इतिहास के सर्वाधिक मौलिक व्यक्तियों में से एक था। वह पहला वैज्ञानिक था, जिसने इस विचार का प्रतिपादन किया कि धरती एवं अन्य आकाशीय पिंड अपने आकार में गोल हैं। थालीज (Thales) ने सूर्यग्रहण की भविष्यवाणी की—शायद इसका इशारा १८ मई ५८५ ईसा पूर्व के सूर्य ग्रहण की ओर था। एरिस्टार्कस (Aristarchus) (३१०-२३० ईसा पूर्व) ने कोपर्नीकस (Copernicus) से बहुत पहले ही सौर-मण्डल के सूर्य केन्द्रीय होने के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। हिपार्कस (Hipparchus) अलेक्जेन्ड्रिया के सबसे बड़े खगोलशास्त्रियों में से एक था। एक अन्य अलेक्जेन्ड्रियाई खगोलशास्त्री एरिस्टार्कस (Aristarchus) था जिसने यह प्रतिपादित किया कि धरती और अन्य ग्रह सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। वह इस युग के महानतम ज्योतिषियों में से एक था। इरातोस्थनीज (Eratosthenes) तीसरा अलेक्जेन्ड्रियाई गणितज्ञ खगोलशास्त्री था। उसने हमारी धरती के व्यास का हिसाब लगाया और कहा कि यह व्यास ७,८५० मील है। आश्चर्य की बात है कि ये आँकड़े सही आँकड़े से बहुत निकट हैं। अलेक्जेन्ड्रिया के शाही अजायबघर में एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की गई, जिसमें सभी विषयों की लगभग ६,००,००० पुस्तकें मौजूद थीं। इतने बड़े पुस्तक-संग्रह के वर्ग विभाजन तथा व्यवस्थापन के लिए एक नयी कला का विकास भी किया गया।

भूगोल—भूगोलशास्त्रियों में से सबसे महान् इरातोस्थनीज (Eratosthenes) हुआ जिसके मतानुसार धरती गोल थी और इसकी परिधि २५,००० मील थी। उसके इन आँकड़ों में केवल ५० मील का ही हेर-फेर था। नक्शों और अक्षांश तथा देशान्तर रेखाओं का प्रयोग करने वाला यह पहला व्यक्ति था। वैज्ञानिक भूगोलशास्त्र का वह प्रवर्तक था।

औषधि शास्त्र—यूनानियों ने औषधिशास्त्र के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति की। हिपोक्रेटीज अपने समय का सबसे बड़ा चिकित्सक था। वह 'यूनानी औषधिशास्त्र का जनक' माना जाता था। आज के चिकित्सक उसके जीवित रहने कार्य को काफी महत्ता देते हैं। इसकी रचनाओं में अनेक मामलों के ब्योरे तथा शल्य क्रिया से सम्बधित अनेक निर्देश दिये हुए हैं—जैसे कमरे की तैयारी, प्रकाश की व्यवस्था, सफाई का ध्यान, यन्त्रों की देखभाल और उनका इस्तेमाल, शिष्टाचार, पट्टी बाँधने का सामान्य तरीका, लकड़ी की पट्टियों के लाभ और हानियाँ, रोगी की देखभाल आदि। वही पहला आदमी था, जिसने यह कहा कि सभी रोगों की जड़ में प्राकृतिक कारण होते हैं और यह भी कि उनमें से अधिकांश का इलाज सम्भव है।

शल्य विज्ञान—हिरोफिलस (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व) को 'शल्य विज्ञान का जनक' माना जाता है। उसने स्नायुओं, मांसपेशियों, रक्तवाहिनियों, नसों, यकृत, पाचन-

मार्ग, श्लेष्मा-ग्रंथियो तथा जननेन्द्रियो का अध्ययन शरीर को चीर-फाड करके किया। उसने नब्ज की गति का पता लगाने के लिए भी एक यन्त्र बनाया।

शरीर विज्ञान—एरास्ट्रिटम्स (तीसरी शती ईसा पूर्व) 'शरीर विज्ञान का जनक' माना जाता है। उसका विश्वास था कि रक्त नाडियो मे बहता है और पूरे शरीर को भोजन देता है। उसी ने सबसे पहले हृदय के वल्वो को नाम दिये, जो आज तक इस्तेमाल किये जाते हैं।

इस प्रकार हेलीनीय युग के वैज्ञानिक 'रीतिवद्ध वैज्ञानिक शोधकार्य के सस्थापक' सिद्ध हुए।

सिकन्दर महान् पर टिप्पणी—

सिकन्दर का अभ्युदय और उसकी विजय—मानव जाति के इतिहास मे सिकन्दर महान् एक अद्‌भुत व्यक्तित्व हुआ है। वह मकदूनिया के राजा फिलीप का बेटा था। उसकी उम्र केवल बीस साल थी, जब अपने पिता की हत्या हो जाने पर वह मकदूनिया के राज-सिंहासन पर बैठा। यह ३३५ ईसा पूर्व की बात है। इसके कुछ अर्से बाद ही यूरोप, एशिया तथा अफ्रीका महाद्वीपो मे पायी अपनी विजयो से उसने अपने आपको अमर बना लिया। ईसा पूर्व ३३३ ईस्वी मे सिकन्दर महान् ने यूरोप, एशिया एव अफ्रीका मे प्रलय मचा दी थी। फारस के बादशाह डेरियस तृतीय को हरा-कर उसने फारस को अपने पैरो के नीचे रौंद डाला था। इसके पश्चात् उसने फोनेशिया, दमिश्क, गाजा और जेरूशलम पर ३३२ ईस्वी पूर्व विजय प्राप्त की थी। वही पर उसका राज्याभिषेक हुआ था और उसे राजा घोषित किया गया था। ३३१ ईस्वी पूर्व उसने डेरियस तृतीय को गौगामेला मे हराया था और बेबीलोनिया, सूसा, एकबटना एव परसीपोलिस पर कब्जा कर लिया था। इस प्रकार ३२७ ईस्वी पूर्व तक सारा फारस का साम्राज्य सिकन्दर के शासन के अन्तर्गत आ गया था। ३२६ ईस्वी पूर्व सिकन्दर हिन्दूकुश पर्वत को पार कर सिन्धु

सिकन्दर महान्

घाटी मे घुस आया जहाँ पर तक्षशिला के राजा आम्भी ने उसका स्वागत किया था। तथापि सिकन्दर का सामना झेलम घाटी के बहादुर राजा पुरु (पोरस) से हुआ परन्तु इस युद्ध मे पुरु हार गया। इसके पश्चात् सिकन्दर गगा के मैदानी इलाके को अपने
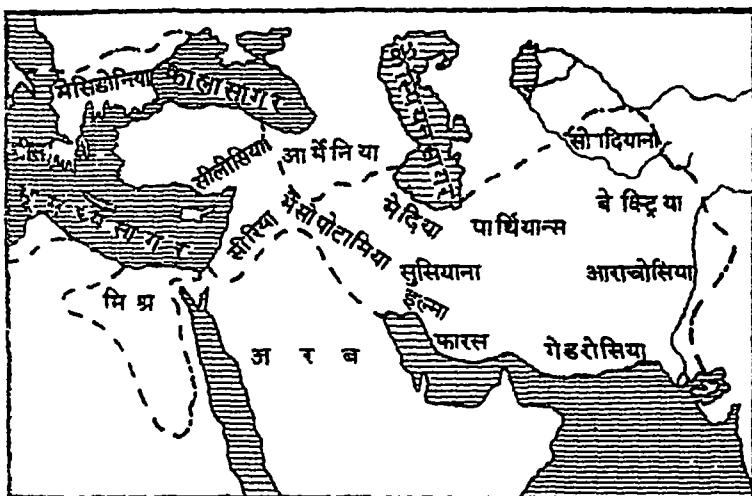
सिकन्दर का साम्राज्य

कब्जे मे लाना चाहता था परन्तु उसके सिपाही युद्ध करते-करते थक गये थे अत उसे बाध्य होकर व्यास घाटी से वापस जाना पडा। फिर भी वह स्वदेश न पहुँच सका और मार्ग मे ही ३२३ ईस्वी पूर्व मे बेबीलोन मे उसकी मृत्यु हो गयी।

सिकन्दर की महानता—सिकन्दर स्वभाव से रोमाटिक और रहस्यवादी था। वह एक शानदार सेनाधिपति था और उच्चतम स्तर का राजनीतिक भी। सिकन्दर की सेना मे मकदूनियाइयो, यूनानियो और एशियाइयो के बीच पूर्ण समानता देखने को मिलती थी।

सिकन्दर ने फारस के सरदारो को अपने दरबार मे बुलाया और उनकी प्रशासनिक प्रणाली, रीतियो, वेश-भूषा और शिष्टाचार को उसने अपनाया। वह पहला ऐसा पश्चिमी शासक था जिसने पूरब की एक खूबसूरत राजकुमारी रुस्साना से शादी की और फिर हजारो मकदूनियाइयो और यूनानियो ने उसकी देखा-देखी एशियाई पत्नियाँ स्वीकार करना शुरू कर दिया।

सिकन्दर ने अपने धर्म मे अनेक पौर्वात्य देवताओ को स्वीकार किया। अपनी ऐसी और इस तरह की अन्य नीतियो से सिकन्दर पूरब और पश्चिम की सस्कृतियो को एक करने मे सफल हुआ। उसकी विजयो ने पूरब और पश्चिम के लोगो के बीच सभी व्यवधानो को हटा दिया, जिसके परिणामस्वरूप पूरब और पश्चिम समानता और

बधुत्व की भावना से मिलने लगे, तथा यूनानी तर्कवाद प्राचीन पूरबी रहस्यवाद से मिला और हेलेनीय सभ्यता इसाई सभ्यता की जननी बन गयी।

प्रश्नावली

१ यूनानी कौन थे ? यूनान के भौतिक गुणो का यूनानी सभ्यता पर क्य प्रभाव पडा ?

२ यूनानी समाज और अर्थ-व्यवस्था का विवेचन कीजिये।

३ सभ्यता सम्बन्धी चिंतन मे यूनानियो का क्या योगदान रहा ?

४ यूनानी धर्म और दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन कीजिये।

५ वैज्ञानिक चिंतन के क्षेत्र मे यूनानी योगदान की व्याख्या कीजिए।

६ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) यूनानी नगर राज्य,
(आ) यूनानी स्थापत्यकला,
(इ) यूनानी मूर्तिकला,
(ई) यूनानी चित्रकला,
(उ) बहिष्कार,
(ऊ) यूनानी धर्म,
(ए) सुकरात,
(ऐ) अफलातून,
(ओ) अरस्तू,
(औ) जेनो,
(क) सिकन्दर महान्।

छठा अध्याय

रोम का वैभव

अ परिचय

यूनानी और रोमन लोग—यूनानी और रोमन लोगों ने ही वह नींव रखी, जिस पर आज आधुनिक पश्चिमी सभ्यता का सुन्दर भवन खड़ा है। यूनानी लोग बहुत कल्पनाशील थे, इसीलिए उन्होंने विभिन्न कलाओं में खूबसूरत रचनाएँ प्रस्तुत कीं, साहित्य की प्रत्येक विधा में उच्चस्तरीय कृतियाँ दीं, और चिन्तनवादी तथा भौतिकवादी दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिपादित किये, जो बाद में मानव जाति के धरोहर बने। रोमनों ने यूनानियों से ही यह धरोहर पायी, फिर उन्होंने इसे मध्ययुगीन विश्व के हाथों में सौंप दिया और फिर मध्ययुग ने इसे आधुनिक विश्व को भेंट कर दिया। इस प्रकार रोमन "प्रतिभा रचनात्मक नहीं, समुच्चयशील थी।" फिर भी चूँकि रोमन जाति स्वभाव से ही व्यावहारिक थी, इसलिए उसने पहली बार एक विश्व का विचार विश्व को दिया। साथ ही उन्होंने दूरस्थ प्रान्तों की विभिन्न जातियों पर शासन करने की कला, विधियाँ और सैन्य संगठन की कला भी दुनिया को सिखायी।

धरती और लोग—रोमन साम्राज्य का हृदय, इटली, एक प्राय द्वीप (Peninsula) है, जिसकी लम्बाई करीब ६५० मील तथा चौड़ाई करीब १०० मील है इसके उत्तर की ओर आल्प्स पर्वत है और अन्य सभी दिशाएँ भूमध्य सागर से घिरी हुई है। इटली की आत्मा, रोम ने जिसमे सात पहाड़ शामिल है, ऐसे लोग पैदा किये जो एक विशाल साम्राज्य के स्वामी बने। इस साम्राज्य मे सम्पूर्ण भूमध्य सागरीय भूक्षेत्र यूरोप का दक्षिणी भाग, अफ्रीका का उत्तरी तटवर्ती प्रदेश और निकट पूर्व का काफी बडा हिस्सा शामिल था।

रोमनो के अभ्युदय के पूर्व इतालवी पाँच जाति श्रेणियो से सम्बन्धित थे—(१) लातीनी—लातीनी भारत-यूरोपीय कबीलो के सदस्य थे, जो १८०० ईसा पूर्व, पो (Po) नदी तथा एपीनीनीस (Apennines) को पार करने के बाद लैटियम मे बस गये थे। वे लातीनी भाषा बोलते थे। (२) एट्रूसियन—इनका स्रोत अस्पष्ट है। वे करीब १००० ईसा पूर्व, टाइबर नदी के उत्तर मे एट्रूरिया मे बस गये थे। उन्होंने रोमनो को बहुत कुछ सिखाया। (३) यूनानी—इटली के दक्षिणी और पूर्वी भागो मे करीब १५०० ईसा पूर्व मे आकर बसे थे। (४) फोनोशियाई और (५) कार्थेजियाई—

ये दोनों जातियाँ भूमध्य सागर पार उत्तरी अफ्रीका से आयी थी और इटली के पश्चिम मे बस गयी थी। रोमन संस्कृति और सभ्यता और रोमन लोग भी, इसलिए, इन सांस्कृतिक और विविध तत्त्वो के सम्मिश्रण थे।

आ   रोमन सामाजिक जीवन

सामाजिक वर्ग—रोमन समाज चार वर्गों मे बँटा हुआ था। ये थे—(१) सामन्त (२) धनी व्यापारी (३) सामान्य जनता तथा (४) दास।

सामन्त—परम्परा के अनुसार, रोमूलस ने, जिसने ७५४ ईसा पूर्व मे रोम की स्थापना की, देश के प्रशासन को चलाने मे मदद और सलाह के लिए सौ सामन्तो का चुनाव किया। वे राजा की सलाहकार समिति के सदस्य थे, और करीब पाँच सदियो तक वे राजनीतिक शक्ति और अधिकारो से लाभ उठाते रहे।

धनी व्यापारी—सामन्तो के नीचे धनी व्यापारियो का वर्ग आता था। इस वर्ग का हर सदस्य १,५०,००० रुपयो या इससे अधिक की सम्पत्ति बना सकता था। सामन्तो की तरह सत्ता मे इनका भी काफी अधिकार और प्रभाव रहता था।

सामान्य जनता—सामाजिक सीढी के तीसरे पायदान पर सामान्य जनता का क्रम आता था, जिन्हे भीड (Plebs) के नाम से भी जाना जाता था। ये भी स्वतन्त्र नागरिक होते थे। लेकिन इनके अधिकार बहुत सीमित थे। ये छोटे किसान, कारीगर, कामगार, भाडे पर काम करने वाले और छोटे दूकानदार तथा व्यापारी होते थे।

दास—सामाजिक वर्गक्रम मे सबसे नीचे की सीढी पर दास रहते थे जिनके साथ उनके मालिको का बर्ताव बहुत बुरा नही होता था।

सामन्तो और साधारण जनता के बीच की रस्साकशी—करीब दो शताब्दियो तक सामन्तवर्ग और जन-साधारण के बीच, तीन प्रमुख कारणो से रस्साकशी चलती रही। ये कारण थे—(१) राजनीतिक दृष्टि से सभी ऊँचे पदो पर सामन्तो तथा धनी वर्ग का एकाधिकार था और सभी राजनीतिक संस्थाओ का नियन्त्रण भी उन्ही के हाथो मे था। जन साधारण के पास कोई राजनीतिक अधिकार नही था। (२) समाज के इन दो वर्गों के बीच सामाजिक खाई इतनी ज्यादा बडी थी कि वे एक दूसरे से मिल नही सकते थे। जन साधारण को समाज मे अपमानित होना पडता था। (३) आर्थिक दृष्टि से सामन्त और धनी वर्ग जनता की बडी निर्ममता से शोषण करते थे। इन्ही तीन कारणो से दोनो वर्गों के बीच एक लम्बा संघर्ष चलता रहा। जिसमे अतत जीत जन-साधारण की ही हुई।

जैसे-जैसे वक्त गुजरता गया, वैसे-वैसे ही सामन्तो और जन-साधारण के बीच की खाई पटती चली गयी और वे समानता की एक ही सीढ़ी पर आ गये।

ड रोमन आर्थिक जीवन

कृषि—खेती-बाड़ी रोमनों का प्रमुख पेशा था। वे अनेक प्रकार के अनाज, सब्जियाँ और फल उगाते थे। वे गेहूँ, जौ, फलियाँ और अन्य अनाजों की खेती करते थे। वे अपने बागों में, अजीरें, अंगूर आदि उगाते थे। खेती में वे कृत्रिम खादों का प्रयोग करते थे। बड़े खेतों में सुअरों और मुर्गियों को पालते थे। भेड़ें पालना भी उनका एक प्रमुख धंधा था।

बड़े-बड़े खेत—अधिकांश किसानों ने सेना में प्रवेश ले लिया और उन्होंने अपने खेत सामन्तों के हाथ बहुत कम मूल्य पर बेच डाले। सामन्तों ने इन छोटे-छोटे खेतों को बड़े-बड़े खेतों में मिला लिया, और फिर उन बड़े खेतों से लाभ उठाने के लिए उन्होंने चारागाहों, उद्यानों और लता-कुंजों में परिवर्तित कर दिया। जिनमें दास, मजदूर काम करते थे। जमींदार खुद अपने खेतों से बहुत दूर उपनगरीय भवनों या रोम के विशाल भवनों में रहते थे। अर्थात् वे एक प्रकार के अनुपस्थित जमींदार थे।

खानें—रोमन लोगों ने खानों की खुदाई और धातु शास्त्र को भी विकसित किया। लोहे, तांबे, सीसे, कलई और जस्ते की खानों पर राज्य का अधिकार था। खानें निजी व्यवसायियों को किराये पर दी जाती थीं, जो उन पर बड़ी तादाद में दास-श्रमिकों को लगा देते थे और बेशुमार धन कमाते थे।

उद्योग और व्यापार—उद्योग और कारखाने तो बहुत थे, लेकिन इनमें से बड़े-बड़े बहुत कम थे। वे ईंटों, टाइलों, मिट्टी के बर्तनों, फव्वारों और पाइपों का उत्पादन करते थे, कुछ कारखानों में शस्त्र और बर्तन बड़े स्तर पर भी बनते थे। लिनेन और ऊनी कपड़े का उत्पादन होता था और उन्हें रंगने का काम भी। इतालवी लोग कृष्ण सागर क्षेत्र, अनातोलिया, सीरिया, अरब, मिस्र तथा भारत में उत्पादित वस्तुओं, अनाज, रंगों, हीरे- जवाहरात, लोहे, गोश्त, पनीर, कलई, परदों, कांच के सामान रेशमी वस्त्र, रुई, ऊन, सौंदर्य प्रसाधनों, मोती, इत्र और गरम मसालों आदि का आयात करते थे। वे चमकदार बर्तनों, शराब, अरंडी के तेल, लकड़ी और धातुओं का निर्यात करते थे। व्यापार के बढ़ने के साथ सट्टा और जुआ भी आम बात हो गयी।

यातायात के साधन निम्न स्तरीय और असुरक्षित थे। सड़कें लुटेरों और समुद्र समुद्री डाकुओं से भरे पड़े थे। सिक्कों का चलन बहुत देर से—चौथी शताब्दी ईसा पूर्व (३६६ ईसा पूर्व) में हुआ।

कारीगरी—रोमन काल में अनेक तरह की कारीगरियाँ भी प्रचलित थीं। रोटी बनाने वाले, कसाई, लुहार, रंगरेज, चमड़ा रंगने वाले, राजगीर, संगीतकार और नाई सब जगह मिलते थे। उनकी अपनी संस्थाएँ थीं, जो औद्योगिक उद्देश्यों से नहीं, सामाजिक और धार्मिक उद्देश्यों से बनायी जाती थीं।

ई भाषा और साहित्य मे रोमन योगदान

रोमन भाषा—रोमन लोगों की भाषा लातीनी थी। वह शास्त्रीय भाषाओ मे से एक है और आज भी यूरोपीय लोगों द्वारा पढ़ी सीखी जाती है। डॉ० विल ड्यूरंट के कथनानुसार, रोम के महानतम उपहारों मे से एक लातीनी भाषा भी थी। रोम की भाषा इटली, रूमानिया, फ्रास, स्पेन, पुर्तगाल और लातीनी अमरीका की बोली बन गयी—श्वेतो की आधी दुनिया कोई न कोई लातीनी भाषा बोलती है। अग्रेजी भाषा तक मे अनेक शब्दो का स्रोत लातीनी है। अठारहवी शताब्दी तक यह अतर्राष्ट्रीय भाषा बन चुकी थी।

रोमन साहित्य—साहित्य की मुख्य विधाओ की रचना यूनानी प्रतिभा पहले ही कर चुकी थी। रोमन लेखको ने यूनानी साहित्य की विभिन्न किस्मों और तकनीको का समन्वय किया और इसमे से अपने लिए नयी शक्ति प्राप्त की। आगस्टस युग (३१ ईसा पूर्व) (१४ ईसा बाद) रोम के साहित्य का स्वर्णिम युग था। आधुनिक समय तक चले आने वाले रोमन साहित्य का ९/१० भाग इसी अद्वितीय युग मे रचा गया। वर्जिल (Virgil), होरेश (Horace) और लुकीशियस (Lucretius) उस युग मे महानतम कवि थे। वर्जिल ने अपने महान् महाकाव्य एनीड (Aeneid) की रचना की। होरेश की लघु कथाएँ, व्यग्य कविताएँ और पत्र-पत्रिकाएँ समझदारी, अच्छे स्वभाव और व्यावहारिक बुद्धिमत्ता की सर्वश्रेष्ठ पुस्तिका सिद्ध हुई। लूकीशियस ने अपनी रचना 'डिरीर नेचुरा' मे एक बृहद् कार्य करने का प्रयास किया। और भी अनेक महान् लेखक हुये, जैसे प्लूटार्क (Plutarch) जिसने अनेक जीवनियाँ लिखी, गैलन (Galen) जिसने तर्कशास्त्र, नीति, व्याकरण आदि पर अनेक पुस्तके लिखीं, क्लाडियस टालेमी (Cladius Ptolemy) जिसने खगोल शास्त्र, त्रिकोणमिति तथा भूगोल पर पुस्तके लिखी, क्विटिलियन (Quintilian) जिसने भाषण कला तथा शिक्षा पर लिखा, वरिष्ठ प्लिनी (Pliny the elder) जिसने प्राकृतिक इतिहास की रचना की तथा सिसरो (Cicero) जो लातीनी गद्य का निर्माता था, जिसने लातीनी गद्य को दोष रहित और सौंदर्यपूर्ण बनाने के लिए बहुत कुछ किया। लाइवी (Livy) तथा टैसीटुस (Tacitus) ने ऐतिहासिक साहित्य लिखा। लाइवी ने रोम का इतिहास लिखा तथा टैसीटस ने 'इतिहास' और 'जीवन-चरित्रो' की रचना की।

उ कलाओ के क्षेत्र मे रोमन योगदान

रोमन कला यद्यपि यूनानी आदर्शों पर आधारित थी, फिर भी इसकी कुछ अपनी विशेषताएँ भी थी। व्यावहारिक और उपयोगितावादी होने के कारण यूनानी कलाकार ने अपनी रचना मे उपयोगिता और सौंदर्य को मिला दिया।

मूर्तिकला—रोमन लोगो ने मूर्तिकला और सज्जात्मक वस्तुओ के चित्राकन मे भी योगदान दिया। जीवत शैली मे बनी "अनाम रोमन" की मूर्ति, जिसकी आँखो मे

चमक है, कलाओ के श्रेष्ठ नमूने मे से एक है। १०० ईस्वी मे अकित हुआ एक युवक का सिर भी रोम की कला का आदर्श नमूना है। सूर्यदेव के मदिर मे बनी मूर्तियाँ और टाइटस के मेहराब पर बना विजयी जुलूस भी रोमन प्रतिभा और कला का सही प्रतिनिधित्व करते हैं। वे जीवत, स्वाभाविक और गतिवान हैं।

चित्रकला—रोमन चित्रो मे से जितने भी शेष बचे हैं, उन पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, लेकिन "प्रकृति सम्बन्धी चित्र मौलिक दिखाई देते हैं।" दृश्यावलियो के चित्रण मे रोमन कलाकार काफी निपुणता का परिचय देता है। चित्रकला करीब-करीब २०० ईस्वी मे मृत हो गयी, लेकिन बाद मे ईसाई प्रभाव ने इसे पुनरुज्जीवित किया, जिसके प्रमाण चर्चों मे बने भित्तिचित्रो से मिलते हैं।

स्थापत्य कला—यद्यपि यूनानी और एट्रस्कीय शैलियाँ रोमन स्थापत्य कला के लिए आदर्श रही, फिर भी रोमन कला मे निर्माण का ठोसपन और कला की भव्यता दिखाई देती है। स्थापत्य कला आगस्टस के दिनो मे अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गयी थी, जिसने महलो, विशाल और सुदृढ जन-भवनो, नाट्यगृहो, मदिरो और अन्य प्रकार के भवनो को बनाकर रोम को एक खूबसूरत नगर मे परिवर्तित कर दिया था। ५५ ईसा पूर्व मे बना पोंपेयाई का प्रेक्षागृह, जूलियस का न्यायालय, पैलीटीन पर शाही महल, वैस्पेसियन (Vespasian) का रगभवन, ट्रोजन का न्यायालय, जिसकी परिकल्पना एपोलोडोरस (Appollodorus) ने की थी, रोम मे उसका गर्म चश्मा स्नानागार और डेन्यूब नदी पर बना पुल, जिसे स्थापत्य सम्बन्धी निपुणता का चमत्कार माना जाता था, तथा सूर्यदेव का मदिर (Pantheon) जो कि १२४ ई० मे पूरा हुआ—ये सभी चीजे रोमन स्थापत्यकला और कारीगरी के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं।

ईसाई धर्म ने रोमन स्थापत्यकला को नया जीवन दिया। रोम मे सेन्टपाल का चर्च, कान्स्टेटिनोपल मे सेन सोफिया का और यरुशलम मे भी एक ऐसा ही चर्च नयी स्थापत्यकला के कुछ उदाहरण थे।

ऊ धार्मिक और दार्शनिक चिंतन मे रोमन योगदान

रोमन धर्म—रोमन धर्म मे अनेक गृह आत्माओ तथा राज्य देवता की पूजा शामिल थी और वे अनेक प्रकार के रहस्यो मे विश्वास करते थे।

गृह आत्माएँ—प्रागैतिहासिक इतालवी कबीले अनेक गृह-देवताओ की पूजा करते थे, जैसे जेनस (Janus) जो परिवार का सरक्षक देवता था, जीनियस (Genius) जो पुरुष के पुरुषत्व का देवता था, जूनो (Juno) स्त्री की गर्भ धारण करने की क्षमता का नियत्रण करने वाली आत्मा तथा सेटरमीस (Satuimes), पोमस (Pomous), कारस (Caros) तथा पेल्स (Pales), कृषि सम्बन्धी आत्माएँ आदि।

राज्य देवता—वे अनेक राज्य देवताओ की पूजा भी करते थे। जैसे मगल (Mars) जो युद्ध का देवता था तथा जूपिटर (Jupiter) जो यूनानी जीउस का रोमन सस्करण था। इसके साथ ही एट्रूस्कनो ने अपने निजी देवता भी वना डाले थे। जैसे मिनर्वा (Minerva), डायने (Diene) तथा अन्य।

रहस्यमय अस्तित्व—रोमन अनेक प्रकार के रहस्यमय व्यक्तित्वो की भी आस्था रखते थे, जैसे सेटर ने लिया, सिविल (Cybele), तामुज (Tammus), एटिस (Attis), डायनीसस (Dionysus) ओरफेस, (Orphens) तथा ओसीरिस (Osiris)। इन सभी रहस्यो मे रक्तपात और आत्म-विकृति वहुत जरूरी था। उनका विश्वास था कि ऐसा करके वे अमरत्व पा सकने है तथा यह भी कि वे वुराई से वच जायेंगे।

अतत ईसाई मत का जन्म रोमन साम्राज्य मे ही हुआ। जिसका विवेचन अलग से किया गया है।

रोमन दर्शन—धर्म और दर्शन के क्षेत्रो मे, रोम वेतार के तार का काम कर रहा था, जो यूनान से सदेश ग्रहण करता और आधुनिक जगत् की ओर प्रसारित कर देता था। वहरहाल यूनानी दार्शनिक चिंतन का प्रसारण करते समय, रोमन इसे व्यावहारिक रूप देते थे। रोड्स (Rhodes) के पैनेक्टिअस (Panactius) (१८०–११० ईसापूर्व) ने यूनानी स्टोइकवाद की शिक्षा रोमनो को दी। उसके मतानुसार हर आदमी को अपने आपको तर्कपूर्ण और नीतिपूर्ण ढग से सुधारना चाहिये। साथ ही साथ केवल राष्ट्रीयता और देश से भरपूर कार्यों की सपन्नता द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। लुक्रीशियस (९५–५५ ईसा पूर्व) ने रोमनो को यूनानी आनदवाद (Epicureanism) का पाठ पढाया।

सेनिया (४ ईसा पूर्व ६५ ईस्वी)—वह रोमन दार्शनिको मे महानतम था। मूल रूप से वह तितिक्षावादी था। उसने नीति-दर्शन पर वहुत कुछ लिखा। उसके मतानुसार मनुष्य जीवन का सवमे वडा ध्येय आनद और नेकी है। लेकिन आनन्द तभी अच्छा है अगर नेकी उससे जुडी हुई हो। और यह कि नेकी करने से ही नेकी की भावना को प्राप्त किया जा सकता है।

ए वैज्ञानिक चिंतन मे रोमन योगदान

जन-स्वास्थ्य—रोमनो ने स्वास्थ्य सेवा की व्यवस्था और जन-स्वास्थ्य के विभाग मे भी कुछ योगदान दिया। सफाई का वहुत ध्यान रखा जाता था। उदाहरण के लिये वारह तालिकाओ के अनुसार मृतको को नगर की चारदीवारी के वीच कहीं भी दफनाना निषिद्ध था। साथ ही, चौदह नहर पुल, जो नगरवासियों को प्रतिदिन तीस करोड गैलन पेयजल सप्लाई करते थे, इस वात के सूचक थे कि रोमन

जन-स्वास्थ्य का बहुत ध्यान रखते थे । एंटोनियस (Antonius) के १६० ईस्वी के एक कानून के अनुसार छोटे कस्बों के लिये पांच तथा बड़े कस्बों के लिये दस चिकित्सकों की व्यवस्था आवश्यक थी । चार्ल्स सिंगर (Charles Singer) के कथनानुसार 'अस्पताल प्रणाली औषधिशास्त्र के क्षेत्र में रोम की एक बहुत बड़ी देन है ।''

गेलन (१३०–२००)—यह महानतम रोमन चिकित्सक था । उसने हिपोक्रेटीज परम्परा को पुन स्थापित किया । उसने श्वास-प्रक्रिया, रीढ़, हृदय, मासपेशियों का अध्ययन किया और उनकी वैज्ञानिक व्याख्या की । उसका शरीर-विज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त औषधि-शास्त्र के क्षेत्र में एक उच्चकोटि की उपलब्धि माना जाता है ।

ऐ राजनीतिक और वैधानिक चिंतन में रोमन योगदान

रोमन साम्राज्य एक विश्व का विचार—रोमन लोग मानव जाति के इतिहास में ऐसे पहले लोग थे जिन्होंने एक स्वतन्त्र "वस्तुत साम्राज्य" (De jure empire) की स्थापना की जो कि पांच शताब्दियों तक जमा रहा ।

रोमन साम्राज्य का सक्षिप्त इतिहास

ऐसा विश्वास किया जाता है कि रोम नगर की स्थापना, जिसे बाद में रोमन साम्राज्य की राजधानी बनना था, दो पौराणिक राजकुमारों अर्थात् रोमुलस और रोमस द्वारा ७५३ बी० सी० में की गई थी । उस समय यह टीवर नदी में एक द्वीप था । ईसा पूर्व छठी शताब्दी में रोम पर इट्रूसियनों का आधिपत्य हो गया, परन्तु लैटिन कबीलों द्वारा उन्हें ५०९ बी० सी० में रोम से खदेड़ बाहर किया गया । उसके पश्चात इन कबीलों ने रोम में एक अभिजात वर्ग के गणतन्त्र की स्थापना की । धीरे-धीरे रोमनों ने ५०९ बी० सी० से २६८ बी० सी० तक की अवधि के दौरान सारे इटली देश पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया । इस प्रकार उन्हें प्रथम श्रेणी के योद्धाओं और बहादुरों की श्रेणी में गिना जाता है ।

प्यूनिक युद्ध (२६४ बी० सी० से १४५ बी० सी० तक)—कार्थेज नगर के निवासी फीनिसियन्स थे । उन्होंने भूमध्य सागर के पश्चिमी तट पर अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया था । उनका यह कहना कि 'हमारी स्वीकृति के बिना रोम निवासी या रोमन अपने हाथ भी भूमध्य सागर में नहीं धो सकते ।' आपसी स्पर्धा की द्योतक है । अधिक लूट का माल और अधिक भू-क्षेत्र प्राप्त करने की इस स्पर्धा एव लालसा के फलस्वरूप तीन भयानक युद्ध हुए । इन लड़ाइयों को प्यूनिक युद्ध कहते हैं । ये लड़ाइयाँ रोम और कार्थेज के बीच लगभग एक शताब्दी तक (२६४ बी० सी० से १४६ बी० सी० तक) चलती रही और अन्त में रोमनों की विजय हुई । कार्थेज के नगर को

जलाकर खाक कर दिया गया। इस प्रकार भूमध्य सागर पर रोम का पूर्ण अधिकार हो गया।

रोमन गणतन्त्र का नैतिक पतन—रोमन साम्राज्य के विकास के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन से नैतिकता और अच्छाई धीरे-धीरे विलुप्त हो गई। सिनेट के सदस्य तथा अन्य अधिकारी वदनाम और भ्रष्ट हो गये थे। स्वार्थी, वदनाम एव भ्रष्ट राजनीतिज्ञो के हाथो मे सत्ता आ गई थी और वे ही सारे प्रशासन को चलाते थे। तथापि लोकप्रिय अधिकरणो-टाइवेरिटन्स और गेअस-ग्राक्काई वन्धुओ ने निम्नस्तरीय जनता के लिये उचित अधिकार प्राप्त करने मे भरसक तथा सभी सम्भव प्रयास किये। परन्तु ऐसा करने मे उन्हे अपने जीवन से हाथ धोना पडा। इसके पश्चात् रोमन साम्राज्य दो सैनिक सेनानायको के अधिकार मे आया, पहले उस पर सेनानायक सुल्ला का आधिपत्य रहा तत्पश्चात् सेनानायक मेरियस उसका सर्वेसर्वा वन बैठा।

जूलियस सीजर

इन दोनो के पश्चात् ल्यूसेरस, पाम्पी, क्रेसस एव जूलियस सीजर आदि सेनानायको एव सेनापतियो ने साम्राज्य पर अपना वर्चस्व स्थापित किया।

जूलियस सीजर और उसके भतीजे (दत्तक पुत्र) आक्टेवियन ने रोमन साम्राज्य के निर्माण मे वहुत वडी भूमिका अदा की।
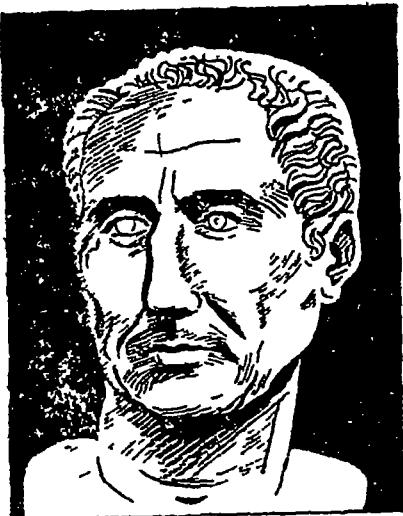
पहली ट्रिअम्वरटे और जूलियस सीजर—रोम की सत्ता की राजनीति मे तीन व्यक्ति प्रमुख थे। जूलियस सीजर, क्रेसस और पाम्पी। इन तीनो ने आपस मे मिलकर राजनैतिक भागीदारी स्थापित की थी जिसे ६० ईस्वी पूर्व मे प्रथम ट्रिअम्वरटे (तीन व्यक्तियो का शासन) के नाम से पुकारा या जाना जाता था। ७० ईस्वी पूर्व पाम्पी एक वहुत प्रसिद्ध सैनिक योद्धा और कासल था। क्रेसियस अभिजात वर्ग का एक वहुत ही धनी व्यक्ति था जो युद्ध के दौरान जूलियस सीजर को आर्थिक सहायता प्रदान करता था। जूलियस सीजर एक बहुत ही चतुर राजनीतिज्ञ था, साथ ही साथ पाम्पी के समान ही कुशल सेनापति (जनरल) भी था। रोम की राजनीति के सभी हथकण्डे जैसे घूस देना और लोगो को खुश करने के अन्य विभिन्न तरीके, उसे पूर्णतया मालूम थे।

जूलियस सीजर का उत्थान एव अभ्युदय—सीजर को गॉल एव उसके पडोसी क्षेत्रो का ८ वर्ष की अवधि के लिये (५८ से ५० ईस्वी पूर्व तक) राज्यपाल (गवर्नर) नियुक्त किया गया था। इस नियुक्ति के पश्चात् सीजर ने गॉल पर चढाई कर उसके समस्त क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और जर्मनी तथा ब्रिटेन पर भी विजय प्राप्त की जबकि पाम्पी रोम मे रहकर इटली की सेना तथा भूमध्य सागरीय नव सेना का सेना-पतित्व करता रहा। इसी बीच क्रेसियम, जो अपने साथियो से ईर्ष्या करता था, पूर्व की ओर चल पडा और पारथियनो के ऊपर विजय प्राप्त की, परन्तु ५३ बी० सी० मे वह हार गया और पकडा गया। जब उन्हे यह पता चला कि क्रेसियस को सोने से बहुत प्यार है तो उन्होंने पिघले हुए सोने को इसके गले मे उड़ेल दिया। क्रेसियस की मृत्यु के फलस्वरूप ट्रिअम्वरटे टूट गई और सत्ता के हथियाने के लिये सीजर और पाम्पी के बीच अन्तिम सघर्ष शुरू हो गया।

सीजर को यह पूर्णतया मालूम था कि रोम को एक तानाशाह की आवश्यकता है और तानाशाह बनने के लिए उसके पास लोक-सकल्प तथा अन्य आवश्यक गुण मौजूद हैं। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए उसने अपनी प्रशिक्षित सेना के साथ इटली मे प्रवेश किया और ४९ बी० सी० मे रोम पर चढाई कर सीधे धावा बोल दिया। सीजर के इस साहसपूर्ण कार्य के फलस्वरूप रोम मे गृहयुद्ध शुरू हो गया। पाम्पी उचित समय पर रोम मे सेना एकत्रित न कर सका, अत इस हेतु वह यूनान चला गया। वहाँ से वह मिस्र भाग गया परन्तु सीजर ने उसका पीछा वहाँ भी किया। पाम्पी की हत्या कर दी गई परन्तु क्लीओपेट्रा के सौन्दर्य एव शारीरिक सौष्ठव पर सीजर मोहित हो गया। क्लीओपेट्रा अनन्य सुन्दरी थी और मिस्र की सम्राज्ञी थी। इसके पश्चात् ४७ बी०सी० मे उसने मिस्र से बाहर निकल कर एशिया माइनर पर चढाई करके अपने समस्त विरोधियो एव प्रतिद्वन्दियो को परास्त किया। यहीं से उसने अपना इतिहास प्रसिद्ध प्रतिवेदन "मैं आया, मैंने देखा और मैंने विजय प्राप्त की' ("Vom, vidi, vici") सिनेट को प्रेषित की थी। उसने अफ्रीका के प्रान्तों एव स्पेन पर भी विजय प्राप्त की। अपनी इन विजयो के पश्चात् सीजर रोमन साम्राज्य के 'बेताज के शाह के रूप मे' रोम को वापस लौट आया।

सीजर तानाशाह के रूप मे—सीजर ने सिनेट को अपने हाथ की कठपुतली बना डाली और सिनेट ने उसे ६ महीने के लिये नही अपितु जीवन-पर्यन्त के लिये तानाशाह बना दिया और उसे सर्वसत्ता सम्पन्न अधिनायक एव शासक (Pontifex maximus and imperator) की उपाधि प्रदान की। यद्यपि सीजर असीमित अधिकारो का स्वामी था, फिर भी उसने रोमन गणतन्त्र के बाहरी स्वरूप को कायम रखा।

जूलियस सीजर ने रोमन साम्राज्य का पुनर्गठन इस तरह मे किया कि जिसके द्वारा राजनैतिक स्थिरता प्राप्त की जा सके। नवगठित सिनेट सदैव जूलियस सीजर ने इटली के बाहर रहने वाले व्यक्तियो को भी मुक्तहस्त से रोमन नागरिकता प्रदान की और सभी प्रान्तो के प्रशासन के लिये एक ही तरह की पद्धति लागू की। उसने सैनिक राज्यपालो (मिलीटरी गवर्नरो) को अपना लिगेट (Legates) बनाया अर्थात वे सीजर के प्रत्यक्ष एव सीधे प्रतिनिधि होने थे और सीधे तौर पर सीजर के प्रति उत्तरदायी होते थे। सीजर इटली के नागरिको के अलावा दूसरे लोगो को भी सेना मे भरती करता था। उसने समस्त इटली के लिये लोक-निर्माण की एक वृहत् योजना तैयार की थी जिसमे रोम नगर के लिये नगर-नियोजन परियोजना भी शामिल थी।

साम्राज्य की सीनेट मे एव उसके बाहर भी जूलियस सीजर के अनेक दुश्मन थे जो पुराने गणतन्त्र को पुन स्थापित करने का स्वप्न देखते थे। ४४ बी० सी० की १५वी मार्च को षड्यन्त्रकारियो के एक गुट ने विश्वासघात करके उसकी हत्या कर दी। जूलियस सीजर के पास मस्तिष्क एव हृदय के सुन्दर गुण थे, वह प्रतिमावान तथा सहृदय था। वह बहुत योग्य एव कुशल प्रशासक, राजनीतिज्ञ, सेनापति एव विद्वान् व्यक्ति था।

आक्टेवियन—वह जूलियस सीजर का भतीजा और दत्तक पुत्र था। वह ४३ ईसा पूर्व मे सलाहकार के रूप मे चुनवाने मे सफल हो गया था। तब उसने एटनी (Antony) तथा लेपीडस (Lepidus) के साथ मिल कर 'दूसरी त्रिमूर्ति' की स्थापना की, तथा रोमन साम्राज्य को तीन हिस्सो मे बाँट दिया और हर हिस्सा त्रिमूर्ति के एक-एक सदस्य के पास रहा। लेकिन कुछ दिनो के बाद ही आक्टोवियन ने लेपिडस को पदच्युत कर दिया और एटनी ने भी इस बीच मिस्र की रानी क्लिओपैट्रा के प्रेम का शिकार हो गया था, अपनी प्रेमिका के साथ मिल कर आत्मघात कर लिया। इस प्रकार, आक्टेवियन, रोमन विश्व का एकाकी प्रभुतासपन्न सम्राट् बन गया। उसने प्रिंसिप्स (Princips) (जिसका अर्थ होता है बराबर के लोगो मे प्रथम), इपरेटर (Imparator) (यानी सप्रभु) तथा आगस्टस (Augustus) (अर्थात् शुभ) की पदवियाँ ग्रहण की। आगस्टस वास्तविक रोमन साम्राज्य का निर्माता था—जो कि रोमन गणतत्र से सर्वथा भिन्न था।

३१ ईसापूर्व से १४ ईसवी तक की आगस्टस का सम्राट् के रूप मे शासनकाल विश्व-इतिहास के सर्वाधिक उज्ज्वल युगो मे से एक सिद्ध हुआ। उसने रोमन गणतत्र की प्राचीन सस्थाओ को पुन स्थापित किया और अपने लिए एक विशिष्ट स्थान अकित किया, जिसका सानी अतीत मे दिखाई नही देता। २७ ईसापूर्व मे उच्च सभा ने उसे सलाहकार की पूरी शक्तियाँ दे दी, जिनके तहत आगस्टस को सारी रोमन सेनाओ और

दूर-दराज के प्रांतों पर भी पूर्ण नियंत्रण अधिकार प्राप्त हो गये। उसके पास ट्रिब्यून (Tribune) की भी सारी शक्तियाँ थीं, यद्यपि वह स्वयं उसका सदस्य नहीं था। बाद में उसे रोमन विश्व का धर्म-प्रमुख भी बना दिया गया। इस प्रकार आगस्टस रोमन साम्राज्य का प्रमुख और वास्तविक सम्राट् बन गया और उसके इस विशिष्ट पद को "प्रिंसिपेट" (Principate) के नाम से जाना जाता था। फिर भी, आगस्टस इतना चतुर तो था ही कि वह अपने आपको रोमन गणतंत्र के एक अधिकारी मात्र होने का बहाना बनाये, जिसकी नियुक्ति उच्च सभा ने की थी और यह भी कि उसे सारी शक्ति उसी सभा से प्राप्त होती थी।

आगस्टस

इतने बड़े साम्राज्य के प्रशासन के लिए आगस्टस ने जिस प्रणाली को लागू किया, वह रोमन कहावत "इंपिरियम एट लिबरटा" (Imperium et Liberta) पर आधारित थी, जिसका अर्थ होता है—"साम्राज्य एवं स्वतन्त्रता", सारी प्रशासनिक मशीनरी पूरी तरह रोम में "इंपरेटर" (Imparator) यानी सम्राट् के हाथों में केन्द्रित थी, जो दूरवर्ती प्रांतों पर अपने "लीगेट्स" (Legates) यानी सूबेदारों के माध्यम से शासन करता था, जो अपने प्रांतों के अच्छे प्रशासन के लिए सीधे व्यक्तिगत रूप से सम्राट् के प्रति उत्तरदायी होते थे। सूबेदार तभी तक अपने पद पर बने रह सकते थे जब तक आगस्टस उनसे खुश रहता था और उन्हें बहुत अच्छा वेतन मिलता था। सूबेदारों की सहायता के लिए अनेक स्थानीय अधिकारी होते थे, लेकिन प्रांतो को अपने घरेलू मामलों में "स्वतन्त्रता" मिली हुई थी। आगस्टस ने स्थानीय स्वायत्त की संस्थाओं जैसे नगरपालिका और प्रांतीय सभाओं आदि के विकास को प्रोत्साहन दिया। उसने हर प्रांत की जनसंख्या तथा सम्पत्ति के सम्पूर्ण मूल्य के आधार पर प्रांतीय कर प्रणाली को भी तर्कपूर्ण बनाया और अंत में उसने साम्राज्यीय नागरिक सेना की शुरुआत की।

साम्राज्य की रक्षा के लिए सेनायें थीं जिनमें इतालवी सैनिक थे लेकिन प्रमुख रूप से वे प्रांतीय और बर्बर थे। सेनायें रोमन साम्राज्य में शांति बनाये रखती थीं। वास्तव में यह प्रशासन का एक नया तरीका था जो पहले कभी नहीं अपनाया गया था, लेकिन बाद में वह पूरी मानव जाति की विरासत बन गया। आज दुनिया को ऐसी

ही किसी प्रणाली की बहुत जरूरत है जिससे दुनिया भर के राज्यो को एकत्र किया जा सके और विश्वशाति की स्थापना हो सके ।

शासन-प्रणाली—रोमन लोगो ने अपनी शासन-प्रणाली मे अपनी प्रतिभा का परिचय दिया । जिसके अतर्गत "एक वक्त के लिए राजतत्र, कुलीनतत्र तथा प्रजातत्र सफलतापूर्वक एक हो गए थे, और उसे दार्शनिको, इतिहासकारो, प्रजा और शत्रुओ सभी की प्रशसा मिलने लगी" शासनकाल मे रोमन लोगो का मुकावला करने वाला कोई नही था ।

रोमन गणतंत्र की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थी —

दो परामर्शदाता—'सशस्त्र लोगो' (Comitia Centuriata) की सभा हर वर्ष दो परामर्शदाताओ का चुनाव करती थी, ये 'सशस्त्र लोग' वरिष्ठ लोगो के नियत्रण मे रहते थे और वरिष्ठ लोग (Particians) ही परामर्शदाता हो सकते थे । व्यावहारिक तौर पर ये दोनो परामर्शदाता ही सरकार का सारा कार्य चलाते थे । वे सेना के उच्चतम अधिकारी होते थे । वे ही राजकीय कोष के सरक्षक होते थे और कानूनी मामलो मे वे न्यायाधीशो का प्रयोग करते थे । वे एक दूसरे के कार्यों पर निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकते थे और जव उनमे कोई मतभेद हो जाता था तो मामला उच्च सभा को सौंप दिया जाता था जिसका निर्णय अतिम होता था ।

उच्च सभा—अग्रेजी शब्द 'सीनेट' लातीनी शब्द 'सीनेक्स' (Senex) से निकल कर आया है, जिसका अर्थ होता है 'बुजुर्ग' । प्राचीन रोम मे एक मे एक वरिष्ठ मडल या सीनेट होता था, जिसके सदस्य पितृवादी परिवारो के मुखिया ही होते थे और जिनका पद जन्मजात होता था । जन-महत्त्व के सभी कार्यों के मामले मे परामर्शदाताओ को उच्च सभा की सलाह लेनी पडती थी—जैसे युद्ध या शाति की घोषणा, या नये कानून वनाने के मामले मे । उच्च सभा स्थायी सभा थी । यद्यपि यह सलाहकार सभा थी, फिर भी यह कानूनो तथा परामर्शदाताओ के पद के लिये प्रत्याशियो को स्वीकृति या अस्वीकृति देती थी । राज्य की विदेश नीति पर इसका नियत्रण रहता था । अतत उच्च सभा की शक्ति या निर्बलता ही रोम की शक्ति या निर्वलता की परिचायक थी ।

जन-सभा—जन-साधारण के लिये केवल जन-सभा मे ही जगह थी, जिसे 'कमिटिया ट्रिव्यूटा' (Comitia 'Tributa) या कवीलो की सभा के नाम से जाना जाता था । इनकी अध्यक्षता 'ट्रिव्यून' (Tribunee) करते थे । यह "सभा तथा कमिटिया सेचुरियाटा या सैन्य सभा" प्रोफेसर एस० आर० शर्मा लिखते हैं, "वक्त बीतने के साथ-साथ उच्च सभा से भी बनती चली गयी ।"

जन-प्रतिनिधि—परामर्शदाताओ और उच्च सभा के भारी पाँवो के नीचे जन-साधारण को बहुत पीडित होना पडता था । परामर्शदाताओ को तो जन-सामान्य के

जीवन तथा मृत्यु तक पर हक हासिल था तथापि ४९४ ईसवी पूर्व जब प्लेब (Plebs) लोगों ने रोम को छोडकर चले जाने के लिये धमकी दी और उन्होंने टाइबर नदी के दूसरी ओर एक नये शहर की नीव डाली तो पैट्रिशियनों ने उन्हे ऐसा करने के लिये अनुमति दे दी।

उन्होंने उन्हे यह अधिकार दिया कि वे अपने दो प्रतिनिधियो का चुनाव करके उनकी सभा मे भेजे। इन्ही प्रतिनिधियो को 'ट्रिब्यून' कहा गया। बाद मे उनकी सख्या बढाकर दस कर दी गयी। उनकी शक्तियाँ इस प्रकार थीं —(१) किसी भी न्यायाधीश के कार्यों के विरुद्ध निषेधाधिकार (विटो—जिसका अर्थ है, 'मैं प्रतिबन्ध लगाता हूँ' यह अधिकार परामर्शदाताओ के कार्यों पर लागू होता था।) (२) यदि कोई कानून जन-सामान्य के हितों के विरुद्ध जाता हो, तो इसको निभाना तथा जन सभा की अध्यक्षता करना।

धनरक्षक—सरकारी अधिकारियों के एक छोटे से समूह की नियुक्ति जनता के धन की देखभाल के लिये की जाती थी। उन्हे धनरक्षक कहा जाता था। इस प्रकार सरकारी खजाने की देखभाल का काम परामर्शदाताओं से लिया गया और धनरक्षकों को सौंप दिया गया।

सहायक न्यायाधीश—कानूनी मामलों के फैसले मे परामर्शदाताओं की सहायता करने के लिये कुछ न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती थी। इन्हे सहायक न्यायाधीश कहा जाता था।

दो प्रतिबन्धक—दो सहकारी अधिकारियो की नियुक्ति प्रतिबन्धकों के रूप मे की जाती थी। उनके कर्तव्य थे—(१) करों का हिसाब लगाना, उनकी वसूली करना तथा उनका लेखा-जोखा रखना, (२) मताधिकार का निश्चय करना, (३) लोगों के व्यवहार की प्रतिदिन जाँच करना तथा (४) यह देखते रहना कि कोई भी गलत काम न हो। अंग्रेजी शब्द 'सेंसर' इन्ही रोमन अधिकारियों के नाम से आया है।

अधिनायक—राष्ट्रीय सकट के समय मे, जब राज्य की सुरक्षा खतरे मे होती थी, रोमन लोग अत्यत आदरणीय तथा ईमानदार व्यक्तियो मे से एक को अधिनायक के रूप मे नियुक्त कर देते थे, जो सिर्फ छः महीनो की अवधि के लिये राज्य का सर्वोच्च शासक होता था। उसकी शक्तियाँ असीमित होती थी और जनता के लिए किये गये उसके कार्यों के विरुद्ध कोई आवाज नही उठा सकता था। राज्य की रक्षा के लिये वह जिस तरह के चाहे कदम उठा सकता था।

रोमन प्रजातन्त्र की प्रकृति—यूनान की प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र वाली प्रणाली रोमन लोगो के लिये ठीक नही थी। इसलिये उन्होंने अप्रत्यक्ष या प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्र का रास्ता निकाला, जिसे आज के अधिकाश राज्यो ने अपनाया है।

रोमन साम्राज्य करीव-करीव ४५० वर्ष तक रहा, १४वी ईसवी मे आगस्टस की मृत्यु के पश्चात् लगभग ८४ सम्राटो ने इस लम्वी अवधि के दौरान शासन किया और साम्राज्य को सँभाला। तथापि सम्राट् नीरो (५४ ई० से ७० ई० तक) जो सम्राट् क्लेडियस का लडका तथा उत्तराधिकारी था, जूलियस शासन वश का अन्तिन शासक था (अर्थात् जूलियस के राज्यवश का अन्तिम शासक था)। वह वहुत ही कठोर, निर्दयी और मनमौजी शासक था। मानव इतिहास मे इसकी तरह के वहुत कम अत्याचारी शासक मिलते है। उसने अपनी माँ, अपनी गर्भवती रानी एव अपने दार्शनिक गुरु एव शिक्षक सेनेका को मार डाला था। जव रोम शहर मे आग लगी हुई थी और सारा शहर आग की लपटो मे जल रहा था तो उसे जलते हुए शहर का दृश्य वहुत आनन्दप्रद प्रतीत हो रहा था। इसीलिये यह कहावत कही जाती है कि "जव रोम जल रहा था तव नीरो सारगी वजाकर सगीत का आनन्द ले रहा था।"

रोमन कानून—रोमन लोगो की कानून-पद्धति ने ही, जो समय-समय पर सशोधित होती रहती थी, उन्हे इतने विशाल साम्राज्य को शासित करने के योग्य वनाया और यह पद्धति मानव-जाति की धरोहर वन गयी।

रोमन कानून का लिखित इतिहास वारह तालिकाओ (twelvetables) और ४५० ईसापूर्व मे जन-साधारण द्वारा वनवाये गये कानूनो से मिलना शुरू हो जाता है। समय और स्थितियो के अनुसार समय-समय पर इनमे सशोधन होते रहते थे—और यह परिवर्तन धारा-सभाओ द्वारा कम, प्रशिक्षित न्यायाधीशो द्वारा ज्यादा होते थे, जो इन कानूनो को नये अर्थ देते रहते थे। नागरिको के लिये कानून के समक्ष समानता रोमन कानून की महत्वपूर्ण विशेषताओ मे से एक थी। मामलो को लेकर इन पर फैसला देने वाले न्यायाधीशो को 'प्रेटर (Praetor) कहा जाता था। प्रत्येक न्यायाधीश अपने सामने आने वाले मामले की अपने फरमान के जरिये व्याख्या करता था।

न्यायाधीश दो तरह के होते थे—(१) नगरीय न्यायाधीश (Praetus Urbanus) जो केवल रोमन नागरिको के मामलो को देखते थे, तथा (२) विदेशी मामलो के न्यायाधीश (Praetor Peregrinue), जो कि विदेशियो के मामलो को तय करते थे।

रोमन कानून तीन शाखाओ मे विकसित हुआ, जिनकी व्याख्या निम्न-लिखित है :—

दीवानी कानून—यह रोमन लोगो का दीवानी कानून था। इसमे उच्च सभा के विधान, सरकारी आदेश तथा कुछ ऐसी रीतियाँ सम्मिलित थी जिन्हे वैधानिक स्वीकृति मिल चुकी थी। इनका सम्वन्ध व्यक्तियो, वस्तुओ और कार्यों से होता था।

व्यक्तियों, वस्तुओं एवं सभी कार्यों का निष्पादन एवं निपटारा यह करता था। यह, करारों एवं संविदाओं की कानूनी व्याख्या करता था और परिभाषा बताता था। एक निगम के व्यक्ति होने की धारणा इसी दीवानी कानून ने शुरू हुई।

विशिष्ट कानून—यह 'एक नया प्रेटोरीय कानून' था, जो अनागरिकों पर लागू होता था। १७६ ईसा पूर्व तक इसका विकास हो चुका था। इसमें रोमन साम्राज्य की जनसंख्या में शामिल अधिकांश विदेशी जातियों के रीति-रिवाज शामिल थे।

ईसा के बाद पाँचवी शताब्दी में, रोमन कानून को लिपिबद्ध करते समय, प्राकृतिक विधान (Jus Naturale) में से भी कई वैधानिक सिद्धान्त ले लिये गये। 'प्राकृतिक विधान' की रचना कई लोगों ने मिलकर की थी, जिनमें सिसरो का प्रमुख स्थान था। ४३८ ई० में ईसाई तथा जर्मन मान्यताओं का थियोडोसीय विधान में सम्मिलित करने के प्रयास किये गये।

जस्टीनियम (५२७-५६५ ई०) का कार्पस ज्यूरिस सिविलिस—जस्टीनियम ने एक प्रख्यात विधि-विशेषज्ञ ट्रिबोनियम (Tribonium) की अध्यक्षता में दस विधि-विशेषज्ञों का एक आयोग नियुक्त किया, कि वे रोमन कानून को सम्वर्द्धित करें और उन्हें समकालीन बनायें। इस प्रकार रोमन कानूनों का संग्रह चार भागों में विभाजित किया गया—(१) संहिता (The Code)—इसमें सरकारी आदेश तथा उस समय प्रचलित सवैधानिक नियम शामिल हैं। (२) 'डाइजेन्ट' (Digent)—इसमें न्यायिक सलाहकारों की रायें सम्मिलित थीं। मेटलैंड के कथनानुसार, डाइजेस्ट के बगैर दुनिया वैसी नहीं हो सकती थी, जैसी वह हमें मिली है। (३) संस्थाएँ (The Institutes)—इसमें कानून का आलोचनात्मक विश्लेषण शामिल था। यह कानून विद्यार्थियों के लिये पाठ्य पुस्तक का काम कर सकता था। (४) नोवेल्स (The Novels)—इसमें संहिता में हुए सभी संशोधन शामिल थे।

रोमन कानून ने 'कार्पस ज्यूरिस सिविलिस' के अपने अन्तिम रूप में इटली, स्पेन, फ्रान्स, जर्मनी, इङ्गलैंड तथा अनेक यूरोपीय देशों की वैधानिक प्रणाली के लिये नींव का काम किया।

रोम का 'पतन' सिर्फ इस अर्थ में हुआ कि उसका साम्राज्यीय नेतृत्व समाप्त हो गया। लेकिन उसकी सांस्कृतिक, विशेष रूप से भाषा, राजनीतिक, आदर्शों, विधि तथा सैन्य संगठन के क्षेत्रों में उपलब्धियों ने आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के लिये नींव का कार्य किया।

प्रश्नावली

१ यूनानियों और रोमनों में मूलभूत अंतर क्या है?

२ रोमन सामाजिक जीवन की विवेचना कीजिए। रोमन आर्थिक जीवन की व्याख्या कीजिए।

३ कला और स्थापत्य के क्षेत्र मे क्या रोमन योगदान रहा ?

४ धार्मिक और दार्शनिक चिंतन मे रोमन योगदान की व्याख्या कीजिए।

५ राजनीतिक और कानूनी चिंतन मे रोमन योगदान का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

६ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए —

(अ) साम्राज्य और स्वतन्त्रता,
(आ) परामर्शदाता,
(इ) ट्रिब्यून,
(ई) रोमन अधिनायक,
(उ) रोमन कानून तथा
(ऊ) आक्टेवियन।

सातवाँ अध्याय

चीनी सभ्यता

अ भूमिका

चीन का भौगोलिक पृथक्करण—प्राचीन चीन शेष समार मे पूरी तरह कटा हुआ था अतएव चीन ने अपनी एक अलग ही सस्कृति और सभ्यता का विकास किया। चीन के पूर्व मे प्रशान्त महासागर है, पश्चिम मे अलघ्य उच्च पर्वत-श्रेणियाँ हैं, चीन का दक्षिण भाग महासागर से घिरा हुआ है और उत्तर मे विस्तृत रेगिस्तान है। उत्तर मे स्थित रेगिस्तान चीन को बाहरी आक्रमणकारियो से नही बचा पाया अतएव चीनियो ने उत्तर मे महान् दीवार बनायी जो लगभग १५०० मील लम्बी है और जिसने मगोल आक्रमणकारियो को बाहर रखा।

तीन नदियाँ—तीन नदियो—सिक्याग दक्षिण मे, यास्ती क्याग मध्य मे और ह्वागहो उत्तर मे—ने चीनियो के जीवन मे महत्वपूर्ण भूमिका बनाई। ये तीनो नदियाँ पश्चिमी पठारो से निकलकर पूर्व की ओर बहती हैं। इन नदियो की उपजाऊ धरती और सम जलवायु के कारण इसकी घाटियाँ लोगो के बसने के लिए आदर्श स्थान थी।

ब प्राचीन चीन मे सामाजिक वर्ग

सम्राट्—सम्राट् चीन के सामाजिक तराजू के शिखर पर था। सम्राट् को स्वर्ग-पुत्र माना माता था। वह देश का शासन ईश्वराज्ञा से करता था जिसे शीगटी कहते थे। अतएव वह सबका पिता समझा जाता था और समूची राष्ट्रीय सम्पत्ति उसी की मानी जाती थी।

बडे जमींदार—सम्राट् के नीचे थे बडे जमीदार जो अपने क्षेत्र मे मालिक थे। वे सबसे धनी और शक्तिशाली थे।

व्यापारी और मुक्त किसान—चौथी श्रेणी थी व्यापारियो, व्यवसायियो, मुक्त किसानो की जिनके पास जमीन नही थी। इन सबकी हालत अच्छी थी।

गुलाम—अत मे सामाजिक तराजू के एकदम नीचे थे गुलाम जो अपने मालिको के प्रति कई रूपो मे जिम्मेदार थे। वे छोटे जमीदार के खेतो पर रहते और काम किया करते थे। इनकी सामाजिक स्थिति बडी शोचनीय थी। वे खच्चरो से भी अधिक काम करते किन्तु साथियो से भी कम भोजन पाते।

शिक्षित वर्ग—ईस्वी पूर्व छठी शताब्दी मे एक नये वर्ग का उदय हुआ जो शिक्षा और ज्ञान पर आधारित था। इस वर्ग ने चीन के राजनीतिक जीवन को वहुत प्रभावित किया। इसमे से ही सरकारी अधिकारी तथा न्यायाधीश आये।

स चीन द्वारा आर्थिक योगदान

राज्य समाजवाद—विश्व सस्कृति को चीन का एक अत्यन्त दुर्लभ योगदान था, राज्य समाजवाद। सरकार के पास सिक्के, नमक और लोहा का एकाधिकार था। वह वस्तुओ को तव खरीद किया करता थी जव उनका मूल्य कम हुआ करता था और मूल्य अधिक होने पर वेच दिया करती थी। यातायात पर भी उसका नियन्त्रण था। वह जनता से ५ प्रतिशत आय कर वसूल किया करती थी। शुग राज परिवार का एक मत्र वाग याय शिह का दृष्टिकोण था—राज्य को व्यापार, उद्योग और कृषि को अपने हाथ मे लेना चाहिए ताकि श्रम करने वालो का उद्धार हो सके और वे धनवानो द्वारा धूल मे न मिला दिये जायँ। इस प्रकार प्राचीन चीनवासी आधुनिक समाजवाद के प्रणेता थे।

कृषि—चीनी मुख्यतया कृषक थे। वे वाजरा, चावल, गेहूँ, सोयावीन और चाय की फसल उगाते थे। चाय पीने का उन्हे वडा शौक था। फसल को सीचने के लिए नहरे वनायी गयी थी जिनके विना सिचाई सभव नही थी।

अन्य—चीनी वर्तन, कॉच, रेशम, स्याही, कागज, छापाखाना और अनेक प्रकार के ताँवे और काँसे की वस्तुएँ वनाने मे निपुण थे।

व्यापार, व्यवसाय—प्राचीन विश्व मे चीनी, वर्तन, ताँवा और काँसा की वनी हुई वस्तुएँ, रेशम, चाय, वार्निश वहुत लोकप्रिय थे और उससे प्रोत्साहित होकर चीन ने मेसोपोटामिया, रूस, रोम और भारत के साथ व्यापार के मार्ग खोल रखे थे।

सिक्के—वढते हुए व्यापार-व्यवसाय को देखकर ई० पू० ५०० मे सिक्को का प्रचलन हुआ। ई० पू० २२१ मे वस्तु विनिमय प्रणाली को रोक दिया गया और एक गोल सिक्का जिसके बीच मे छिद्र था, राज्य मुद्रा बना। सिक्के की जालसाजी के लिए वडा कडा दड दिया जाता था। ई० पू० ६ठी शताब्दी मे धन ऋण देना और धन जमा करना चीन मे एक प्रकार का व्यवसाय हो गया।

द चीन का राजनीतिक योगदान

शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार—चीन का राज्यपाल चाऊ जिसने वाद मे अपना नाम चि-इन शिह ह्वाग-ति रख लिया। चि-इन अर्थात् राज-परिवार का नाम, शिह अर्थात् प्रथम, ह्वाग-ति अर्थात् सम्राट् वास्तविक अर्थों मे चीन का पहला सम्राट् था। २५ वर्ष की आयु मे वह चीन का चन्द्रगुप्त वना और उसने पूरे देश को अपने अधीन

किया। उसने ही संसारप्रसिद्ध चीन की महान् दीवार बनवायी और एक शक्तिशाली सरकार का गठन किया। जिसका वर्णन यों है —

साम्राज्य का विभाजन प्रान्तो मे—सुविधा और सुचारु प्रशासन के लिए चिन्-त्न शिह ह्वाग ने अपने साम्राज्य को अनेक प्रान्तो मे विभाजित किया था।

नागरिक और सैनिक राज्यपाल—सामतशाहो को समाप्त करने के बाद सम्राट् ने प्रत्येक प्रान्त मे एक नागरिक और दूसरा सैनिक राज्यपाल नियुक्त किया जो एक दूसरे से स्वतन्त्र थे। वे दोनो ही सीधे सम्राट् के प्रति उत्तरदायी थे।

सडको और नहरो का निर्माण—शिह ह्वाग-ति ने अपने साम्राज्य के दूरवर्ती प्रदेशो से सम्पर्क रखने के लिए सडके और नहरे बनवायी।

समान कानून और नियम—समूचे चीन के लिए उसने एक समान कानून और नियम लागू किये। राज्य समारोहो को सरल बनाया और सिक्के जारी किये।

छद्म वेश मे यात्रा—शिह राज्य भर मे छद्म वेश मे भी घूमा करता था। ताकि जनता से उसका दुख-दर्द प्रशासन की त्रुटियो को स्वय जान सके और उनको दूर करने का प्रयास करे। उसकी मृत्यु ई० पू० २१२ मे हुई।

उत्पात और ह्वाग राज-परिवार—चि-उन शिह ह्वाग की मृत्यु पर राज्य भर मे उत्पात, उपद्रव हुए और वह बिखर गया। अत मे काओ-तसू ने समूचे चीन पर ई० पू० २०६ मे अपना आधिपत्य स्थापित किया और उसका पहला सम्राट् बना। इस राज-परिवार का सबसे शक्तिशाली सम्राट् वू-ती था जिसके नाम का अर्थ था "लौह सम्राट्।" उसने ही चीन को आज का रूप दिया था।

शक्तिशाली केन्द्रीय सरकारें—ह्वाग परिवार का चीन मे ४ शताब्दियो तक शासन रहा। उसने शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की और समाजवादी सरकार का गठन किया। चीन का गठन करके, वू-ती ने उसे १३ प्रातो मे विभाजित किया और प्रत्येक को एक राज्यपाल के अतर्गत रखा जो सिर्फ सम्राट् के प्रति ही उत्तरदायी था।

जनसम्पर्क परीक्षाएँ—हास सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सरकारी अधिकारियो की नियुक्ति के लिये स्पर्धा परीक्षाओ की निराली प्रणाली का प्रारम्भ किया। इनका आयोजन कफ्यूशियस के सिद्धात के अनुसार होता था—राज्य का शासन सबसे सुयोग्य के हाथो मे होना चाहिए। प्रतिस्पर्धीयो की परीक्षा घुडसवारी, धनुर्विद्या, पठन-पाठन, हिसाब-किताब और सगीत मे ली जाती थी।

वू-ती के शासन मे राज्य-समाजवाद—वू-ती ने राष्ट्रीय साधनो का राष्ट्रीय स्वामित्व स्थापित करके समाजवाद का प्रयोग किया। सरकार ने सिचाई-योजनाएँ भी अपने हाथ मे ली। व्यापार-व्यवसाय के भी नियम बना दिये गये। सरकार गिरते हुए मूल्यो पर माल लेकर रख लिया करती थी और जब भाव तेजी से उठने लगते थे

तब उन्हे वेच देती थी। इस प्रकार राज्य भर मे मूल्यो पर नियत्रण वना रहता था। इसी प्रकार यातायात के सभी स्थानो पर भी सरकारी नियत्रण रहता था।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आय पर ५ प्रतिशत आय कर देना होता था और उसे सरकारी खातो मे अपना नाम दर्ज कराना होता था।

वाग-माग (२३ ई०) और भूमिका पुर्नविवरण—ईसवी सन् के आसपास एक अन्य सुधारक सम्राट् वाग-माग चीन का शासन करने लगा। चीनी इतिहास मे दो कानून वनाने के लिये वह उल्लेखनीय है। पहला, गुलामी की समाप्ति और दूसरा भूमि का राष्ट्रीयकरण। धन की असमानता को कम करने के लिए उसने भूमि के एक समान टुकडे करके उन्हे किसानो मे वाँटना शुरू किया। साथ ही कुछ हाथो मे भूमि जाने से रोकने के लिये उसने भूमि का क्रय और विक्रय रोक दिया। उसने किसानो को व्याजमुक्त ऋण देने की व्यवस्था की ताकि वे वीज आदि खरीद सके। उसने वू-ती की नीतियो को जीवन के सभी क्षेत्रो मे पालन करवाना शुरू किया। चीनी हान परिवार के शासन को अपना स्वर्णिम युग मानते है। जिसे 'प्रथम' पुनर्जागरण युग भी कहा जाता है। आज भी राष्ट्रीयता के जोश मे वे अपने को 'हान-पुत्र' कहते हैं।

य कलाओ को चीन का योगदान

सौंदर्य और उपयोगिता—प्राचीन चीनी कला को 'सौंदर्य और उपयोगिता का मेल' कहा जा सकता है। साथ ही प्राचीन चीनियो ने कलाकार और कारीगर तथा मजदूर-भेदभाव नही किया। अतएव कला के ही समान उद्योग भी 'वस्तुओ मे अपने व्यक्तित्व की छाप छोड देती थी।'

चीनी जेड

'जेड' पत्थर काटने की कला—ई० पू० २५०० शताव्दी मे ही चीनी 'जेड' पत्थर को महलो के रूप मे तराशने की कला जानते थे। जेड एक ऐसा पत्थर है जिसका १ वर्ग इच का टुकडा काटने के लिये कभी-कभी ५० टन वजन का दवाव आवश्यक होता है।

चीनी जेड पत्थर को चाँदी, सोना और किसी अन्य जवाहिरात मे अधिक वहु-मूल्य मानते थे।

धातु का सांचा—कांसा की धातु का सांचा बनाना और उस पर सजावट करना चीन की उत्तम कारीगरी थी और उनकी सूची बनाने के लिये ४२ ग्रथो की आवश्यकता पडी थी। शस्मो शीशा, घटियाँ, ढीला फ्लूदान आदि उल्लेखनीय है।

चीनी मिट्टी की पोर्सलीन की कला—यह एक ऐसी मिट्टी है जिसमे चमक तो है किन्तु जिसके आरपार नही देखा जा सकता। यह चीनी मिट्टी आकर्षक और टिकाऊ भी होती थी। इसके आजीवन प्रशिक्षित कलाकार फूलो, पशुओ, साधु-महात्माओ, पक्षियो आदि को इसके रग देते थे। कलाकार कुम्हार इस चिकनी मिट्टी के बने प्याले, फूलदान, कटोरे, गिलास, बोतले, मोमबत्तियाँ, नक्शे आदि बनाते थे। नीला, सफेद चाँदी-मडित प्याला जिसे वान ली कहते है, विश्व मे बर्तन की कला के श्रेष्ठतम नमूनो मे से है। सबमे निपुण कुम्हार का नाम था हाओ शिह-चिन।
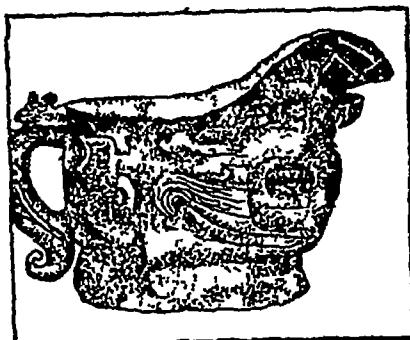
चीनी प्याला

हरी चीनी मिट्टी—'जेड' पत्थर के हरे टुकडे हरी चीनी मिट्टी के रूप मे विख्यात हुए। फारस निवासियो और तुर्को का विश्वास था कि विषाक्त वस्तुएँ रखी जाने पर इसके बर्तन अपना रग बदल देंगे।

बहुमूल्य—पारखी लोग ऐसे एक चाय के प्याले के लिये २५,००० रु० दे सकते हैं। इसी प्रकार एक अलकृत कुम के लिए १,१८,००० रुपये तक प्राप्त किये जा सकते हैं। १७६७ ई० मे ही दो नीलमणि, चिकनी मिट्टी के 'फो के कुत्तो' का नीलाम रायल के 'होली फैमिली' (पवित्र परिवार) की अपेक्षा तिगुने मूल्य पर हुआ था।

चित्रकला एक सुन्दर अक्षर लेखन-कला—प्रारम्भ मे चित्रकला को लेखन-कला की ही शाखा मानते थे क्योकि जिस कलम से लिखा जाता था वही चित्रकारी करने के काम भी आती थी। चित्रकला की प्रारम्भिक कृतियाँ, तूलिका और स्याही से ही की गई हैं।

रेशम पर चित्रकारी बहुधा पानी के रगों मे—पश्चिम की चित्रकारी के विपरीत, चीनी चित्रकारी विलायती टाट या किरमिच पर न की जाकर दीवारो पर और कभी-कभी कागज पर अधिकाश रेशमी वस्त्रो पर की जाती थी। यही कारण है कि ऐसी अनेक सुप्रसिद्ध रचनाएँ अधिक दिनो तक सुरक्षित नही रह सकी। चीनी चित्र-कला की विशेषता थी कि वह पानी के रग द्वारा चित्रित की जाती थी।

दीर्घपटट चित्रकारी—चीनी अपने चित्रों को सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत दीवारो पर प्रदर्शित नही करते थे। वे उन्हे लपेट कर सुरक्षित रख दिया करते थे।

कु-थे महानतम चित्रकार—कु 'क' आई-चिह अपने युग का महानतम चित्रकार, विनोदी व्यक्ति और मूर्ख था। प्राचीन चीनियो द्वारा उसके व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द अनेक कहावते सुनी गयी है। कहा जाता है कि उसे एक सुन्दर लडकी से प्रेम था। उससे ब्याह करने के लिये जव उसने अनुरोध किया तो उसने अस्वीकार कर दिया। उसका चित्र एक दीवार पर वनाया और उसके हृदय मे काँटा चुभो दिया। इस पर लडकी आखिरी साँसे भरने लगी। अब जव चित्रकार दुवारा उसके पास गया तो वह व्याह करने को राजी हो गयी। जिस क्षण उसने उसके हृदय से काँटा निकाला, वह भली चगी हो गयी। उसके द्वारा दीवारो पर विचित्र बौद्ध भिक्षु उइमाला-कीरिमी का चित्र जब सार्वजनिक रूप से दिखलाया गया तो १० लाख रुपये नकद मिले। कू ने बौद्ध चित्रो की एक लम्वी श्रृखला वनायी। उसने चित्रकला पर तीन कोष लिखे जिससे कुछ अश अभी तक आ गये हैं।

ता-आग युग मे चित्रकला चरमोत्कर्ष पर—चित्रकला ता-आग काल मे अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गयी। तुफु के अनुसार "चित्रकारी करने वालो की सख्या उतनी है जितने कि आकाश मे तारे। किन्तु इनमे कलाकार कम ही है। ता-आग काल का और शायद सुदूर पूर्व का महानतम चित्रकार था ताओरजे। यद्यपि वह एक निर्धन अनाथ था फिर भी उसका स्वभाव दिव्य था। वह सभी चित्रकारो से चित्रकारी के सभी विषयो मे आगे था। फिर चाहे वह व्यक्ति, देवता, राक्षस, बुद्ध, पक्षी, पशु, दृश्य-दशा-वलियाँ, भवन आदि क्यो ही न हो। रेशम, कागज और दीवार पर भी उसने उसी योग्यता मे चित्रकारी की। उसने बुद्ध के ३०० भक्तिचित्र बनाये जिनमे से एक मे १ हजार मे अधिक व्यक्ति हैं। यह चीन मे उतना ही प्रसिद्ध हो गया जितना कि "दि लाइट जजमेट" अथवा "दि लास्ट सफर" यूरोप मे।

चीनी चित्रकारी का मूल्याकन—चीन की चित्रकारी उतनी ही महान्, सुन्दर और सकीव है जितनी कि राफेल, लियोनार्डो अथवा माइकेल एजोलो की। इसमे रेखाओ की सुक्षमता और सुघडता वेजोड है।

शिल्पकला—प्राचीन मिस्रियो, मेसोपोटामियावासियो और भारतीयो के समान चीनियो ने शिल्पकला को ललित कला नही माना।

पशुओ के अलावा चीनियो ने भगवान् बुद्ध और बौद्ध सतो की मूर्तियाँ बनायी। सासी प्रात मे ६३९ ई० मे पायी गयी बुद्ध की प्रतिमा जो वैठने की मुद्रा मे

हैं, शिल्पकला का अद्वितीय उदाहरण हैं। ताग परिवार के शासन के उपरात शिल्पकला का रूप धर्मनिरपेक्षता और भावनाप्रधान हो गया।

भवन-निर्माण कला—शिल्पकला के ही समान भवन-निर्माण कला को भी *ललित कला मे शुमार नही किया जाता था। इसे एक सामान्य कला समझा जाता था।*

बौद्ध मदिर—जब बौद्ध ने चीनियो का हृदय जीत लिया तो उन्होंने बौद्ध मदिर बनाये। ऐसे सर्वश्रेष्ठ मदिरो मे माने हुए बुद्ध का मदिर है। फर्ग्युसन के अनुसार चीन मे भवन-निर्माण कला का यह सर्वोत्तम नमूना है।

पगोडा—पगोडा एक स्तूप था। जिसका शिखर पिरामिड के समान था। चीनियो ने अनेक पगोडो का निर्माण इस विश्वास के साथ किया कि उसे तूफान तथा बाढ नही आयेगी, भूत-प्रेत दूर रहेगे और समृद्धि आयेगी। सामान्यतया उन्हे पत्थर की नीव पर बनाया जाता था और ५ से १३ मजिलो तक के होते थे। क्योकि सम सख्या अशुभ मानी जाती थी। ग्रीष्म महल (समर पैलेस) का पगोडा सबसे सुन्दर है जबकि पेकिंग का 'जेड' पगोडा वू-ताई-शान का फलेश पगोडा भी बहुत मुख्य है।

चीन की महान् दीवार—चीन की महान् दीवार भवन-निर्माण कला को एक शाश्वत योगदान है। शिह हुआग-ती के शासन मे बनी यह दीवार १५०० मील लम्बी, २२ फीट ऊँची और २० फीट चौडी है। प्रत्येक १०० गज के बाद इसमे ४०० फीट ऊँची चौकियाँ हैं। यद्यपि यह ससार के महान् आश्चर्यों मे से एक है। चीन मे बेगार के श्रम से बनाये जाने के कारण यह कभी लोकप्रिय नही रही। प्रो० एन० आर० शर्मा के अनुसार शिह हुआग-ती ने तो विद्वानो को पकड कर इस दीवार मे चुन दिया। इसमे चुने गये ऐसे विद्वानो की सख्या ४६० है जबकि अन्य लोगो को इसके बनाने मे बेगार का श्रम करना पडा। इससे लोगो मे इस दीवार के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी। यद्यपि यह उपयोगिता की दृष्टि से बनाई गई थी। इसकी भव्यतापूर्ण सादगी एक समान सुन्दर निर्माण ध्यान आकृष्ट किये बिना नही रहता। अधिकाश चीनी भवन लकडी के बने हुए थे, चीनी भवन निर्माण कला का जो कुल प्रभाव पडता है वह है अनुरूपता, सतुलन और भव्यता का।

फ विद्या और साहित्य को चीनी योगदान

लेखन कला—चीनियो ने एक विशेष प्रकार के लेखन का विकास किया। उसमे न तो अक्षर थे न ही मुहावरे और न ही हिज्जे। उसकी वर्णमाला चित्रमय थी। उसमे सब मिलाकर ४०,००० विचार चित्र थे जिनमे से सिर्फ ६०० मूलभूत चिह्न थे जो इस भाषा के अधिकाश विचार चित्रो मे उपयोग मे आते थे। प्रत्येक शब्द या विचार के लिये एक चिह्न मात्र काम मे आता था। उदाहरण के लिये एक सीधी रेखा का

अर्थ जिसके ऊपर टेढी रेखा होता है, प्रात काल होता है। इस प्रकार चीनी लेखन-कला वडी उलझनपूर्ण थी। चीनियो ने वाँस की कलम, रेशमी कागज, वारीक कागज और एक प्रकार की रगीन स्याही का भी विकास किया। अपने चिह्न को चित्रित करने के लिए उन्होंने ऊँट के वाल के ब्रुश का उपयोग किया।

कन्फ्यूशियस का लेखन—दर्शन और साहित्य दोनो ही दृष्टियो मे कफ्यूशियस सवमे प्रतिभावान सिद्ध हुये। उनकी 'गीतो की पुस्तक' विचित्र विपयो से सम्वन्धित है जिसमे धर्म, युद्ध तथा प्रेम भी है। ली शी (सस्कारो का दस्तावेज),१ चिग (परिवर्तनो की पुस्तक) और शू चिग (इतिहास की पुस्तक) कफ्यूशियस की कुछ असाधारण रचनाएँ है।

कविता—कविता साहित्य की सवसे लोकप्रिय विधा थी। हान और टाग (परिवारो) वश के शासन काल मे कई वडे कवियो को राजाश्रय मिला। एक चीनी आलोचक के अनुसार "इस काल मे (टाग वश) मे जो भी व्यक्ति था, वह कवि था। उमने कविता के ३० वुक लिखे। डा० जे० ई० स्वेन कहते हैं, "अपने पर्यटन मेहमान" मे वे मृत योद्धाओ को पुनर्जीवित कर देते हैं और ध्वस्त महलो को भव्य प्रासाद मे परिवर्तित कर देते हैं। इस काल का एक महान् कवि था टू फू (७१२-७७०) जो ताई ली फो का व्यक्तिगत मित्र होते हुये भी कवि के रूप मे उसका नाम था। वह चीन का कीट्स माना जाता है। उसने शोकपूर्ण विपयो का विकास किया। प्रो० एम० आर० शर्मा का कहना है कि "उनका साहित्य आशीर्वाद, सरलता और शाति की छाप छोडता है।"

ज वैज्ञानिक विचार को चीनी योगदान

ज्योति विज्ञान और खगोल विज्ञान—ज्योति विज्ञान का चीनी धर्म-गुरुओ ने वडा उपयोग किया। खगोल विज्ञान मे उन्होंने आकाश मे ३२० वडे तारो की खोज की। उनका विश्वास था कि पृथ्वी लगातार घूम रही है। भारतीय २८ नक्षत्रो के समान ही चीनियो ने भी २८ हस्सू का समूह ४ शशि मडलो मे विभाजित कर रखा था। उनके पास खगोल विज्ञान सम्वन्धी दो यत्र भी थे। सूर्यग्रहण के विषय मे चीनियो को मालूम था।

भौतिक विज्ञान—भौतिकी मे चीनियो को उत्तोलक दड (लीवर) का सिद्धात मालूम था। तीसरी शताब्दी मे उन्हे विशिष्ट वजन हटाने के सिद्धात के वारे मे भी मालूम था। हाथी को एक नाव मे खडा कर नाव के डूवने के स्तर पर वे चिह्न लगा देते थे फिर हाथी को उतार कर नाव मे जाने हुए तौल रख देते थे। जिस स्तर तक नाव डूब जाती थी, वह हाथी का वजन माना जाता था।

रसायन विज्ञान—यह दो भागो मे विभाजित था—एक दीर्घायु के लिए और दूसरा धातुओ को सोना मे वदलने के लिए। इसका उद्देश्य चुने हुए योजना द्वारा

अमरत्व पाना था । उनके लिए सोना, चाँदी, जेड पत्थर, आड़ू, कछुवा आदि का उपयोग भी किसी न किसी प्रकार करने की बात थी । इन सबमे जीवन को दीर्घायु बनाने के गुण माने जाते थे । चीनी रसायनिको ने सोना बनाने का उपाय भी किया । उनका विश्वास था कि इसमे अमरत्व और दीर्घायु के तत्त्व हैं ।

भूकम्प विज्ञान—चीनियो ने इस विज्ञान का भी विकास किया हुआ था । उनके भूकम्पो की सूची ७८० ई० पू० से प्रारम्भ होकर १६४४ ई० तक जाती है । और इसमे ६०८ भूकम्पो के बारे मे पूरे तथ्य हैं । चाग हेग (७८-१३६ ई०) ने भूकम्प मौसम यत्र बनाया था ।

महत्त्वपूर्ण अनुसधान—चीनियो ने कई महत्त्वपूर्ण और उपयोगी अनुसन्धान किये, जिनमे पानी का पहिया, बारूद, नाविक यन्त्र, कोयला और गैस का उपयोग, शीशा बनाने का विज्ञान, कैलेडर, छापाखाना उल्लेखनीय है ।

गणित—प्राचीन चीनियो ने गणित मे कुछ प्रगति की थी ।

रेखागणित—रेखागणित मे वे समकोण, वृत्त-त्रिकोण और 'पायथागोरस' के सिद्धान्तो को जानते थे । उन्हे गोयन और वृत्त का ज्ञान भी था । प्रयोगसिद्ध ठोस रेखागणित के अध्ययन मे वे बहुत आगे थे । चेग-चिह चीन का सबसे महत्त्वपूर्ण रेखागणित विशेषज्ञ था । उसने वृत्त की परिधि का उसके व्यास के साथ अनुपात ३५५/३११ = ३ १४१६ निकाला था जो यूरोप मे एक सहस्र वर्ष के बाद ही पता चल पाया ।

अकगणित—चीनियो को गुणा, भाग, घटाना, वर्गमूल सभी की जानकारी थी । बाद मे उन्होंने घनमूल निकालना भी सीख लिया था । दशमलव प्रणाली का प्रचलन था । किन्तु प्राचीन चीनी बीजगणित मे अधिक नही प्रगति कर पाये ।

चिकित्सा—चाऊ वश मे औषधि सामान्य नियमो को एकत्र किया गया । उसने शरीर के प्रमुख अगो का वर्णन उनका नामकरण करके उनके कार्यों के साथ किया है । औषधि विज्ञान मे उन्हे ३६५ प्रकार की औषधियो का भी ज्ञान था ।

ह्यू तो ने शल्य क्रिया पर एक निबन्ध लिखा था । उसने एक ऐसी शराब का अन्वेषण किया था जो बेहोशी की औषधि के तौर पर काम मे लायी जाती थी, ताकि उसके प्रयोग के बाद शल्य-क्रियाएँ की जा सके ।

सेवा, उपचार और औषधियाँ—प्राचीन चीनियो को अधिकाश रोगो का ज्ञान था । उन्होंने कीटाणु से रोग फैलाने वाली औषधियो को पृथक् करके उनके लक्षणो का वर्गीकरण किया था । इसके अतिरिक्त उन्हे बच्चो और स्त्रियो के विभिन्न रोगो का भी ज्ञान था । चीनी चिकित्सक रोगो का निदान पूर्ण रूप से करते थे । चाग चुग चिग सिर्फ एक महान चिकित्सक था । वह पहला नेत्र विशेषज्ञ भी था । उसने आँख के अनेक रोगो के बारे लिखा था । उनके नुस्खो और औषधियो के बारे मे भी उसने लिखा था ।

चेचक के उपचार के लिए वे भीतरी टीके को अपनाते थे नकि बाहरी को। वह शायद उन्होने भारत से सीखा था। प्राचीन चीन मे औषधियाँ प्रचुर मात्रा मे और विविध किस्म की मिलती थी।

धर्म और दर्शन का चीनी योगदान

धार्मिक विश्वास—प्राचीन चीनी अपने पूर्वजो और प्रकृति की आत्माओ की पूजा किया करते थे। मृत व्यक्तियो की याद मे पारिवारिक भोज महान् धार्मिक समारोह माना जाता था। धर्म गुरुओ को विशेष महत्व नही दिया जाता था। उनका विश्वास था कि सभी को उसके सत्कर्मों और कुकर्मों के लिए पुरस्कार और दण्ड देने वाला एकमात्र ईश्वर था। वे वायु, वृक्ष, गर्जना, पर्वतो आदि की पूजा भी करते थे। बाद मे अधिकाश चीनी बौद्ध हो गये।

दर्शन शास्त्र—प्राचीन चीनियो को दर्शनशास्त्र के प्रति बडा प्रेम था। प्राचीन चीन मे तीन महान् दार्शनिक हुए—लाओ-त्से, कफ्यूशियस, और मेशियस। कफ्यूशियस का दर्शनशास्त्र अध्याय १२ मे दर्शाया गया है।

लाओ-त्से—वह ई० पू० ६०४ मे होनान मे उत्पन्न हुआ था। उनका चीनियो पर बडा प्रभाव था। उसके दर्शन को ताओवाद का नाम दिया गया है। इस शब्द की उत्पत्ति 'ताओ' शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है एकता और शाति विषयक कानून। उसके दर्शन की मुख्य बाते ये हैं—(१) विनम्रता उसके अनुसार सम्पूर्ण व्यक्ति का सबसे पहला गुण विनम्रता है, (२) बुद्धिमान व्यक्ति अपने लिए धन का सचय नही करता, (३) मनुष्य को सबके प्रति भलाई करनी चाहिए, चाहे वह भला हो अथवा बुरा, (४) सबको प्रकृति के अनुसार रहना चाहिए। जीवन मे सन्तुष्ट रहना चाहिए, (५) अत मे बुद्ध और चीन के वृद्ध बुद्धिमान दार्शनिक जेनो के समान ही लाओ-त्से ने भी उपदेश दिया कि इच्छा और लोभ ही ससार मे सब दुखो की खान है। अतएव दोनो का नाश कर देना जरूरी है।

लियो-टजे की ई० पू० ५१७ मे मृत्यु हो गयी। अनेक सदियो तक चीन मे ताओवाद का पालन अधिकाश चीनियो द्वारा होता रहा।

मेनशियस (ई० पू० ३७२-२८९)—प्राचीन चीन का तीसरा महान दार्शनिक था मेनशियस। वह जनतात्रिक सिद्धातो का हामी था। उसके अनुसार किसी भी राष्ट्र मे जनता ही सबसे महत्वपूर्ण है। शासक सबसे कम महत्व का है। अतएव राष्ट्र की राजनीतिक सार्वभौमिकता और कानून का असली स्रोत जनता है। अतएव सरकार का अस्तित्व लोक कल्याण के लिए होना चाहिए। अत मे जनता को दुष्ट शासक के प्रति विद्रोह करने का अधिकार है।

प्रश्नावली

१ प्राचीन चीन मे सामाजिक वर्ग कौन से थे ?

२ प्राचीन चीनियो के आर्थिक सहयोग की चर्चा कीजिए ।

३ राजनीतिक विचारधारा को चीनी योगदान का परीक्षण कीजिए ।

४ कला और साहित्य को चीनी योगदान क्या थे ?

५ शिक्षण और साहित्य को चीनी योगदान की चर्चा कीजिए ।

६ वैज्ञानिक विचारधारा को चीनी योगदान का सूक्ष्म परीक्षण कीजिए ।

७ धार्मिक और दार्शनिक विचारधारा को चीनी योगदान का सूक्ष्म परीक्षण कीजिए ।

८ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) वू-ती

(आ) वाग-माग

(इ) जियोरजे और

(ई) मेशियस ।

अध्याय ८

प्राचीन भारतीय सभ्यता

(अ) भूमिका

प्राचीन भारतीय सभ्यता का मूल रूप—प्राचीन भारतीय सभ्यता मानव इतिहास की प्रारंभिक सभ्यताओ मे से एक प्रमाणित हुई है। वह इतनी प्राचीन तो है ही जितनी कि फारस, मेसोपोटामिया और मिस्र की सभ्यताएँ हैं। उसका उद्गम हडप्पा तथा मोहनजोदडो की सभ्यताओ से माना जा सकता है जिनकी खोज क्रमश १९२१ और १९२२ मे सर जान मार्शल के निर्देश मे दयाराम साहनी और आर० डी० बनर्जी ने की थी। सिधु घाटी की मुहर पर खुदे शब्दो के अलावा इसका हमारे पास कोई लिखित दस्तावेज नही है अतएव सिधु घाटी सभ्यता का पुर्ननिर्माण पुरातत्व विभाग के प्रमाणो के आधार पर ही किया जा सकता है। इसके पश्चात् प्रारम्भ होती है ईसा से लगभग २००० पूर्व की वैदिक सभ्यता जिसकी जानकारी के प्रमुख स्रोत हैं—वैदिक साहित्य। भारतीय सस्कृति और सभ्यता के क्रमिक विकास मे एक अन्य युगातरकारी घटना है—मौर्यकाल (३२२-१८४ ई०) जिसमे चद्रगुप्त मौर्य (३२२-२९८ ई० पू०) और अशोक (२७३-२३३ ई० पू०) उत्पन्न हुए जिन्होंने भारतीय सस्कृति तथा सभ्यता के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसके पश्चात् भारत ई० पू० २०० से ३०० सदी तक अनेक वशो द्वारा शासित रहा। जिनमे शुग वश (१८४-७२ ई० पू०) कण्व वश (७२-२८ ई० पू०) सातवाहन वश (२३३ ई० पू० ३०० सदी) कलिंग के चेदि वश और अनेक अन्य विदेशी वशो यथा बैक्ट्रिया के इडो-ग्रीक वश आदि का नाम उल्लेखनीय है। भारतीय सस्कृति और सभ्यता गुप्त वश के शासन काल (३०० सदी से ६०० सदी) मे अपने चरमोत्कर्ष को पहुँच गयी।

भारत की भौगोलिक पृष्ठभूमि—अविभाजित भारत (जिसमे पाकिस्तान तथा बँगला देश का समावेश है) एक उप महाद्वीप था जिसे एक विशाल त्रिभुज माना जा सकता है जिसके दोनो ओर समुद्र हैं—दक्षिण-पूर्व मे बगाल की खाडी और दक्षिण-पश्चिम मे अरब सागर। तीसरी ओर अर्थात् उत्तर मे, उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व हिमालय से घिरे हुए हैं जो भारत के उत्तरी सीमात मे १६०० मील की लम्बाई तक चला गया है। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल मे भारत मे समुद्र से नही जाया जा सकता था। जिन रास्तो से होकर भारत मे प्रवेश किया जा सकता था वे खैबर, कुर्रम, रोची, गुमल और बोलन के दर्रे थे जिनमे से होकर सशस्त्र विजेता, अशात आदि जातियाँ और शातिपूर्ण व्यवसायी तथा व्यापारी भारत मे आये। भारत तथा केन्द्रीय एशिया को जोडने वाले थल के ये एकमात्र रास्ते थे। इस प्रकार इन प्राकृतिक

बाधाओ ने चारो ओर से भारत को एशिया महाद्वीप के अन्य भागो से पृथक् रखा। इस पृथकता के कारण भारत अपनी पृथक् सभ्यता और सस्कृति विकसित करने मे सफल हो सका। बीच मे पश्चिम से पूर्व की ओर जाते हुए विन्ध्य की पर्वतमाला भारत को उत्तरी और दक्षिणी भागो मे विभाजित करती है। परिणामस्वरूप उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के निवासियो के बीच अनेक सास्कृतिक मतभेद हैं, यद्यपि उन्हे मूलभूत नही कहा जा सकता, अन्त मे विभिन्न क्षेत्रो के अस्तित्व मे होने से जिसका मुख्य कारण पर्वत, नदियाँ, रेगिस्तान और वन थे, देश का भौगोलिक विभाजन हो गया। इस कारण से समूचे देश की राजनीतिक एकता स्थापित करने का कार्य असम्भव बन गया।

(ब) प्राचीन भारतीयो का सामाजिक जीवन

वर्ण व्यवस्था—वर्ण व्यवस्था सिंधु घाटी की सभ्यता के समय मे नही थी। यह व्यवस्था मूलत आर्य लोगो की व्यवस्था है जो वैदिक काल के आरम्भ मे विकसित हुई।

प्राचीन भारतीय समाज चार वर्णों मे विभाजित था · ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। जो धर्मगुरुओ का कार्य करते थे वे ब्राह्मण कहलाये, प्रशासनिक और सैनिक कार्य करने वाले क्षत्रिय कहलाये, कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय, उद्योग करने वाले वैश्य हुए और मजदूरी द्वारा सेवामार्ग करने वाले शूद्र वर्ण कहलाये।

तथापि परिवर्तन तब आया जब वर्ण को पेशे द्वारा नही, अपितु जन्म द्वारा निश्चित किया जाने लगा। वर्ण व्यवस्था अत्यन्त कठोरतम बन गयी। यही नही, पहले दो वर्ण ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सभी क्षेत्रो मे सुख-सुविधाओ का उपयोग करने लगे और समाज मे उनका स्थान ऊँचा हो गया। इसी प्रकार अतिम वर्ण अर्थात् शूद्र की स्थिति समाज मे बहुत नीचे स्तर तक चली गयी।

आश्रम व्यवस्था—वैदिक भविष्यदर्शियो ने मानव जीवन के सौ बरसो को जीवन के चार भागो मे बराबर-बराबर विभाजित किया जो निम्नलिखित हैं .—

(१) **ब्रह्मचर्य आश्रम**—इसका प्रारम्भ यज्ञोपवीत से होकर २५ वर्ष की आयु तक जाता था। इस अवधि मे बालक अपने गुरु तथा उसके परिवार के साथ गुरुकुल मे रहकर शिक्षा प्राप्त करता था और अपने व्यक्तित्व का पूर्ण बहुमुखी विकास करने मे लगा रहता था।

(२) **गृहस्थ आश्रम**—इसका आरम्भ २५ वर्ष की आयु मे होता था, जब गुरुकुल मे शिक्षा प्राप्ति के बाद बालक घर और गाँव लौटता था। इस आश्रम मे वह ५० वर्ष की आयु तक रहता था।

(३) वानप्रस्थ आश्रम—मनुष्य ५० वर्ष की आयु मे इस आश्रम मे प्रवेश करता था जबकि वह वन को जाकर वहाँ दर्शन का ज्ञान प्राप्त करता था और अपना अधिकाश समय ध्यान और चिंतन मे लगाता था ।

(४) सन्यास आश्रम—मानव जीवन के नाटक में यह अन्तिम आश्रम था जिसने मनुष्य सासारिक वस्तुओ का पूर्णतया त्याग करके सन्यासी वन जाता था । मोक्ष प्राप्त करने के लिये वह व्रत की समाधि लगाता था ।

इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म प्राचीन भारतीय समाज की रीढ थी ।

पारिवारिक जीवन—प्राचीन भारत का परिवार पितृसत्तात्मक था । समाज में सयुक्त परिवार का ही प्रचलन था । कई बार तो एक परिवार के सदस्यो की सख्या सैकडों मे होती थी ।

व्याह और स्त्रियो की स्थिति—व्याह एक पवित्र सम्बन्ध माना जाता था । अधिकाशत एक पत्नी प्रथा ही थी किंतु शासक वर्ग मे बहुपत्नी प्रथा भी थी । प्रत्येक परिवार अधिक से अधिक पुत्रो और कम से कम एक के लिए प्रार्थना करता था जो अन्त्येष्टि सस्कार कर सके और परिवार की ज्योति प्रज्वलित रखे । वाल-विधवा पुन विवाह कर सकती थी । विवाहित स्त्रियो को परिवार तथा समाज मे पर्याप्त स्वतत्रता प्राप्त थी । सगोत्र विवाह की प्रथा नही थी और न ही अपनी जाति के बाहर विवाह करने का रिवाज था ।

स्त्रियो को समाज मे उच्च एव सम्माननीय स्थान प्राप्त था । लडकियो को भी लडको की तरह पढाया जाता और उन्हे लडको की तरह ही शिक्षित किया जाता था । यौवनावस्था प्राप्त होने पर उनका विवाह कर दिया जाता था । उस समय सती प्रथा नही थी । स्त्रियाँ विदुषी होती थी जैसा कि लोपामुद्रा, विश्ववरा, निकता, निववारी, घोषा आदि के उदाहरणो से पता चलता है । ऋग्वेद के अनुसार निकता, निववारी मत्रो की रचना कर सकती थी तथा अपने ज्ञान के कारण वे ऋषि बन गई ।

वैदिक काल के उत्तरार्ध मे स्त्रियो की स्थिति कुछ निम्न समझी जाने लगी । इसका कारण शायद बहु-पत्नी विवाह की प्रथा थी । स्त्रियो को समुदाय या समाज के राजनैतिक जीवन मे भाग लेने की अनुमति नही थी । उन्हें पैतृक सम्पत्ति मे हिस्सा बटाने का कोई अधिकार नही था । साथ ही साथ लडकियो के विवाह की आयु घटा दी गई और उनकी शिक्षा के प्रति उपेक्षा बरती जाने लगी ।

शिक्षा—वैदिक युग मे यज्ञोपवीत के पश्चात् ब्राह्मणो, क्षत्रियो और वैश्यो के बालक अपने अभिभावको द्वारा गुरुकुलो को भेज दिये जाते थे ताकि वहाँ आध्यात्मिक धर्मनिर्पेक्ष शिक्षा ग्रहण कर सके । गुरुकुल वन मे स्थित प्राचीन आध्यात्मिक शिक्षक का निवास स्थान था । विद्यार्थी गुरु के परिवार के सदस्य के रूप में रहकर वेदो, दर्शन, नैतिकता,

गणित, धनुर्विद्या, संगीत, चिकित्सा आदि की शिक्षा लेता था। शिक्षा मौखिक रूप से दी जाया करती थी। महर्षि विश्वामित्र का गुरुकुल जिन्होंने श्रीराम के व्यक्तित्व का विकास किया, बहुत प्रसिद्ध थे। बहुत बाद में काशी, तक्षशिला, कांची और नालंदा के गुरुकुलो ने विश्वविद्यालय का रूप ले लिया। प्राचीन भारत में ये शिक्षा के मुख्य केन्द्र के रूप में विकसित हुए।

मनोविनोद और मनोरंजन—नृत्य और संगीत (स्वरसहित और वाद्य), रथ दौड़, जुआ, शिकार, मनोविनोद मनोरंजन के मुख्य साधन थे और वीणा, वंशी, ढोल, मंजीरा आदि मुख्य वाद्य थे।

इस प्रकार प्राचीन भारतीयो का सामाजिक जीवन ओजपूर्ण और सक्रिय था।

(स) प्राचीन भारतीयो का आर्थिक जीवन

कृषि और पशुपालन—संसार के अन्य नदी घाटी निवासियो के समान ही प्राचीन भारतीयो ने भी, सिंधु घाटी सभ्यता के समय से ही अपने आपको कृषि और पशुपालन में लगाया था। भूमि का सिंचन कुओं, झीलो और कृत्रिम नहरो द्वारा होता था। जौ, गेहूँ, चावल, तिलहन, अदरक, विभिन्न प्रकार की सब्जियां और फल उगाये जाते थे। गन्ना के उत्पादन द्वारा गुड़ और शक्कर बनायी जाती थी। कपास भी बोई जाती थी। बिना पशुपालन के कृषि असंभव थी। अतएव बैल, गाय, भेड़, बकरी, कुत्ता, घोड़ा जैसे पशुओ को पालतू बनाया गया था और प्राचीन समय में ये ही संपत्ति के मुख्य रूपो में थे।

उद्योग, व्यवसाय और हस्तकलाएँ—प्राचीन भारतीयों ने अनेक उद्योगो, व्यवसायो और हस्तकलाओ का विकास किया। उद्योगो में सूती वस्त्र उद्योग सिंधु घाटी सभ्यता के समय से ही पर्याप्त विकसित हो चुका था। मथुरा, काशी, बंगाल का सूती वस्त्र उद्योग अति प्रसिद्ध था और यहाँ उत्तम वस्त्रो का निर्माण होता था। यहाँ पर विभिन्न प्रकार के रेशमी और ऊनी वस्त्रो का निर्माण भी होता था। मिट्टी के बर्तन बनाने की हस्तकला सिंधु घाटी सभ्यता में उत्कृष्ट कलात्मकता को पहुँच चुकी थी।

यहाँ अनेक अन्य उद्योग और हस्तकलाएँ भी थी। चर्म उद्योग का अच्छा विकास हो चुका था। चमड़े की बनी हुई बोतलें, जूते और थैले मुख्य रूप से निर्मित किये जाते थे। धातु उद्योग का अच्छा-खासा विकास हो चुका था। सिंधु घाटी के धातु कारीगर तांबा और कांसा से विभिन्न प्रकार के औजार यंत्र आदि बनाते थे। काष्ठ उद्योग, हाथीदांत और हीरे-जवाहिरात को तराशने का काम विशेष करके मौर्य और गुप्त युगो में प्रगति पर था। वाणिज्य और व्यापार प्राचीन भारतीयो ने संभवतः सुमेरिया मिस्र और क्रीट के साथ वाणिज्य व्यापार का विकास किया हुआ था जैसा कि सिंधु घाटी और मेसोपोटामिया तथा मिस्र की पुरातत्व संबंधी खुदाइयो से पता चलता है। वैदिक युग में वाणिज्य-व्यापार का कार्य विनिमय द्वारा हुआ करता था। इस युग

के प्रारंभिक सिक्के तांबा, चाँदी और कांसा के समतल टुकड़े हुआ करते थे। ऋण देनेवालो को 'सेट्ठी' अथवा 'श्रेष्ठिन' कहकर पुकारा जाता था।

मौर्य युग (ई० पू० ३२२ से १८५ मे) और गुप्त युग (३३०-४६८ ई०) के स्वर्णिम युग मे विदेश-व्यापार जोरो पर था। सिंधु और कल्याण, मलाबार और ताम्रलीपटी भारत के सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय-केन्द्र थे। चीन, इंडोनेशिया और श्रीलंका से पूर्वी भारत को आने वाले यात्री ताम्रलीपटी बंदरगाह पर उतरते थे और वहीं से इन देशो को वापस भी जाते थे। भारतीय मसालो, लौंग, चंदन की लकड़ी, केसर, जंग न लगने वाले लोहा, हीरे-जवाहिरात और विभिन्न प्रकार के सूती वस्त्रो का कल्याण से रोम साम्राज्य आदि को निर्यात हुआ करता था। फुनान(आधुनिक कंबोडिया), श्रीलंका, फारस और एथियोपिया को बनने मे भारतीय व्यापारी, अरब, फारस और अफगानिस्तान से उतम नाल के घोडे, चीन से रेशम, इतियोपिया से हाथीदांत, मध्य पूर्व देशो से तांबा और श्रीलंका से नीलम का भारत को आयात किया करते थे।

श्रेणी—मौर्य पूर्व युग में श्रेणियाँ अस्तित्व में आयी। श्रेणी का अर्थ है ऐसी सहयोगी संस्था जो अपने सदस्यो के हितो का संयुक्त रूप से विकास करे। इस प्रकार की श्रेणियाँ तेल-उत्पादको, रेशमी जुलाहो, बैंकरो, कारीगरो आदि की हैं। प्रत्येक श्रेणी कुछ ऐसे कार्य किया करती थी जिसके लिये वह संगठित की गयी थी।

(ह) नगरपालिकाओ का संगठन और नगर आयोजन

सिंधु घाटी सभ्यता का सबसे असाधारण वैशिष्ट्य था उनका नगर आयोजन। नगर आयोजनकर्ता नगरो का उतम खाका तैयार करने मे दक्ष थे। सडके विस्तृत और लम्बी थी। वे ९ से १४ फीट चौडी थी और कई बार आधी मील तक सीधी थी और उनका कटाव दाहिनी ओर को हुआ करता था।

कुओं से जल पूर्ति—सिंधु घाटी मे नगर आयोजन एक दूसरा लक्षण था—अच्छी तरह निर्मित सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत कुओ द्वारा प्रत्येक बडी इमारत को जल की पर्याप्त पूर्ति। हाल मे खोजे गये कुछ कुएँ अच्छी हालत मे हैं।

जल निकास और मल हटाने की व्यवस्था—सिंधु घाटी के नगरो मे पायी जाने वाली जल निकास व्यवस्था नगर-आयोजको की सफलता का एक अद्वितीय उदाहरण है। ऐसी व्यवस्था किसी भी सभ्यता मे किसी भी नगर मे नही पायी गयी थी। मुख्य भागो और उपभागो के नीचे पानी की ½ फीट गहरी नाली बहती थी। इन नालियो मे बीच-बीच मे नाबदान निरीक्षण हेतु ढकने लगे हुए थे और ये ईंटो और पत्थरो से ढँकी हुई थी। प्रत्येक मकान में एक नाली होती थी जिसका निकास सडक पर की बडी नाली में होता था और मल बहकर नगर के बाहर खोदे हुए एक बडे गड्ढे मे जा गिरता था। एक गड्ढे के भर जाने पर मल दूसरे गड्ढे मे बहकर जाता

था। सभी नालियों में जाने के लिये बड़े-बड़े छेद होते थे जिनमें से होकर नाली को समय-समय पर साफ किया जाता था।

(अ) प्राचीन भारत में कला

मोहनजोदड़ो के समय से आज तक भारत सैकड़ों कलाओं में विशिष्ट प्रकार के सौंदर्य का निर्माण करता रहा है।

भवन निर्माण कला—सिंधु घाटी सभ्यता में भवन निर्माण कला—मोहन-जोदड़ो, हड़प्पा तथा सिंधु सभ्यता की भवन निर्माण कला की विशिष्टता है—कलात्मक सौंदर्य की अपेक्षा उसकी सादगी और उपयोगिता।

पुरातत्व संबंधी प्रमाणों से पता लगता है कि ईंटों के ढांचे तीन प्रकार के थे, (१) आवास घर, (२) सार्वजनिक भवन और (३) सार्वजनिक स्नानघर।

(१) आवास घर—मकानों के बारे में सबसे विस्मयजनक तथ्य ये थे कि वे ऊँचे चबूतरों पर बनाये गये थे और उनमें ऊपरी मंजिल भी थी। यह इसलिए किया गया था कि निरंतर आने वाली बाढ़ों से उनकी रक्षा की जा सके। प्रत्येक इमारत एक आँगन के चारों ओर बनायी जाती थी ताकि उसका उपयोग अन्न को सुखाने, अन्न को दबाने, कपड़ों को सुखाने, बुनाई के लिए किया जा सके। प्रत्येक मकान में एक नाली होती थी जिसका निकास सड़क पर की नाली में होता था। प्रत्येक मकान का अपना कुआँ भी होता था।

(२) सार्वजनिक भवन—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में कुछ ऐसे बड़े भवन पाये गये हैं जिनका उपयोग सार्वजनिक कार्यों के लिए होता था। मोहनजोदड़ो में ईंटों का एक ढांचा २४२ फीट लंबा, १५० फीट चौड़ा और ५ फीट गहरा है। सम्भवत यह राज्यपाल का आवास था जिसमें नगर के प्रशासनिक दफ्तर भी स्थित थे। इसी प्रकार एक विशाल भवन १६९ फीट × १३९ फीट क्षेत्रफल का था जिसके दोनों ओर एक जैसे २३ फीट चौड़े बाजू थे। यह भवन हड़प्पा में था और इसे विशाल अन्न-भंडार कहकर पुकारते थे।

(३) सार्वजनिक स्नानघर—ऐसे आवास घरों और सार्वजनिक भवनों के अतिरिक्त मोहनजोदड़ो में एक तैरने का तालाब भी खोजा गया है जिसे विशाल स्नान-घर का नाम दिया गया है। यह भवन १८० फीट लंबा और १८० फीट चौड़ा है। उसके बीच में एक तैरने का तालाब है जिसकी नाप ३९ फीट × २३ फीट और गहराई ८ फीट है। इसके चारों ओर के कक्षों, विभिन्न कमरों और बरामदों ने इसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिये थे। उस तालाब में पानी का बराबर भरा जाना, साथ ही गंदे पानी का निकाला जाना और पानी को निथारने की उत्तम व्यवस्था सिंधु घाटी सभ्यता के भवन निर्माणकर्त्ताओं की कुशलता का द्योतक है। यह उल्लेखनीय है कि

५००० वर्षों के उपरांत भी यह स्नानघर अच्छी दशा मे है। साथ ही इसके पास दक्षिण-पश्चिम कोने पर एक हमाम भी है जिसमे गर्म पानी मे नहाने की व्यवस्था है।

भारतीय भवन निर्माण कला का बौद्ध युग से आगे तीन भागो मे अध्ययन किया जा सकता है—(१) स्तूप, (२) गुहा मदिर, (३) मदिर।

(१) स्तूप—प्रारभिक दिनो मे स्तूप शवदाह का स्थान था जिसे स्थानीय लोग श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। बौद्ध लोगो ने स्तूपो का निर्माण अपने साधु-सतो के अवशेपो के स्मारको के रूप मे बनाये। सम्राट् अशोक ने भगवान् बुद्ध के सम्मान मे भारत भर मे स्तूप बनवाये। सामान्य रूप से स्तूप एक गुबज के रूप मे ईंट का बना होता था और उसके सिरे पर एक प्राकुर हुआ करता था। यह चारो ओर से नक्काशीदार पत्थरो से घिरा हुआ होता था। सभी अशोक स्तूपो मे से तीन प्रशसा योग्य हैं।
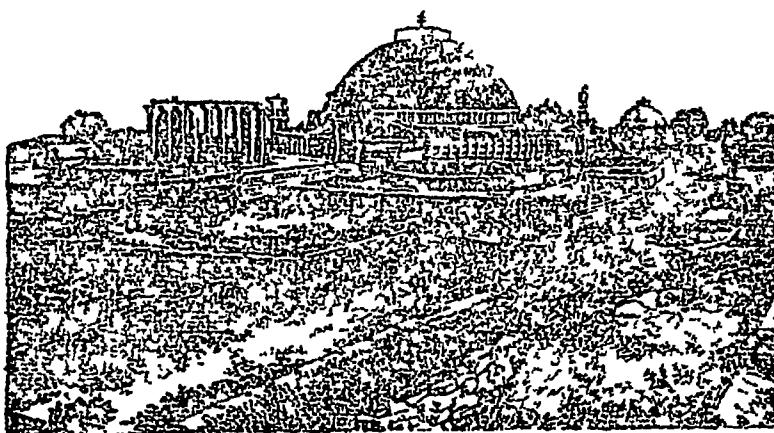
साँची का स्तूप

(१) भरहुत (मध्यप्रदेश), (२) साँची (पुराना भोपाल राज्य), (३) अमरावती (निचली कृष्णा घाटी)। भरहुत स्तूप शिल्पिक सौंदर्य और उत्तमता के लिए प्रसिद्ध है। साँची का स्तूप सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यह प्राचीन भारत की भवन निर्माण कला के उत्कृष्ट नमूनो मे है। इसका व्यास १२० फीट है। अमरावती स्तूप जो २०० ई० मे पूरा किया गया साँची से बडा है। इसका घेरा १७,००० वर्ग फीट है और उस पर बुद्ध का जीवन चरित्र बहुत बारीकी से खुदा हुआ है। गुप्त काल मे दो अत्यत असाधारण स्तूप सारनाथ और नालदा के थे।

नक्काशीपूर्ण हैं। छतो को सहारा देने वाले सभी खभो पर घोडे और हाथी खुदे हुए हैं।

त्रिमूर्ति—एलीफेन्टा गुहा

(२) अजता के गुहामदिर—कला के इतिहास मे अजता के गुहामदिर सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। ये हैदरावाद के उत्तर-पश्चिम मे है और सख्या मे २७ हैं। इनमे से कुछ चट्टान मे १०० फीट गहरी हैं। सबसे पहले की गुहा ईसा पूर्व २०० वर्ष की है। जवकि अन्य क्रिश्चियन युग की सातवी शताब्दी की हैं। इनकी सौंदर्यपूर्ण ढग से तराशी हुई मूर्तियाँ और मोहक चित्रकारी ने इन गुफाओ को भव्यता और आकर्षण प्रदान किया है। भारत के अतीत के स्मारको मे यह गर्व का स्थान रखती हैं।

(३) एलोरा का गुहामदिर—ये औरगाबाद के करीव ३० किलोमीटर दूरी पर स्थित हैं। सख्या मे ये ३४ से कम नही हैं और इनका निर्माण ईसा की पाँचवी से आँठवी शताब्दी मे हुआ। इनमे से कुछ हिन्दुओ के लिए हैं, कुछ बौद्धो और जैनियो के लिए। इनमे कैलासनाथ का मदिर अद्वितीय है। इसकी कलात्मक उत्तमता इसमे

मुद्राएँ—सिंधु घाटी से ५०० से अधिक छोटी-छोटी मुद्राये पायी गयी हैं जो पकायी हुई मिट्टी की बनी हुई है। सिंधु घाटी के बारीक अँगुलियो वाले कलाकारो द्वारा इन कलात्मक मुद्राओ मे उच्च दर्जे की कलात्मक उन्नमता खुदी हुई है। कुछ मुद्राओ पर देवी-देवताओ और पशुओ की आकृतियाँ भी खुदी हुई हैं। इन मुद्राओ की भव्यता देखते ही बनती है। ये मुद्राये या तो मुहर लगाने के काम आती थी अथवा बुरी आत्माओ को दूर करने के लिए ताबीज के तौर पर पहनी जाती थी और मुद्रा-ताबीज कही जाती थी। डाक्टर मार्शल के अनुसार व्यापार एव वाणिज्य के लिये मोहरो का भी उपयोग होता था।

मोहनजोदडो की सील

मौर्यकाल मे (ई पू० ३२४-२८७) शिल्पकला—मौर्य सम्राट् कला और भवन-निर्माण कला के प्रेमी थे। सम्राट् अशोक के काल मे यह अपने उच्चतम शिखर को पहुँच चुकी थी। इस काल मे बेजोड कला कृतियो का निर्माण हुआ।

स्तभो पर शिल्पकला—शिल्पकला के सबसे अद्वितीय नमूने इलाहाबाद और लौरिया नन्दनगढ के स्तभो पर खुदे हुए हैं। डा० एच० सी० राय चौधरी कहते हैं · सारनाथ स्तभ का शीर्ष इस क्रम मे सर्वोत्तम है। एक दूसरे की ओर पीठ किये हुए चार सिंहो की आकृतियाँ और फलका पर की छोटी आकृतियाँ कला के अत्यत विकसित रूप हैं। इनके बेजोड सौंदर्य और ओज को ससार भर के कलामर्मज्ञो ने सराहा है। अनुमान है कि शिल्पकारो ने यह कला ग्रीको से सीखी थी। अशोक-स्तभो पर चमकदार पालिश की हुई है और इनकी बनावट की बारीकी तो देखते ही बनती है। इस स्तभ के अतिरिक्त कोल्हुआ और रामपुरवा के स्तभ भी सुन्दर कलाकृतियो के लिए उल्लेखनीय हैं।
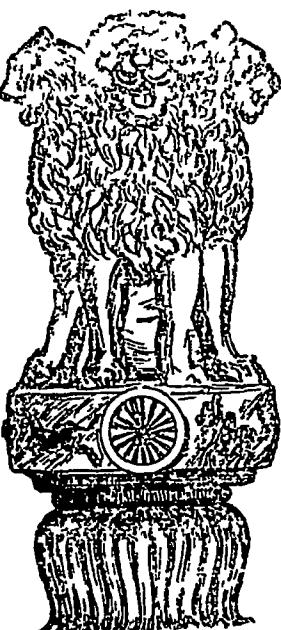
सारनाथ का अशोक-स्तभ

मौर्यकाल के उत्तरार्द्ध (ई०पू० २००-३०० सदी) मे शिल्पकला—शुगो (ई० पू० १८५-७३८) और कण्वों (ई० पू० ७३-२८) ने शिल्पकला और भवन निर्माण कला के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ किया।
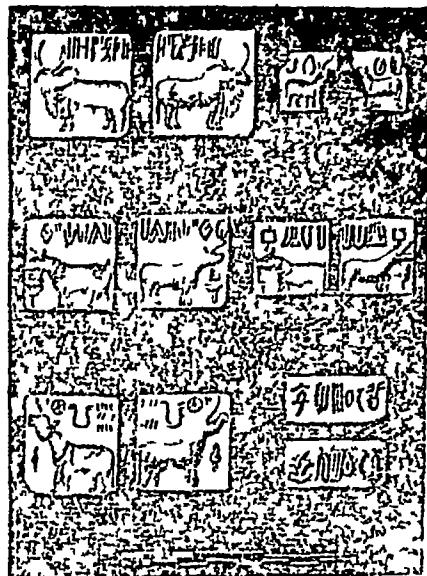
भरहुत, सांची और अमरावती के स्तूप और वृत्त—बौद्धस्तूपों और उनके चारों ओर सुन्दर वृत्तों और भव्य प्रवेश द्वारों का निर्माण कर शिल्पकारों और भवन निर्माण कर्ताओं ने अपनी उत्कृष्ट कला का नमूना प्रस्तुत किया है। शुंगों ने इन कलाकृतियों द्वारा अपने को अमर बना लिया है। गया का वृत्त सांची से कहीं अच्छा है। सांची में तो शिल्पकार कला की चरम सीमा को पहुँच गये। यहाँ पर मुख्य स्तूप के वृत्त को सजाया नहीं गया है, किंतु मुख्य द्वार अद्भुत रूप से चित्रित है। उस पर जातक घटनाओं और भगवान् बुद्ध के जीवन की घटनाओं को विभिन्न आकृतियों में खोदकर दिखलाया गया है। डाक्टर कुमार स्वामी के अनुसार अमरावती की रेल भारतीय स्थापत्य एवं वास्तुकला का अनुपम पुष्प या नमूना है।

इस युग में कला की अनेक शैलियाँ प्रकाश में आयी। इनमें सबसे महत्व की थी—भरहुत, सांची, मथुरा और गधर्व शैलियाँ।

गुप्तकाल (ई० ३०२-३२६) में शिल्पकला—गुप्त काल की शिल्पकला अपनी भव्यता, सुरक्षता और निर्लिप्तता के लिए उल्लेखनीय है। इसका एक अद्वितीय उदाहरण है बुद्ध की सजीव प्रतिमाएँ। इनमें से भी सबसे उल्लेखनीय है वह 'धर्मचक्र को परिवर्तित करते हुए' अथवा बुद्ध द्वारा अपना पहला उपदेश देते हुए। सारनाथ में बुद्ध बैठने की मुद्रा में है। मथुरा सग्रहालय में खड़े होने की मुद्रा में हैं और सुलतानगज में बुद्ध की पीतल की एक आदमकद मूर्ति है। इनके अतिरिक्त गुप्तकाल के शिल्पकारों ने हिंदू देवताओं तथा शिव, विष्णु, सूर्य को वास्तविक शैली में खोदा है। देवगढ के मंदिर में कलाकारों ने राम तथा कृष्ण की कथाओं को भी अंकित किया है। गुप्त शिल्पकला भारतीय कला के श्रेष्ठ नमूनों में से है।

द्वाररक्षक (भरहुत)

दक्खिन में शिल्पकला—दक्खिन में पाँचवीं शताब्दी के आगे से शिल्पकला की व्यक्तिगत शैलियाँ भी दिखलाई पडने लगी। इनमें सबसे महत्वपूर्ण कृति है मामलापुरम् की जो राची के पल्लव शासकों द्वारा पर्वत-मंदिर के रूप में विस्मयजनक ढग से बनवायी गयी है। एलीफेंटा की ऐसी गुफाएँ भी कला की उत्कृष्टतम नमूना हैं। शिव के तीन मुख शांति और भव्यता से पूर्ण हैं और दर्शक को धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत कर देते हैं।

धातु की शिल्पकला और उस पर खुदाई—गुप्तकाल में चित्रकारों ने बुद्ध की कांसा और पीतल की अनेक मूर्तियाँ बनायी। इनमें से सुलतानगज की बुद्ध की मूर्ति

सर्वोत्कृष्ट है । इसकी ऊँचाई ७½ फीट है और यह बरमिंघम-सग्रहालय मे रखी हुई है । यह अत्यन्त भव्य और यथार्थ शैली मे निर्मित मूर्ति है ।

चित्रकला—भारत मे चित्रकला का प्रारम्भ प्रागैतिहासिक मानव से हुआ । मिर्जापुर और सिंगनपुर की प्रागैतिहासिक गुहाओ मे पायी गयी चित्रकला मे लाल रग के पशुओ और गैंडे का शिकार इस बात के साक्षी हैं । इस काल से भित्ति चित्रकला का क्रमश विकास होता गया और अजन्ता की गुफा मे यह कला ऐसी समग्रता को पहुँच गयी जिससे ऊपर ससार का कोई भी चित्रकार बाद मे नही पहुँच पाया । फिर चाहे वह इटली के नवजागरण युग के गियोटा रहे हो अथवा लियोनार्डो डि विंसी । ये गुफाएँ ईसा की पहली से सातवी सदी तक पर्वतीय चट्टानो को तराश कर बनायी गयी थी ।

प्रत्येक दीवार भित्ति चित्रकला से सँवरी हुई है । प्रारम्भ मे ये अत्यन्त चटकीले लाल, हरे, लाल और बासती रगो मे थी, किन्तु अब तो धूप और वर्षा के कारण नष्ट हो चुकी हैं और काली रेखाएँ शेष रह गयी है । इनके बावजूद कुछ गुफाओ मे अब भी उत्कृष्ट चित्रकला के नमूने देखे जा सकते हैं जिनमे गुफा १, २, ९, १०, ११, १६ और १७ उल्लेखनीय हैं । कुछ चित्र विशुद्ध रूप से सजावटी और कुछ सिर्फ बुद्ध के जीवन की सभी महान् घटनाओ जैसे जन्म, त्याग, बुद्ध बनना, प्रथम आदेश और उनकी मृत्यु मे चित्रित हैं । इन चित्रो मे न सिर्फ धार्मिक वस्तुओ को ही लिया गया है बल्कि धर्म-निरपेक्ष विषयो यथा भूमि, पर्वत, वनस्पति, पक्षी, पशु, मानव, काल्पनिक जीव और राक्षस हैं ।

छोटी कलाएँ—सिन्धु घाटी के लोगो ने छोटी कलाओ बर्तन, हीरे-जवाहिरात, दस्तकारी, वजन और माप मे भी निपुणता दिखलाई ।

बर्तन बनाने की कला—सिन्धु घाटी सभ्यता मे बर्तन की दस्तकारी कलात्मक उच्चता को पहुँच गयी थी । घरेलू बर्तन सामान्यतया मिट्टी के बने हुए होते थे और दैनिक व्यावहारिक उपयोग के अनुसार विभिन्न आकृतियो के थे । इनमे से कुछ चिकने और छेद किये हुए थे ।

यह ठीक ही कहा गया है कि सिन्धु के चिकने बर्तन प्रारम्भिक युग के उदाहरण हैं । ये लाल, काले और हरे और कभी-कभी सफेद और पीले रगो के चित्रो से सज्जित थे । ऐसे अनेक बर्तन, खिलौने, गाडियाँ आदि पायी गयी हैं ।

हीरे-जवाहिरात की कला—सिन्धु सभ्यता मे हीरे-जवाहिरात की कला जिसमे कर्णफूल, हार, चूडियाँ, पायल आदि का बनाना शामिल था, पूर्णत्व को पहुँच चुकी थी ।

डॉ० सर जान मार्शल के अनुसार सोने के आभूषण इतनी सूक्ष्मता से बनाये गये हैं और उन पर ऐसी पालिश की गयी है कि लगता है कि वे लन्दन की बाड स्ट्रीट के बने हुए हैं, न कि ५ हजार वर्ष पूर्व के ।
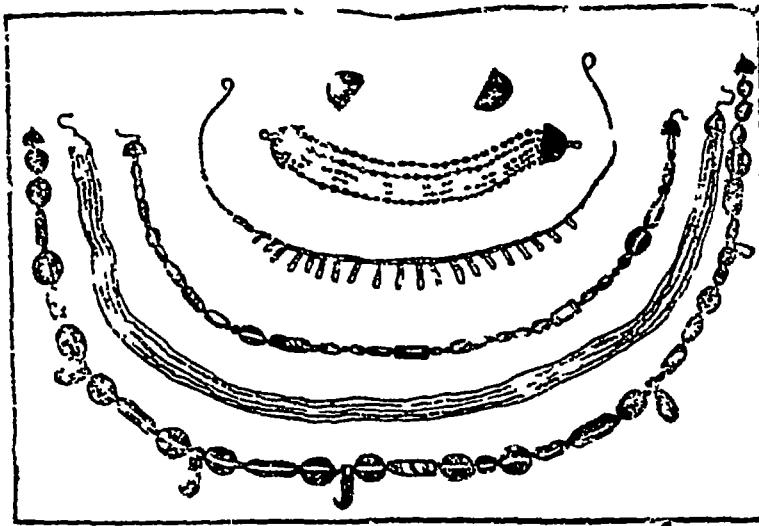
सिन्धु घाटी के गहने

प्रसाधन—सिन्धु सभ्यता के कलाकारो ने हेयर पिन, लिपस्टिक, फेसपेट, शीशों और कघियो को भी वनाया था ।

प्राचीन भारतीय सिक्के—गुप्तकाल के प्राचीन भारतीय सिक्के कला के सुन्दर नमूने थे । समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय एव कुमारगुप्त के सिक्के बहुत ही मौलिक एव सुन्दर थे । ये नये ढग के और मोहक हैं । समुद्रगुप्त (३३०-३८० ई०) के सिक्के उसके बारे मे पर्याप्त सूचना देते हैं । ये सिक्के सात प्रकार के हैं–(१) निर्धारित शैली के, (२) धनुष-वाण शैली के, (३) युद्ध की कुल्हाडी शैली के, (४) चन्द्रगुप्त शैली के, (५) कच शैली के, (६) चीता शैली के, (७) वीणावादक शैली और (८) अश्वमेध शैली के ।

अपने पिता समुद्रगुप्त के विपरीत, चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५-४१५) ने न सिर्फ चित्र शैली के सोने के सिक्के जारी किये बल्कि चाँदी और तांवे के सिक्को का प्रचलन भी किया । सोने के सिक्के अपनी मोहकता, निरालेपन, भव्यता, चमक और शाही शील और सत्ता के लिए उल्लेखनीय हैं । उसके फूलो की शैली वाले सिक्के उसके कलात्मक सौंदर्य-प्रियता के द्योतक हैं । उसके सिंह की शैली के और तलवार की शैली के सिक्के उसकी व्यक्तिगत वीरता और शौर्य के परिचायक हैं ।

संगीत कला—सगीत की कला भारत मे ऋगवेद जितनी प्राचीन है, क्योकि वैदिक गीत गाये जाने के लिए ही लिखे गये थे । भरत का नाट्य-शास्त्र तीन कलाओ नाटक, सगीत और नृत्य के सबसे पहले प्रामाणिक स्रोतो मे से है । सगीत में वह उतार-चढाव, राग-रागिणी, ताल और वाद्य-सगीतो से सम्बन्धित है ।
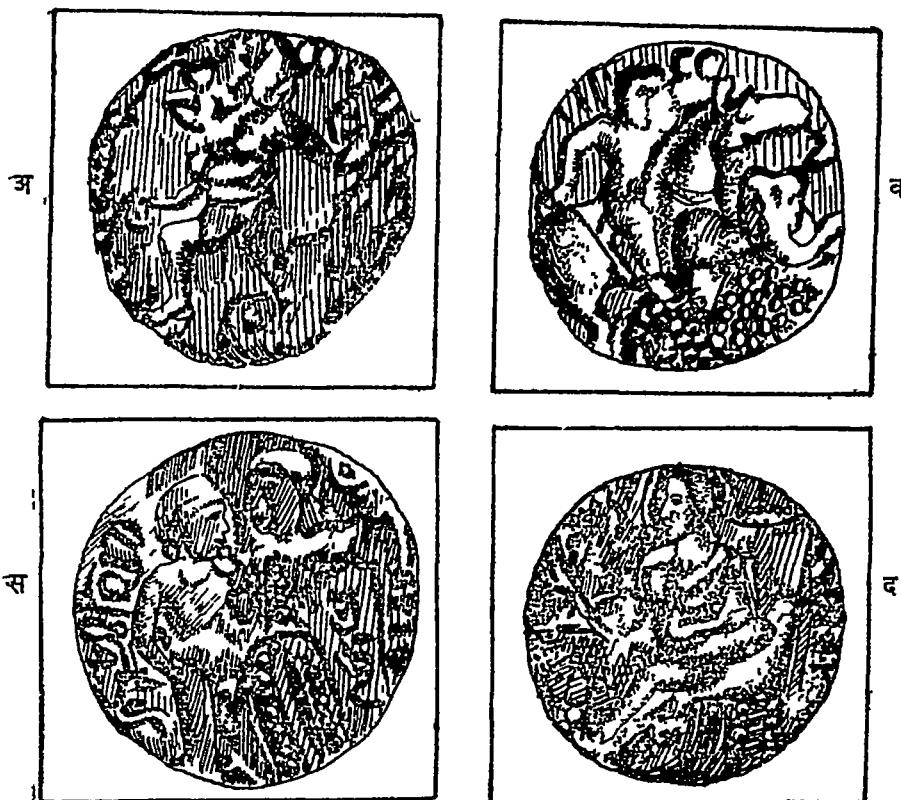
मौर्यकालीन सिक्के

(अ) चन्द्रगुप्त द्वितीय । (ब) कुमारगुप्त ।
(स) चन्द्रगुप्त प्रथम । (द) समुद्रगुप्त (वीणावादन)

मुख्य सगीत वाद्य—भारतीय सगीत वाद्यो मे विभिन्न आकार-प्रकार के ढोल, तम्बूरे, सिंगे और सभी प्रकार के तार वीणा आदि हैं ।

रागो की तान्त्रिक शक्ति—अत मे, परम्परा ने छहो रागो को तान्त्रिक शक्ति से सम्बन्धित किया है । उदाहरणार्थ, मल्हार से गायक वर्षा करवा कर और सूखे का अत कर सकता है । भैरव राग से गायक मृत्यु की ओर बढ रहे व्यक्ति को जीवन प्रदान कर सकता है । हिन्दू दार्शनिक के ही समान हिन्दू सगीतज्ञ भी सीमित से प्रारम्भ करके अपनी आत्मा का लय असीमित मे कर देता है ।

नृत्यकला—सगीत की कला के समान, नृत्य की कला का भी प्राचीन भारत मे पूर्ण विकास हो चुका था । आधुनिक युग के सर्वोत्तम भारतीय नर्तक उदयशकर, रामगोपाल और गोपीकृष्ण भी भरत नाट्य-शास्त्र के अनुसार ही नृत्य करते हैं ।

भारतीय नृत्य का सम्बन्ध पैरो और भुजाओ के हिलाने-डुलाने से ही नही, उसका सम्बन्ध समूचे शरीर से है । भरत नाट्य-शास्त्र सभी शैलियो की मुद्राओं और

भगिमाओ का विस्तार मे वर्णन करता है। वह मस्तक की तेरह, आँखो की छत्तीस, गर्दन की नौ, हाथ की सैंतीस और शरीर की दस भुजाओ का वर्णन करती है। प्रत्येक मुद्रा से किसी भाव या वस्तु विशेष का बोध होता है। डा० ए० आई० वेशम का कहना है कि इतने अधिक सम्भावित मिश्रणो से नर्तक पूरी कथा ही कह देता है जो कि परम्परा को जानने वाला दर्शक सहज ही समझ लेता है।

म प्राचीन भारत का साहित्य

प्राचीन भारतीय साहित्य उत्तम, भव्य, सुन्दर और विविध है। उसने अपनी अभिव्यक्ति अनेक रूपो मे दी है जिसमे से कुछ हैं कविता, गद्य काव्य, महाकाव्य, नाटक, कहानियाँ, परी कथाएँ और किंवदतियाँ। अधिकाश प्राचीन भारतीय साहित्य सस्कृत भाषा मे रचा गया है। प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन निम्न शीर्षको मे किया जा सकता है

१ वेदकालीन साहित्य, २ महाकाव्य का साहित्य,

३ नाटक का साहित्य, ४ राजनीतिक साहित्य और

५ गद्य साहित्य।

१ भारत का वेदकालीन साहित्य

'वेद' शब्द की उत्पत्ति सस्कृत मूल 'विद्' से हुई है जिसका अर्थ है जानना। अतएव 'वेद' का अर्थ है ज्ञान। सभी धार्मिक मामलो मे इसे उच्चतम प्रामाणिक स्रोत माना जाता है।

वेदकालीन साहित्यिक की श्रेणियाँ—वेदकालीन साहित्य को ७ भागो मे विभाजित किया जा सकता है

सहिता—सहिता मत्रो, प्रार्थनाओ, बलिदान, विधियो आदि का सग्रह है। सहिताएँ ४ हैं—

१ ऋग्वेद सहिता, २ सामवेद सहिता,

३ यजुर्वेद सहिता और ४ अथर्ववेद सहिता।

ब्राह्मण—ये गद्य पाठ्य हैं, जो बलिदान-विधि और अन्य समारोहो से सम्बन्धित हैं।

आरण्यक—ये भक्तो के लिए है। वेद की इस शाखा ने ही बुद्धि को आकर्षित किया है कि वे सत्य की प्रवृत्ति को दर्शन द्वारा खोज पाये।

उपनिषद्—उपनिषद् ही अतिम सत्य को बताते हैं जिसका ज्ञान हो जाने पर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होता है। मैक्समूलर के अनुसार उपनिषद् वेदात के दर्शन के स्रोत हैं। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा मुझे लगता है कि मनुष्य ज्ञान की खोज मे अपनी चरम सीमा को पहुँच गया है। उपनिषदो की सख्या १०८ है।

वेदाग, उपवेद और दर्शन—वेदाग, उपवेद और दर्शन वेदकालीन साहित्य के सहायक हैं ।

२ भारत के महाकाव्य

प्राचीन भारत ने दो महाकाव्यो को जन्म दिया है—रामायण और महाभारत जिनकी सारे ससार ने मुक्त कठ से प्रशसा की है ।

रामायण—असाधारण साहित्यिक कृति महाकाव्य के रूप मे रामायण जो १ हजार पृष्ठो मे है और प्रत्येक पृष्ठ पर ४८ पक्तियाँ हैं । यह महाभारत के १,४ से अधिक बडा है । इसकी रचना ई० पू० ३०० से २०० ई० तक अनेक गायको द्वारा की गयी लगती है । परम्परा के अनुसार यह एक वाल्मीकि नामक सत की रचना है । आर्थर लिलिस के अनुसार जहाँ महाभारत मे इलियड के समान देव और मनुष्यो के बीच का युद्ध वर्णन है जिसमे एक सुन्दरी एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र मे चली जाती है, वहाँ रामायण 'ओडिसी' के समान है जिसमे एक नायक के कष्टो और दर-दर भटकने की और उसकी पत्नी की कथा है, जो उनसे पुर्नमिलन के लिए तडपती रहती है ।

महाभारत—विटरनित्स के अनुसार महाभारत सिर्फ एक काव्य रचना नही है । एक समूचा साहित्य ही है । एशिया द्वारा कल्पना जगत् की यह महानतम रचना है । सर चार्ल्स हलियर इसे इलियड से भी श्रेष्ठ महाकाव्य मानते हैं । परम्परानुसार इसके रचयिता मुनि व्यास माने जाते है । 'व्यास' का अर्थ है क्रम से लगाने वाले । डॉ० विल डुराट कहते हैं—एक सौ कवियो ने इसे लिखा, एक हजार ने इसे स्वर रचना दी, जब तक कि गुप्त शासको (४०० ई०) के अन्तर्गत ब्राह्मणो ने इसमे अपनी स्वय के धार्मिक और नैतिक विचारो का जो मूलत क्षत्रिय प्रभावित थे, समावेश नही कर लिया । आज के महाभारत को पूर्ण बनाने मे सात से आठ सौ वर्ष (ई० पू० ४०० से ८०० ई०) लग गये ।

३ भारत का नाटक साहित्य

सस्कृत नाटक जो हमे उत्तराधिकार मे मिले है, अनेक और विभिन्न है । ये एकाकी से प्रारम्भ होकर १० अको तक हैं । सामान्यतया इनका अभिनय स्त्री और पुरुष दोनो करते थे । ई० पू० ४ मे भास ने अनेक नाटक लिखे जिनमे से (१) उरुभग, (२) प्रतिमलक, (३) प्रतिज्ञायौगन्धरायण और (४) स्वप्नवासवदत्ता वहुत प्रसिद्ध हैं । विशाखदत्त ने सस्कृत नाटक देवी चन्द्रगुप्तम् लिखा । हर्ष ने तीन लोकप्रिय नाटक लिखे । (१) प्रियदर्शिका', (२) रत्नावली और (३) नागानद ।

भारत मे अनेक अन्य नाटककार थे यथा बाण, महेद्र, वर्मन, राजशेखर, भवभूति और शूद्रक । जिस प्रकार अग्रेजी भाषा मे शेक्सपियर श्रेष्ठतम नाटककार और

उपन्यासकार था उसी प्रकार सस्कृत साहित्य मे कालिदास श्रेष्ठतम कवि और नाटककार था। कालिदास के तीन नाटक आज भी प्रसिद्ध हैं :

(१) मालविकाग्निमित्र जिसमे राजमहल के षड्यत्रो का वर्णन है। (२) उर्वशी पर वीरता द्वारा विजय और (३) शकुन्तला की पहचान, जिसमे से अतिम कालिदास की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है। प्रो० ए० एल० वेशम के अनुसार कवि और नाटककार के रूप मे कालिदास ससार के महानतम् व्यक्तियो मे से थे।

४. भारत का काव्य साहित्य

वेद और महाकाव्य—सस्कृत कविता का उद्गम वेद की ऋचाओ और महाकाव्यो के गेय भागो मे है तथापि हम सस्कृत कविता का सौदर्य किसी भी भाषातर मे नही पा सकते।

ईसा की पहली सदी मे अश्वघोष कनिष्क के दरबार का सबसे श्रेष्ठ बौद्ध कवि था। उसकी 'बुद्ध चरित्र' और 'सौंदर्य नदा' श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं।

भर्तृहरि प्राचीन भारत के अत्यन्त प्रतिष्ठित कवियो मे से हैं। उन्होंने शतको की रचना की जिनमे से प्रत्येक १०० पदो के हैं। ये हैं (१) शृगार, (२) वैराग्य और (३) नीति।

भारतीय और यूरोपीय दोनो ही आलोचको का कहना है कि कालिदास सस्कृत के महानतम् कवि थे। ये सभवत. सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त प्रथम (३७५-४५५) के काल मे थे। कालिदास नाटककार के रूप मे तो महान है ही, कवि के रूप मे महानतम् हैं। उनकी रचनाएँ हैं :

(१) कुमार सभव, (२) रघुवश, (३) ऋतुसहार, (४) मेघदूत। ऐश्वर्य और शालीनता मे वे गोथे का स्मरण कराते है और उनसे आध्यात्मिक रूप से जुडे हुए लगते हैं। कालिदास मे भारतीय काव्य अपनी परिपक्वता पर पहुँच चुका था।

५ भारत का गद्य काल

अधिकाश प्राचीन भारतीय साहित्य कविता के रूप मे ही था। यहाँ तक कि चिकित्सा और कानून जैसे विषय भी कविता मे लिखे गये थे। व्याकरण और शब्दकोष भी कविता मे है तथापि प्राचीन भारत मे अनेक गद्य कृतियाँ लिखी गयी।

दण्डी ने दस राजकुमारो की कथाएँ, सुबन्धु ने 'वासवदत्ता' और बाण ने 'हर्षचरित्र' और 'कादम्बरी' जैसी रचनाएँ दी। गद्य के रूप मे सबसे बेजोड रचनाएँ हैं—जातक और पचतत्र।

६ बौद्ध साहित्य

बौद्ध साहित्य पाली, मागधी और सस्कृत मे हैं। महायान बौद्ध साहित्य केवल सस्कृत मे हैं।

बौद्ध धार्मिक साहित्य—पाली मे बौद्ध धार्मिक साहित्य तीन भागो मे हैं—

(१) विनयपिटक

(२) सुत्तपिटक और

(३) अभिधम्मपिटक ।

बौद्ध प्रार्थना रहित साहित्य—बौद्ध भिक्षुओ ने अनेक प्रार्थना रहित रचनाएँ भी लिखी जो थो हैं ·

(१) नैतिकपर्ण (२) पेटकोपदेश

(३) मिलिंद पन्हृ और (४) बुद्धघोप की टीका ।

महायान प्रार्थना साहित्य—यह सस्कृत मे लिखा गया था जिसमे हैं—

(१) वायपुल्यसूत्र जिसे सस्कृत के पडित अनेक बौद्ध ने लिखा है ।

(२) महाकाव्य साहित्य जिसकी रचना बौद्ध धर्मावलम्बी सस्कृत के पडितो ने की है ।

७ जैन साहित्य

जैनियो ने अर्द्धमागधी और सस्कृत मे अनेक सुन्दर रचनाएँ की जो हैं—श्वेतावर जैन पाठ्य जिसके रचयिता हैं—मथुरा के स्थादिल और वल्लभी के नागार्जुन । दोनो ही अर्द्धमागधी मे हैं । (२) सिद्धसेन जैसे पडितो द्वारा रचित नियुक्तियाँ और भाष्य तथा (३) सस्कृत मे रचा गया जैन साहित्य । अत मे जैन भिक्षुओ, सामन्त भद्र और मानतुग ने सस्कृत मे दिगम्बर जैनवाद की रचना की ।

८ प्राचीन भारत मे धर्म विरहित साहित्य

भारत माँ ने और विभिन्न धर्मविरहित साहित्य का निर्माण किया है । असख्य राजसत्ताओ ने महान् पडितो को पूरा सरक्षण प्रदान किया । कौटिल्य का अर्थशास्त्र राजनीति और अर्थशास्त्र से सम्बन्धित उत्कृष्ट रचना है । पाणिनि मानव इतिहास मे प्रथम महान् व्याकरणकर्ता माने जाते हैं । व्याकरण पर उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति थी अष्टाध्यायी जो ई० पू० ४ सदी के पास लिखी गयी थी । पतजलि ने पाणिनि के इस व्याकरण पर 'महाभाष्य' नामक एक वृहद् टीका ई० पू० दूसरी सदी के अत मे लिखी ।

९. प्राचीन भारत मे वैज्ञानिक साहित्य

प्राचीन भारत मे विज्ञान की सभी शाखाओ पर श्रेष्ठ साहित्य लिखा गया । बाराहमिहिर की कृतियाँ थी—(१) वृहत सहिता—जो ज्योतिष विद्या से सम्बन्धित थी । (२) होराशास्त्र—जो जन्म कुडली से सम्बन्धित थी और (३) पच सिद्धात का जो खगोल शास्त्र की पाँच प्रणालियो पर एक निबन्ध था । आर्यभट्ट ने ४९९ ई० मे गणित पर एक अत्यन्त असाधारण कृति 'आर्यमतृतीय' लिखी । अत में ५वी शताब्दी

में वाराणसी विश्वविद्यालय मे चिकित्सा शास्त्र के आचार्य सुश्रुत ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सुश्रुत सहिता लिखी ।

१० प्राचीन भारत मे सगम साहित्य

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी मे दक्षिण भारत मे श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण किया गया जिसे सगम अथवा तमिल भाषा के नाम से जाना गया । यह तमिल भापा मे है । तमिल लेखको ने तीन महाकाव्य लिखे थे जो थे (१) इलागो आदिगल रचित 'खिलप्पडी कर्म', (२) सित्तालाई सत्तानार द्वारा लिखित 'मणि मेखलाई' और (३) तिरुपकथा द्वारा लिखित जीवकिंचितमणि । कचन की रामायण भी एक उत्कृष्ट कृति है । इस भाषा मे श्रेष्ठ भजन भी लिखे गये ।

तमिल भापा एक ओजपूर्ण और कलात्मक भाषा है । इसमे विचारो की कोमलता, सवेदनशीलता और काव्यात्मकता तथा नाटकीयता की प्रतिभा देखते ही बनती है ।

प्राचीन भारतीय कला और साहित्य मारत मानव को प्राचीन भारत की सास्कृतिक देन है ।

स प्राचीन भारत का राजनीतिक योगदान

राजनीतिक जीवन के क्षेत्र मे भारत माता ने स्मरणीय योगदान किया है । सिन्धु घाटी के निवासियो के राजनीतिक जीवन के बारे मे अभी तक कुछ ज्ञात नही है । वेदकालीन युग मे कुछ ठोस राजनीतिक सस्थाओ की स्थापना हुई जो यो है

राजसत्ता एक ट्रस्ट के रूप मे—वेदकालीन युग मे राजसत्ता की प्रणाली का प्रचलन था तथापि राजसत्ता को एक ट्रस्ट माना जाता था और राजा को एक ट्रस्टी जिससे आशा की जाती थी कि वह प्रजा पर धर्म के अनुसार शासन करेगा । यदि उसने वैसा नही किया तो वह पदच्युत करके निष्कासित कर दिया जाता था ।

प्रशासन के पहिए—राजा की सहायता उसके कुछ अधिकारी किया करते थे जिनमे प्रमुख थे पुरोहित और सेनानी । पुरोहित राजा का शिक्षक और मार्गदर्शक होता था । सेनानी सेना का अधिपति था । इनके अलावा अन्य प्रशासनिक अधिकारी थे—१ भागदुघा, २ सुता, ३ समगृहिणी आदि ।

सभा और समिति—सभा और समिति का उल्लेख वेदकालीन साहित्य मे मिलता है । किन्तु इनके कार्यों के परस्पर सम्बन्ध, शासक से सम्बन्ध आदि के बारे में कुछ नही ज्ञात है तथापि सभावना यह है कि सभा ब्राह्मणो और सामन्तो का समुदाय था जबकि समिति पूरे समाज का ही प्रतिनिधित्व करती थी । डॉ० वी० एम० आप्टे के अनुसार जो कुछ कहा जा सकता है, वह यह कि सभी प्रकार की नीतियो पर चर्चा तथा निर्णय और कानून बनाना समिति का मुख्य काम था । जबकि न्याय कार्य

मुख्यतया सभा के अन्तर्गत था। यद्यपि उसे राजनीतिक विपयो पर विचार करने का अधिकार प्राप्त था।

न्याय का प्रशासन—न्याय के शिखर पर राजा था। वह दीवानी और फाजदारी, दोनो के मुकदमे देखता था। इस कार्य मे उसकी सहायता करने के लिए सहायक नियुक्त थे। मृतक के सगे सम्बन्धियो को हर्जाना देने की प्रणाली थी। यह हर्जाना वस्तुओ मे दिया जाता था। उदाहरणार्थ १०० गाये। अपराधी के लिए गर्म कुल्हाडी, आग और पानी का प्रयोग किया जाता था।

कर और भेंट—शासक को लोगो से कर मिलता था। ऋग्वेद मे 'वलिवृत' का उल्लेख है जिसका अर्थ है शासक को आदिवासियो और सामन्तो द्वारा भेट का दिया जाना।

चन्द्रगुप्त मौर्य—चन्द्रगुप्त मौर्य पहला भारतीय शासक था जिसने उत्तर तथा दक्षिण के अधिकाश भागो का एकीकरण किया। उसने ईसा पूर्व ३०५ मे सेल्यूकस निकेटर को पराजित करके उससे हेरत, कान्धार, काबुल और मकरान को छोड देने को विवश किया।

मौर्य प्रशासन—चन्द्रगुप्त ने उस काल मे अपनी सत्ता को ससार भर मे सर्वाधिक शक्तिशाली वनाया। प्रो० एम० ए० स्मिथ के अनुसार मुगलो मे महानतम अकवर भी उतना शक्तिशाली नही था। उस समय का कोई भी ग्रीक नगर किसी भारतीय नगर से अधिक अच्छा सगठित नही था। उसकी प्रशासनिक प्रणाली का निर्माता था कौटिल्य चाणक्य, जिसने 'अर्थशास्त्र' लिखा जिसने उसे अमर बना दिया।

चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रशासन का निम्नलिखित शीर्षको मे अध्ययन किया जा सकता है:

१ केन्द्रीय नागरिक प्रशासन, २ प्रान्तीय नागरिक प्रशासन, ३ जिला नागरिक प्रशासन, ४ नगर प्रशासन, ५ ग्राम प्रशासन, ६ पाटलिपुत्र का नगरपालिका प्रशासन, ७ न्यायिक प्रशासन, ८ गुप्तचर प्रणाली, ९ सैनिक प्रशासन, १० सार्वजनिक हित की सेवाएँ और कर, ११ विदेश नीति के सिद्धान्त।

केन्द्रीय नागरिक प्रशासन—साम्राज्य के केन्द्रीय भाग का नागरिक प्रशासन सीधे सम्राट् द्वारा परामर्शदाताओ के परामर्श से चलाया जाता था जो कि मन्त्रिपरिषद् के नाम से जानी जाती थी। ये मन्त्री सम्राट् द्वारा नियुक्त होते थे और सीधे उसके प्रति उत्तरदायी होते थे। मन्त्री विभिन्न विभागो के प्रमुखो का जो महामात्य थे, मार्ग-दर्शन करते थे। वे अमात्यों को आज्ञा देते थे जो प्रशासन के अधिकारी थे। अमात्य किसी विभाग के नियुक्त अधिकारियो को आज्ञा देते थे।

प्रान्तीय नागरिक प्रशासन—सुविधाजनक, सरल और सुचारु नागरिक प्रशासन के लिए चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य को प्रान्तो में बाँट रखा था। इन प्रान्तो का

प्रशासन उपराजा के हाथ मे था जो सम्राट् के प्रति उत्तरदायी थे । उपरोक्त अधिकांशत. राज्य परिवार के सदस्य हुआ करते थे । उपराजा हमेशा अगपाल और दुर्गपाल जैसे वरिष्ठ अधिकारियो की नियुक्ति करते थे जो प्रान्तो के किलो और सेना की देखभाल करते थे । अत मे इनके अन्तर्गत भी ऐसे अधिकारी काम करते थे जो उनके आदेशो का पालन करवाते थे ।

राज्य नागरिक प्रशासन—प्रत्येक प्रान्त जिलो मे विभाजित था जिसे प्रदेश कहते थे । जिले का प्रशासन निम्न दो अधिकारियो द्वारा पूरा किया जाता था

राजुक—राजुको की नियुक्ति उपराजा द्वारा की जाती थी । ये भूमि निरीक्षण और कृषि का कार्य देखते थे ।

प्रादेशिक—इनकी नियुक्ति भी उपराजा द्वारा होती थी । जिला राजस्व इनके सुपुर्द था । जिला के कानून, व्यवस्था और शाति के लिये ये उत्तरदायी थे ।

नगर प्रशासन—प्रत्येक जिला अनेक नगरो मे विभाजित था । प्रत्येक नगर का प्रशासन नागरिक द्वारा किया जाता था जिसकी सहायता के लिये अनेक कनिष्ठ अधिकारी नियुक्त थे ।

ग्राम प्रशासन—ग्राम प्रशासन के विषय मे प्रजातान्त्रिक तत्व मौजूद था । ग्राम प्रशासन का प्रमुख ग्रामक होता था जो ग्राम-सम्प्रदाय द्वारा निर्वाचित किया जाता था । ग्रामिक के ऊपर भी एक अधिकारी 'गोप' होता था जिसके अन्तर्गत पाँच-दस गाँव आते थे ।

इस प्रकार मौर्यकाल में प्रशासन का विकेन्द्रीयकरण किया गया था तथापि सम्राट् के अनेक कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व थे । यही नही, उसके अन्तर्गत अनेक राज्य तथा गणराज्य थे जो आतरिक प्रशासन मे प्रभुसत्ता रखते हुए मौर्य सम्राट् को अपना भी सम्राट् मानते थे ।

पाटलिपुत्र की नगरपालिका प्रशासन—पाटलिपुत्र नगरपालिका का प्रशासन ३० व्यक्तियो के एक आयोग के सुपुर्द था जिसकी छ समितियाँ थी । प्रत्येक समिति एक विभाग का काम देखती थी । प्रत्येक समिति का एक प्रमुख होता था । प्रत्येक समिति के जिम्मे एक विभाग था । हवेली के अनुसार ई० पू० ४वी शताब्दी का पाटलिपुत्र अत्यन्त सगठित नगर था जिसका प्रशासन समाज विज्ञान के सिद्धातो के अनुसार किया जाता था ।

न्यायिक प्रशासन—सम्राट् न्याय का स्रोत था । उसका दरबार न्याय पाने के लिये सर्वोच्च न्यायालय था । न्यायालय दो प्रकार के होते थे · धर्मस्थीय दीवानी अदालत और कटकशोधन न्यायालय (फौजदारी) अदालत । धर्मस्थीय न्यायालय सिर्फ उत्तराधिकार, ऋण, श्रम, ठेकेदारी आदि से सम्बन्धित मामलो को देखते थे । कटक-

शोधन न्यायालय चोरी, हत्या, सेध और राजनीतिक अपराधो को देखता था। सजा अत्यन्त कठोर दी जाती थी। यातना देना, व कोडे मारना, अग काट देना, वेगारी कर-वाना सजा के कुछ तरीके थे। इसके अतिरिक्त प्रातो मे जिलो और गाँवो मे लोगो के लिए कई छोटे-छोटे न्यायालय भी थे। गाँव मे कानून का प्रशासन ग्राम प्रमुख अथवा पचायत प्रमुख द्वारा होता था।

गुप्तचर प्रणाली—मौर्य प्रशासन की सबसे असाधारण प्रणाली थी उसकी विक-सित गुप्तचर प्रणाली। मेगस्थनीज ने गुप्तचरो को "निरीक्षक" के तौर पर वर्णन किया है। चाणक्य के उत्साहपूर्ण नेतृत्व मे चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने साम्राज्य की चारो दिशाओं मे गुप्तचरो का जाल बिछा दिया था। गुप्तचरो की नियुक्ति सम्राट् के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण अधिकारी भी करते थे।

गुप्तचरो के कार्य अनेक थे—उनसे आशा की जाती थी कि वे सम्राट् की सुरक्षा की निगरानी करेंगे, सभी महत्वपूर्ण अधिकारियो की गतिविधियो पर दृष्टि रखेंगे, सम्राट् के विरुद्ध षड्यन्त्र का पता लगायेंगे। सरकारी अधिकारियो की स्वामि-भक्ति की परीक्षा लेते रहेगे और देश की आतरिक स्थिति के अतिरिक्त शत्रु-देश के बारे मे भी सम्राट् को सूचना देते रहेंगे। ये गुप्तचर फौजदारी के मामलो मे न्यायाधीश को उचित सूचनाएँ भी मालूम करके बताया करते थे। यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि गुप्तचरो पर भी दृष्टि रखने के लिये गुप्तचर नियुक्त किये जाते थे। इससे गुप्तचर प्रणाली मे दक्षता बनी रहती थी और उसके द्वारा दी गयी सूचना विश्वसनीय होती थी।

सैनिक प्रशासन—मौर्य प्रशासन के मूल मे उसकी सैनिक शक्ति थी जिसके बिना वह अस्तित्व मे नही आ सकती थी। अतएव चाणक्य के मार्गदर्शन मे चद्रगुप्त ने सैनिक सगठन के विकास और सुधार पर हमेशा ध्यान रखा। मेगस्थनीज के अनुसार मौर्य सेना मे ६,००,००० पैदल सैनिक, ३०,००,००० घुडसवार सैनिक, ९००० हाथी और ८,००० रथ थे। उनके अस्त्रो मे थी तलवारे, भाले, धनुप-बाण और हाथी।

सेना को युद्ध विभाग के अन्तर्गत रखा जाता था जिसमे ३० सदस्य होते थे। वे ४ सदस्यो के एक अलग बोर्ड मे विभाजित होते थे। इन बोर्डों को उचित प्रशिक्षण, अनुशासन, सेना की कवायद, पूर्ति और सेना की चिकित्सा का काम देखना होता था। सेना को अच्छा वेतन मिलता था और वह शस्त्रो से भलीभाँति लैस रहती थी। इससे सैन्य क्षेत्र मे चद्रगुप्त की प्रतिभा का ज्ञान होता है।

सार्वजनिक सेवाएँ और कर—मौर्य सरकार ने अनेक सार्वजनिक सेवाओ जैसे अस्पतालो का सचालन, निर्धनो को मुफ्त भोजन, औद्योगिक सस्थाएँ, सिंचाई कार्य, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सडक निर्माण, पुल और बाँध, वृक्षारोपण आदि का सचालन अपने हाथ मे ले रखा था।

राजस्व से स्रोत—इतने बडे प्रशासन को दक्षतापूर्वक और पूरे उत्साह से चलाने के लिये काफी आय की आवश्यकता थी। इस कारण लोगो पर विभिन्न प्रकार के कर लगाये गये थे। अनेक भूमि-कर लगाये गये थे (१) सीता—राज्य भूमि का उत्पादन, (२) भाग—सभी किसानो द्वारा उत्पादन का $\frac{1}{6}$ भाग देना, सभी व्यवसायो और उद्योगो पर भी कर लगाये गये थे। तस्करी की भी व्यवस्था थी। लगान का सिद्धान्त कौटिल्य द्वारा वर्णित 'अर्थशास्त्र' के सिद्धान्तो के अनुसार था। किसी पर भी उसकी सामर्थ्य से अधिक कर नही लगाया गया था और न ही कर उगाहने वाले करदाताओ को परेशान कर सकते थे।

विदेश नीति के सिद्धान्त—कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' मे विदेश नीति के कुछ सिद्धान्त बनाये हैं जिनका पालन शासको द्वारा अनादि काल से चला आ रहा है। उसके अनुसार विदेश नीति का एकमात्र लक्ष्य राष्ट्र की सुरक्षा तथा उसकी शक्ति मे वृद्धि होना चाहिये। इसे प्राप्त करने के लिये उसने चार साधन बतलाये :

(१) **साम**—किसी विशिष्ट नीति के पालन के लिये अन्य देशो से सन्धि।

(२) **दाम**—अपना कार्य निकालने के लिये भेट, उपहार और रिश्वत तक देना।

(३) **भेद**—मित्र राष्ट्रो मे फूट के बीज बोना ताकि वे आपस मे ही शत्रु बन जाये। राष्ट्र की सेना द्वारा विद्रोह हो जाये और लोग विद्रोह मे उठ खडे हो।

(४) **दड**—प्रथम तीन साधनो के विफल हो जाने पर राष्ट्र को शत्रु राष्ट्र के प्रति युद्ध घोषित करना।

चाणक्य का यह भी कहना है कि पडोसी राज्य (मान लीजिये 'अ') को हमेशा 'शत्रु देश' समझना चाहिए और उसके पडोसी राज्य (मान लीजिये 'ब') को 'मित्र देश' समझना चाहिये जिससे सन्धि करके रहना हितकर हो। सक्षेप मे पुरातन मे मौर्य प्रशासन सबसे अधिक सङ्गठित था। विसेंट स्मिथ के अनुसार जैसा कि बतलाया गया है उसकी व्यवस्था की पूर्णता उसके बाह्य रूप मे आश्चर्यजनक है। विभागीय निरीक्षण से यह देखकर महान् आश्चर्य होता है कि ई० पू० ३०० सदी के भारत मे इस प्रकार का सङ्गठन आयोजित किया गया था और सुचारु रूप से कार्य कर रहा था। इस प्रणाली का एकमात्र दोष था अधिनायकवाद और यही कारण था कि सेना और गुप्तचरो पर इतना निर्भर रहना पडता था।

१ प्राचीन भारत द्वारा विज्ञान, गणित तथा चिकित्सा को योगदान

प्राचीन भारत ने विज्ञान की सभी शाखाओ जिसमे गणित तथा चिकित्सा भी है, महत्वपूर्ण योगदान किया था।

जीव शास्त्र और शरीर शास्त्र—जीव शास्त्र और शरीर शास्त्र का प्रारम्भ वेदकाल मे तब हो चुका था जब पशुओ की बलि दी जाती थी। मृत पशुओ के विभिन्न

अगो को अलग करके उनका पूरी तरह निरीक्षण किया जाता था । अथर्ववेद और शतपथ मे मानव शरीर मे मौजूद हड्डियो की ठीक-ठीक सख्या दी गयी है । नर-ककाल का विस्तृत वर्णन किया गया है । प्राचीन भारतवासियो को वायु पर आधारित उस शरीर तत्व का ज्ञान था जो शरीर की क्रियाओ का सचालन करता था । अधिकाश प्राचीन लोगो के समान वे भी विश्वास करते थे कि हृदय बुद्धि का केन्द्र है तथापि वे रीढ की हड्डी के महत्व को जानते थे और नाडी प्रणाली का भी उन्हे ज्ञान था । उनका उन्हे पूर्ण ज्ञान था, ऐसा नही कहा जा सकता ।

रसायन—रसायन चिकित्सा शास्त्र के अन्तर्गत था । रसायन शास्त्रियो ने जीवन भर ऐसे रसायनो के लिये कार्य किया जो आयु को दीर्घ कर सके, विष बना सके। विषनाशक औषधि बना सके । इन रसायन शास्त्रियो ने सीधी-सादी पद्धति से क्षार, तेजाब आदि बनाया । नालदा विश्वविद्यालय के नागार्जुन की ख्याति अरेबिया से इडो-चीन तक पहुँच गयी । सत्त निकालने की क्रिया का अन्वेषण उन्होंने ही किया और एक कीटाणुनाशक क्षार भी बनाया । कुछ रोगो की चिकित्सा के लिये उन्होंने पारा के मिश्रण का एक नुस्खा लिया । किन्तु बाद मे चीन और मुस्लिम जगत् के रासायनिको की तरह भारतीय रासायनिक भी पारा का अध्ययन करने मे तल्लीन हो गये ताकि वे जीवन की सजीवनी की खोज कर सक ।

औद्योगिक रसायन—प्राचीन भारत मे औद्योगिक रसायन के विज्ञान की बडी अच्छी प्रगति हुई थी । रग बनाने, चर्म उद्योग, साबुन उद्योग, सीमेट और काँच के बर्तन जगत्-प्रसिद्ध थे । डा० विल डुराट लिखते हैं—रोम जैसा राज्य भी रगो, चमडे की वस्तुओ, साबुन, कांच और सीमेट के लिये भारत की ओर निहारता था और उसे इन उद्योगो मे अत्यन्त दक्ष मानता था । ६ठी शताब्दी तक हिन्दू लोग रासायनिक उद्योगो मे यूरोप से बहुत आगे थे ।

धातु विज्ञान—धातु विज्ञान मे प्राचीन भारतीय दक्ष थे, यह सुलतानगज की ताँबे की एक टन की बर्मिङ्घम म्यूजियम मे सुरक्षित रखी हुई बौद्ध मूर्ति से प्रभावित हो जाता है । इस स्तम्भ और दिल्ली के लौह स्तम्भ से इसकी लम्बाई २३ फीट ८ इच है और वजन ६ टन है । पिछले १५०० वर्षों से यह धूप तथा वर्षा मे यो ही खडा है । ससार मे ऐसी कम प्रयोगशालाएँ हैं, जो ऐसा लोहा बना सके और ऐसे कम कारखाने हैं जिनमे धातु की इतनी विशाल मात्रा बनती हो ।

भौतिक विज्ञान—प्राचीन भारत मे अन्य विज्ञानो के समान ही भौतिक विज्ञान भी धर्म के साथ जुडा हुआ था ।

१ **अणु**—यह एक सामान्य धारणा थी कि आकाश को छोडकर ब्रह्माड के अन्य पाँच तत्व भूमि, पृथ्वी, वायु, अग्नि और जल आणविक थे । अणु के सिद्धान्त को

ई० पू० ६ठी शताब्दी मे लोकप्रिय बनाने वाले थे पाकुड कात्यायन। उनके अनुसार उतने ही प्रकार के अणु थे जितने कि ब्रह्माड मे तत्व। वे अणु को सास्वत मानते थे, सिर्फ उसका आकार परिवर्तनशील था।

२ **गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त**—प्राचीन भारत को गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त मालूम था। ७वी शताब्दी के सबसे महत्वपूर्ण हिन्दू गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने अपनी कृति ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त मे लिखा है—सभी वजनदार वस्तुएँ प्रकृति के सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी पर जा गिरती हैं, क्योकि यह पृथ्वी का स्वभाव है कि वह वस्तुओ को आकर्षित करके अपने स्थान पर रखे, जिस प्रकार जल का स्वभाव बहना है, अग्नि का जलना है और वायु की गति पकडना है। वराहमिहिर ने भी लिखा, "पृथ्वी उसको आकर्षित करती है, जो उस पर स्थित है। इस प्रकार भौतिकी के गुरुत्वाकर्पण का ऐतिहासिक सिद्धात जिसका श्रेय बाद मे नवजागरण काल मे यूरोप मे गैलीलियो को दिया गया, प्राचीन भारतीय वैज्ञानिको को मालूम था।

ज्योतिष शास्त्र—ज्योतिष शास्त्र, वह विज्ञान है, जो मानव जीवन की सभी गतिविधियो पर नक्षत्रो के प्रभाव से सम्बन्धित विद्या है, ज्योतिष शास्त्र उतना ही प्राचीन है, जितनी कि वेदकालीन सभ्यता। ज्योतिष शास्त्र पर सबसे प्राचीन निबध था, बृहत्-सहिता जिसे गुप्त काल के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर ने लिखा था। उनके अनुसार 'ज्योतिष शास्त्र' का अध्ययन तीन भागो मे करना चाहिये प्रथम तन्त्र जो खगोल शास्त्र की गणना पर आधारित है और तृतीय 'सहिता' जिसका सिद्धान्त लक्षण मे या प्रकृति की हलचल पर आधारित है, किन्तु जो अधिकाश मे नक्षत्रो द्वारा मार्ग-दर्शन पाती है। वराहमिहिर ने ज्योतिष सम्बन्धी दो अन्य रचनाएँ की थी—एक शादी-विवाह के लिये शुभ मुहूर्त, दूसरा सम्राटो द्वारा 'रण-यात्रा' का शुभ मुहूर्त, जिसे 'योग यात्रा' का नाम दिया गया। उन्होंने जन्मकुडली के अध्ययन पर एक कृति 'होर शास्त्र' ७५ पद्यो मे लिखी। वराहमिहिर का सम्भावित काल ६ शताब्दी गुप्तकाल मे था।

खगोल शास्त्र—खगोल शास्त्र नक्षत्रो का विज्ञान है।

उद्भव—वेद समारोहो के लिये पुरोहित को चदमा की कला, सूर्य के मार्ग, ऋतुओ के परिवर्तन और नक्षत्रो के साथ शशिमण्डल के सम्बन्ध का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना होता था। खगोल विज्ञान का विकास भारत मे ईसा की पाँचवी शताब्दी के बाद ही हुआ, जो कि ग्रीक खगोल शास्त्र के अस्तित्व को पूर्व मान्यता प्रदान करता है।

पृथ्वी परिक्रमा का सिद्धान्त—आर्य भट्ट ने अपनी रचना 'आर्यभटीय' मे जो गणित और खगोल शास्त्र से सम्बन्धित है, यह समझाया है कि पृथ्वी सूर्य के चारो

ओर अपनी धुरी पर परिक्रमा करती है। सूर्य और चन्द्र-ग्रहण के यथार्थ कारणों पर भी उन्होने प्रकाश डाला है। आर्य भट्ट का जन्म ४७५ ई० मे हुआ था। उन्होंने अपनी रचना ४९९ ई० अर्थात् २३ वर्ष की आयु मे लिखी।

वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त—प्राचीन भारत के सबसे प्रसिद्ध खगोल शास्त्री थे, वराहमिहिर, जो प्राचीन भारत के प्रमुख ज्योतिषी भी थे और ब्रह्मगुप्त जो प्रमुख गणितज्ञ भी थे। खगोल शास्त्र की सबसे प्रसिद्ध कृति थी—'पच सिद्धातिका' जो वराहमिहिर द्वारा निर्मित खगोल शास्त्र की पाँच प्रणालियो पर आधारित है। इस कृति मे लेखक ने खगोश शास्त्र की पाँच प्रणालियो को विस्तार मे समझाया है — (अ) पितामह सिद्धान्त, (ब) वशिष्ठ सिद्धान्त, (स) सूर्य सिद्धान्त, (द) पौलिस सिद्धान्त और (य) रोमक सिद्धान्त।

उपरोक्त पाँच प्रणालियो मे से सूर्य सिद्धात, रोमक सिद्धान्त और पौलिस सिद्धात ग्रीक खगोल विज्ञान मे से प्रभावित लगते हैं।

ब्रह्मगुप्त ने इस विज्ञान पर एक कोष ब्रह्म स्फुट सिद्धात ६२८ ई० मे लिखा। उन्होंने अनेक खगोल सम्बन्धी समस्याओ का इसमे समाधान किया है।

नक्षत्र—प्राचीन भारतीय खगोल शास्त्री अपनी चक्षुओ द्वारा सिर्फ ९ नक्षत्र ही देख पाये। जो थे · सूर्य, चद्र, रुद्र, शुक्र, मगल, वृहस्पति, शनि, जिसमे बाद मे राहु और केतु भी शामिल किये गये।

कैलेंडर—वेदकालीन पडितो ने चद्रमा पर आधारित तिथि बनायी थी, न कि सूर्य पर आधारित। एक वर्ष तीन चार ऋतुओ मे विभाजित था। इस प्रकार एक वर्ष मे १२ चद्र-मास होते थे। एक मास मे ३० तिथियाँ अर्थात् चन्द्रमा की चार भव्य कलाएँ होती थी। बारह चन्द्रमासो मे लगभग ३५४ दिन होते थे, जबकि सूर्य मास मे ३६६ दिन होते थे। अतएव इस त्रुटि को प्रत्येक चद्र मास के अन्त मे १२ क्षेपकीय राते जोड कर किया। इस प्रकार भारतीय कैलेण्डर अस्पष्ट और अविश्वसनीय था, क्योकि उसे देखकर इस बात का पता लगाना बडा कठिन था कि किस मास मे एक विशिष्ठ हिन्दू तिथि पडती है। सूर्य कैलेण्डर भी जो पश्चिम से आया था, गुप्तकाल मे प्रचलित हुआ।

सूर्य कैलेण्डर के साथ ही सात दिन के सप्ताह का भी प्रारम्भ किया गया। इस प्रकार प्रत्येक दिन का ग्रीक-रोम कैलेण्डर के समान विद्यमान नक्षत्र के नाम पर नामकरण किया गया, जो हैं :—

रविवार, सोमवार, मगलवार, बुधवार, वृहस्पतिवार, शुक्रवार और शनिवार।

सवत्—भारत मे भिन्न शासक परिवारो ने जो अपने भिन्न सम्वत् चलाये उनमे से सबसे प्रसिद्ध निम्नलिखित हैं —

(अ) विक्रम (ई० पू० ५८ से),
(ब) शक (ई० पू० ७८ से),
(स) कल्चुरि (४८ ई० से),
(द) गुप्त (३२० ई० से),
(य) हर्ष (६०६ ई० से) ।

भारत सरकार ने शक वर्ष को मार्च २२, १९५७ से (चैत्र १, १८७९) से अपनाया है ।

वनस्पति विज्ञान—प्राचीन भारत ने वनस्पति विज्ञान और जीव-विज्ञान के बारे मे भी प्रगति की थी । यह चरक की उस कृति द्वारा स्पष्ट है जिसमे उन्होंने पौदो को चार भागो मे विभक्त किया—(१) ऐसे पौदे जो फल देते हैं, किन्तु जिनमे फूल नही होता । (२) ऐसे पौदे जिनमें फूल और फल दोनो होते हैं । (३) जडी-बूटियाँ जो फल लगने के बाद नष्ट हो जाती हैं । (४) जड़ियाँ जिनकी जडें फैलती जाती हैं । १४वी शताब्दी के बाद ही वनस्पति विज्ञान अच्छी प्रगति कर सका ।

जीव-विज्ञान—जीव-विज्ञान के विषय मे भी जीव-विज्ञान ने कुछ विकास किया है । चरक को जीव-विज्ञान का कुछ ज्ञान था । उन्होंने सभी प्राणियो को चार श्रेणियो मे विभक्त किया है (१) वे पशु जो गर्भाशय से होते हैं और बच्चो को दूध पिलाने वाले होते हैं । (२) वे प्राणी जो अडे से पैदा होते हैं जैसे कि मछली, साँप और पक्षी । (३) जो नमी और गर्मी से एक साथ पैदा होते हैं, जैसे कि कीडे, मच्छर आदि और (४) जो वनस्पति तत्वो से पैदा होते हैं ।

२ प्राचीन भारत मे गणित

प्राचीन भारत मे गणित विज्ञान का अध्ययन ज्योतिष और खगोल विज्ञानो के निकट सबध से किया जाता था । पाँचवी शताब्दी मे आर्यभट्ट अद्वितीय वैज्ञानिक हुए थे ।

रेखागणित—धार्मिक क्रियाओ तथा बलिदान के लिये वेदकालीन ब्राह्मणो को विभिन्न आकार और प्रकार की अग्नि-वेदियाँ बनानी पडती थी । इसी प्रकार उपयुक्त समय के लिये उन्हे नक्षत्रो की गति को देखना होता था, क्योकि तब तक घडियो का आविष्कार नही हुआ था । इन कारणो से कई विज्ञानो का विकास हुआ जिसमे से गणित-विज्ञान एक है ।

जबकि बलि वेदी का निर्माण करते समय ब्राह्मणो के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे दो मे अधिक सख्याओ जैसे कि षट्कोणो, त्रिकोणो आदि को जोडें या घटाये । ब्राह्मणो को समकोणो को समकोण चतुर्भुज मे परिवर्तित करने की जानकारी थी । ४९९ ई० मे आर्य भट्ट ने ३ १४१६ रुपयों को खड मे $\frac{६२३३२}{२००००}$ के रूप मे समझाया था ।

बीजगणित—बीज गणित का भी प्राचीन भारत मे पर्याप्त विकास हुआ था । प्राचीन भारतीयो को समीकरण का एक से अधिक अज्ञात सख्या के साथ और उच्च अश के साथ भी हल ज्ञात था ।

गणित—डा० ए० एल० बाशम के अनुसार आधुनिक सख्याओ का अन्वेषण किया गया था । इस अज्ञात व्यक्ति ने सख्याओ की नयी प्रणाली को ससार की आवश्यकताओ के लिए जरूरी समझा था । बुद्ध के बाद उसे सबसे महत्वपूर्ण भारतीय माना जा सकता था । यद्यपि उसकी रेखागणित का विकास हुआ । इस कारण ज्ञान मे बडा योगदान किया है । पाँचवी शताब्दी मे सबसे बडे गणितज्ञ आर्य भट्ट थे । अपनी कृति 'आर्यभटीय' मे जो ४९९ ई० मे लिखी गयी थी, उन्होंने गणित पर एक टिप्पणी लिखी है । उनके गणित मे सख्याओ का जिक्र है । वर्गमूल के लिये भी उन्होंने नियम दिया है । १ से १० तक की सख्या उन्हे मालूम थी जिसमे शून्य और दशमलव प्रणाली भी शामिल है । प्राचीन भारतीयो मे गणित की उपलब्धि सहज और स्वाभाविक मानी जा सकती है, वह एक अत्यन्त प्रतिभावान और विश्लेषणात्मक मस्तिष्क की उपज है । इस प्रकार वह व्यक्ति एक बहुत बडे श्रेय का अधिकारी है ।

जोहनजोदडो की मुद्रा पर भी सख्याएँ खुदी हुई है, किन्तु उन्हें निश्चित रूप से पढा नही जा सका है । ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से आगे जो अभिलेख मिले हैं, दो प्रकार के अक्षर और सख्याएँ पायी गयी हैं । खरोष्टी अक्षर और सख्याएँ कुछ शताब्दियो पश्चात् अदृश्य हो गये, किन्तु ब्राह्मिक अक्षर और सख्याएँ दोनो प्रचलित रही । आधुनिक भारतीय तथा यूरोपीय सख्याएँ इसी मे से निकली हैं । इसके अलावा भारतीयो ने न सिर्फ नौ सख्याओ का विकास किया, उन्होंने शून्य के लिये भी एक चिह्न का विकास किया जिसकी सहायता से हम कोई भी सख्या लिख सकते हैं । उन्होंने गणित और बीजगणित मे शून्य के सामान्य महत्व को समझा था, एक परिमित सख्या के शून्य द्वारा विभाजन को नही समझ पाये थे । यह भास्कर (१११४-११८५ ई०) ही पहले उल्लेखनीय हिन्दू गणितज्ञ थे जिन्होंने शून्य अपरिमित के महत्व को पूरी तरह समझा था ।

३ प्राचीन भारत मे औषधियाँ

जादू और औषधियाँ—प्राचीन भारत मे चिकित्सा विज्ञान का प्रारम्भ वेदकाल मे माना जा सकता है । प्रारम्भ मे किसी रोग की चिकित्सा के लिए शायद समूचे पूर्वी ससार मे कुछ अशो मे औषधि और बडे अशो मे जादू का साथ-साथ प्रचलन था । वेदकालीन भारत मे भी इस विश्वास और कार्य का प्रचलन था अथवा वेद की जादूभरी कथाये और विशेष करके उसका कौशिक सूत्र, ऐसी चगा करने वाली कला और पौदो का वर्णन करता है ।

आयुर्वेद—प्राचीन भारत मे चिकित्सा-विज्ञान को आयुर्वेद नाम से जाना जाता था जिसका आज भी प्रचलन है । आयुर्वेद का अर्थ है, दीर्घजीवन और यह अथर्व-वेद

का पूरक माना जाता है। अग्निवेश ने अग्निवेश तन्त्र लिखा था जो बाद मे चरक द्वारा पुन. लिखा गया और 'चरक सहिता' के नाम से जाना गया। आयुर्वेद का अध्ययन कई भारतीय विश्वविद्यालयो मे होता था जिनमे तक्षशिला और नालदा भी थे। इसके अलावा चिकित्सक अध्यापक अपने ऐसे शिष्यो को भी प्रशिक्षण देते थे जो यह व्यवसाय अपनाने के इच्छुक थे।

दोष का सिद्धान्त—आयुर्वेद ने दोष के सिद्धान्त को मान्यता दी है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के तीन दोष होते हैं वात, पित् और कफ। जबकि रक्त को भी चौथा दोष माना जाता था। यह विश्वास किया जाता है कि जब तीनो सतुलन बराबर हो तब शरीर स्वस्थ रहता है।

शल्य क्रिया—शल्य क्रिया का ज्ञान वेदकाल मे भी था तथापि गुप्तकाल मे वह अपने शिखर पर पहुँच गया। प्राचीन भारतीय शल्य-चिकित्सक प्लास्टिक शल्य क्रिया और पशु शल्य चिकित्सा से सम्बन्धित क्रिया के लिये ससार भर मे प्रसिद्ध थे। आँख, कान, नाक, ओठ, गला और शरीर के प्रत्येक अग पर उन्होंने सफल शल्य क्रियाएँ की थीं।

पश्चिम पर प्रभाव—आयुर्वेद तथा सुप्रसिद्ध चरक और सुश्रुत जैसे भारतीय चिकित्सको का अरबो पर बडा प्रभाव था। उन्होंने भारतीय कृतियो का अरबी मे अनुवाद किया था। उनके द्वारा ही भारतीय चिकित्सा प्रणाली ने पश्चिम को भी प्रभावित किया।

टीका—आयुर्वेद के चिकित्सको को टीका लगाने के सिद्धान्त का ज्ञान था और वे उसे एक भोडे तरीके से लगाते थे। पहले वे धागे को गाय के उस फोडे मे भिगो लेते थे जो चेचक से ग्रस्त था। अब उस भीगे हुए धागे को सुई मे डालकर बालक की बाँह के ऊपरी भाग मे भोक दिया जाता था। इस प्रकार एक नर्म प्रकार का इजेक्शन शरीर मे दे दिया जाता था जिसमे चेचक का प्रतिरोध करने की क्षमता थी।

सार्वजनिक अस्पताल—बौद्धो, जैनो और हिन्दुओ ने स्त्री-पुरुषो के लिए सार्वजनिक अस्पतालो की स्थापना की थी। हाथी, घोडे जैसे पशुओ के लिये भी पशु-अस्पताल खोले गये थे। ऐसे अस्पताल अधिकाशतया दानवीरो द्वारा चलाये जाते थे। कभी सरकार भी इन्हे चलाती थी। फाहियान ने ५वी शताब्दी मे एक ऐसे अस्पताल का वर्णन किया है जो पाटलिपुत्र मे था—'यह अस्पताल राज्य द्वारा सचालित सभवत ससार का पहला अस्पताल था।' कुछ समय उपरान्त इसमे पशु-चिकित्सा विभाग भी खोला गया था।

प्रश्नावली

१ प्राचीन भारतीयो के आर्थिक और सामाजिक जीवन का वर्णन कीजिये।
२ सिन्धु घाटी की नगरपालिका के बारे मे आप क्या जानते हैं ?

३ प्राचीन भारत मे कला की समीक्षा कीजिये ।

४ प्राचीन भारत के साहित्य की चर्चा कीजिये ।

५ प्राचीन भारत के राजनीतिक योगदान का अध्ययन कीजिये ।

६ प्राचीन भारत द्वारा विज्ञान, गणित ओर चिकित्सा विज्ञान को दिये गये योगदान की चर्चा कीजिये ।

७ निम्नलिखित पर छोटी टिप्पणियाँ लिखिये :—

(अ) वर्णाश्रम धर्म ।

(आ) सिन्धु घाटी मे भवन निर्माण कला ।

(इ) प्राचीन भारत मे शिल्पकला ।

(ई) प्राचीन भारत मे चित्रकला ।

(उ) प्राचीन भारत मे सगीत और नृत्य ।

(ऊ) वेदकालीन साहित्य ।

(ए) बौद्ध और जैन साहित्य ।

(ऐ) सगम साहित्य ।

(ओ) भौतिक शास्त्र को भारत का योगदान ।

(औ) प्राचीन भारत मे ज्योतिष विद्या और खगोल विद्या ।

(अं) प्राचीन भारत मे गणित ।

(अः) प्राचीन भारत मे चिकित्सा-विज्ञान ।

नवाँ अध्याय

वैदिक धर्म और दर्शन

(अ) वैदिक धर्म

वैदिक साहित्य से वेदकालीन जनता के धार्मिक विचारों, दर्शन और धर्म कथाओं आदि के बारे मे अच्छा चित्र खींचा जा सकता है।

प्राकृतिक शक्तियों की पूजा—(१) द्यौस पितृ-देवताओं के पिता, (२) पृथ्वी (धरती माता), (३) इन्द्र युद्ध देवता, (४) वरुण शारीरिक और नैतिक व्यवस्था के देवता, (५) अग्नि अग्नि के देवता, (६) सोम वनस्पति देवता, (७) वायु वायु देवता, (८) उषा प्रात काल की देवी, (९) रात्रि रात्रि की देवी, (१०) प्रजन्य वर्षा के देवता, (११) सूर्य सूर्य के देवता, (१२) अप्सरा जलपरियाँ, (१४) अरण्यानि वन देवी। प्रकृति की ये सब शक्तियाँ मानव समझी जाती है और इनकी पूजा की जाती है। प्रकृति की इन शक्तियो से सूर्य की किरणे बनी है जिन्हे ऋता कहते हैं।

अनेक देवी-देवताओ की पूजा—वेदकालीन जनता की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि वे असख्य देवी-देवताओ की पूजा करते थे। इनमे से अधिकाश प्रकृति के बडे निकट है। अतएव सभी के नाम उनके आवास-स्थान के नाम पर दिये गये हैं। (१) आकाश देवता जैसे कि वरुण और मित्र, (२) पृथ्वी के देवता जैसे कि अग्नि और सोम। विश्वास है कि वेदकाल मे देवी-देवताओ की सख्या ३३ करोड मानी जाती थी।

देवी-देवताओ का स्वभाव और स्थान—उनका विश्वास था कि देवी-देवता मनुष्य के समान ही थे, किन्तु ये मनुष्य के विपरीत अमर थे। इसका कारण यह था कि ये सोम रस का पान करते थे। उनकी विशिष्टताएँ हैं भव्यता, शक्ति, ज्ञान, समृद्धि और सत्य। इन देवी-देवताओ को कोई प्राथमिकता नही दी गयी थी। प्रत्येक अपने-अपने कार्य के अनुसार महत्वपूर्ण अथवा महत्वहीन प्रमाणित होता जाता है। यह भी विश्वास किया जाता था कि ये सब एक विशुद्ध वास्तविकता के प्रतीक हैं। इस प्रणाली मे बहु-देवत्ववाद और एकेश्वरवाद दोनो की ही प्रकृति दिखलायी पडती है तथापि इसका इतना विकास नही हो पाया था कि इसे किसी एक के साथ सम्बद्ध किया जाये।

मूर्तिपूजा नहीं—ऋग्वेद काल मे मूर्तिपूजा और मन्दिरो के अस्तित्व का कोई प्रमाण नही है। प्रो० बी० एन० लूनिया इस ओर इगित करते हैं कि तब न तो मन्दिर थे, न देवियाँ, न ही मूर्तियाँ। ऋग्वेद काल के देवी-देवता मानव आकृति के ही माने जाते थे। किन्तु उनकी मूर्तियाँ नही थी।

नैतिकता का ऊँचा स्तर—वेदकालीन धर्म ने अपने अनुयायियो को ऊँचे स्तर की नैतिकता, उच्च आदर्शों और सिद्धान्तो का उपदेश किया है। ऋग्वेद ने धर्मों को आदेश दिया है कि ये सत्य और सच्चाई पर रहे। वरुण इन दोनो के अभिभावक माने जाते थे। जो इनका उल्लघन करते थे, उन्हे कडी सजा दी जाती थी और नर्क की यातना भोगनी पडती थी। इस डर के कारण ही वे नैतिकता के मार्ग पर चलते थे।

धार्मिक प्रथाएँ और समारोह—वैदिक धर्म की एक अन्य विशेपता है—मनुष्य के जीवन भर विभिन्न स्थितियो मे जन्म से लेकर मरण तक और उसके पश्चात् भी धार्मिक प्रथाओ और समारोहो का आयोजन।

सबसे महत्वपूर्ण और सामान्य समारोह हैं · (१) सीमान्त समारोह। यह तब होता है, जब स्त्री गर्भवती होती है। (२) नामकरण समारोह जो सामान्यतया बच्चे के जन्म के १२वे दिन होता है। (३) मुण्डन समारोह जब बच्चे का बाल सर्वप्रथम काटा जाता है। (४) उपनयन समारोह, जब ८ वर्ष की आयु हो जाने पर बालक ब्रह्मचर्य आश्रम मे प्रवेश करके यज्ञोपवीत धारण करता है। (५) ब्याह समारोह। (६) मृत्यु समारोह। व्यक्ति विशेप की मृत्यु के उपरान्त भी समारोह होता है। इसके अलावा, पुत्र लाभ, शत्रु विनाश, रोगमुक्त होने के लिये भी समारोह किये जाते थे।

शासको द्वारा राजसूर्य, वाजपीय, अश्वमेघ, पुरुपमेध आदि यज्ञ भी किये जाते थे। बलिदान समारोह मे अग्नि का कार्य महत्वपूर्ण माना जाता था। अग्नि मनुष्य और देवता के बीच सदेशवाहक माना जाता था। यह विश्वास किया जाता था कि सम्पूर्ण ससार ही धर्म विधियो का परिणाम है। देवी-देवताओ का जन्म भी उसी से हुआ है। यदि पुजारी ने हवन न किया तो सूर्योदय नही होगा।

प्रारम्भिक वैदिक प्रथाएँ सरल थी। दूध, अन्न और घी के द्वारा ऋग्वेद काल की जनता देवताओ का आह्वान करती थी। वैदिक युग के उत्तरार्द्ध मे ये प्रथाएँ काफी खर्चीली और उलझी हुई होने लगी जिससे समाज मे ब्राह्मण वर्ग का महत्व बढ गया। यहाँ तक कि यह युग ब्राह्मण युग कहलाया जाने लगा और हिन्दू धर्म को ही ब्राह्मणवाद का नाम दिया जाने लगा। सामाजिक तराजू मे ब्राह्मण शासको और राजाओ से भी श्रेष्ठ माने जाने लगे। किसी भी हवन को सतोपजनक रीति से करने के लिये अनेक ब्राह्मणो की आवश्यकता पडने लगी। डा० वी० एम० आप्टे लिखते है—धार्मिक प्रथा की सफलता मन्त्रो मे शुद्ध रूप मे उच्चारण करने पर निर्भर करता था, क्योकि उनके अर्थ से अधिक ध्वनि मे शक्ति होती थी। एक सामान्य व्यक्ति ऐसे समारोह करवाने की बात भी नहीं सोच सकता था।

धनिको का धर्म—ब्राह्मणवाद, धनिको का धर्म बन गया। इसके पालन के लिये बहुत धन खर्च करना पडता था और ब्राह्मणो को काफी दान-दक्षिणा देनी होती थी।

यह ब्राह्मणो का एकाधिकार हो गया कि वे वैसे खर्चीले समारोह और धार्मिक रीति-रिवाज करे। धनलोलुप, स्वार्थी और धूर्त ब्राह्मणो ने धनिको का पूरा-पूरा शोषण किया।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—वैदिक युग के उत्तरार्द्ध मे जब प्रारम्भिक वैदिक युग के महत्वपूर्ण देवताओ वरुण और इद्र ने अपना महत्व खो दिया तव ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर देवताओ का उदय हुआ जो अत्यन्त लोकप्रिय हुए और वडा महत्व प्राप्त कर लिया। इनमे विष्णु वहुत लोकप्रिय हो गये।

(व) वैदिक दर्शन

वैदिक दर्शन का अध्ययन वैदिक साहित्य से किया जा सकता है। ऋग्वेद को ज्ञान के वृक्ष का मूल कहा जा सकता है जिसकी शाखाएँ और टहनियाँ युगो से विभिन्न उप धर्मो, सम्प्रदायो और शैलियो मे देखी जा सकती हैं। यह मानव की सवसे प्रारम्भ की पुस्तक है (प्रो० आर० के० मुकर्जी)। यद्यपि यह सवसे पुरातन साहित्य है, इसमे वुद्धि की पराकाष्ठा स्पष्ट झलकती है। तथ्य तो यह है कि दर्शन का प्रारम्भ ही चार वैदिक सहिताओ से होता है, किंतु उसका पूर्ण विकास और उसकी श्रेष्ठता उपनिपद् मे ही देखी जा सकती है।

'उपनिषद्' की अभिव्यक्ति दो शव्दो से वनी है 'उप' अर्थात् पास और 'शद्' अर्थात् वैठना। इस प्रकार उपनिषद् का अर्थ हुआ—'गुरु के पास वैठना।' जिसका आशय है गुरु द्वारा अपने पास वैठे हुए प्रिय शिष्य को ज्ञान का दान।

उपनिषदो की सख्या १०८ है। इसकी रचना अनेक साधु-तपस्वियो ने ई० पू० ८०० से ५०० मे की है। इन उपनिषदो के रचयिताओ मे याज्ञवल्क्य और गार्गी का नाम प्रमुख प्रारम्भिक दार्शनिको मे है।

कर्म और पुनर्जन्म—उपनिषद् का एक अन्य महत्वपूर्ण दार्शनिक विचार है कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धात और मोक्ष की लालसा अर्थात् जन्म और मरण के चक्र से मुक्ति। वृहदारण्यक उपनिपद् के अनुसार मानव शरीर मृत्यु के बाद गल जाता है किन्तु उसका कर्म अन्य जन्म का कारण बनता है जो कि पूर्व जन्म के सत्कर्मों और दुष्कर्मों का उत्तराधिकारी वनता है। सत्कर्मो से मनुष्य का जन्म कुलीन परिवार मे होता है जबकि दुष्कर्मों से पशु योनि मे जन्म होता है। इस प्रकार मनुष्य अपने भाग्य का स्वय सृजनहार है। इस जन्म और मरण के चक्र से मनुष्य छुटकारा कैसे पा सकता है? याज्ञवल्क्य के अनुसार पुनर्जन्म को तपस्वी सभी इच्छाओ के त्याग द्वारा कोई भी ब्रह्म के साथ एकाकार हो सकता है, विश्वव्यापी आत्मा वन सकता है और पुनर्जन्म से छुटकारा पा सकता है। जिस प्रकार नदी सागर मे अदृश्य होकर अपना नाम और आकार खो देती है, उसी प्रकार एक बुद्धिमान व्यक्ति अपने नाम और आकार से मुक्त होकर उस

दिव्य प्ररूप से जा मिलता है, जो सर्वोपरि है । डा० बिल डुराट कहते हैं—यह ब्रह्म सम्बन्धी आध्यात्मवाद, यह रहस्यात्मक और अवैयक्तिक अमरता हिन्दू विचार-धारा से गाधी, याज्ञवल्क्य से रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक को प्रभावित करता रहा है। आज तक उपनिषद् का भारत के जन-जीवन में वही स्थान है जो न्यू टेस्टामेट का ईसाइयो के लिये है—एक श्रेष्ठ धर्म जिसका लोग समय-समय पर पालन करते हैं, किन्तु जिसके प्रति श्रद्धा सदैव बनी रहती है ।

प्रश्नावली

१ सक्षेप मे वैदिक धर्म पर चर्चा कीजिये ।

२ वैदिक दर्शन को सक्षेप मे समझाइये ।

३ निम्नलिखित पर सक्षेप मे टिप्पणियाँ लिखिये —

(अ) वैदिक समाज मे प्रकृति की शक्तियो की पूजा ।

(आ) वैदिक समाज मे धार्मिक ससार और समारोह ।

(इ) वैदिक दर्शन ।

(ई) कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धात ।

———

दसवाँ अध्याय

जैन धर्म और बौद्ध धर्म

(अ) जैन धर्म

साधारणत यह जाना जाता है कि स्वामी महावीर जैन धर्म के सस्थापक थे, लेकिन जैन धर्म का इतिहास निश्चय ही स्वामी महावीर से काफी पहले का है। जैनियो के धार्मिक ग्रथ हमे यह बतलाते हैं कि जैन धर्म के वास्तविक सस्थापक ऋषभ थे, जो महाराज भरत के पिता थे और जिनके नाम पर हमारी जन्मभूमि का नाम 'भारत-माता' पडा है। उनके बाद और तेईस तीर्थंकर (पैगम्बर) हुए। प्रथम बाईस तीर्थंकरो के बारे मे कोई अधिक जानकारी प्राप्त नही हुई है।

पार्श्वनाथ तेईसवे तीर्थंकर थे। यह ८वी शताब्दी मे हुए बनारस के महाराजा अश्वसेन के पुत्र थे। महाराजा नरवर्मन की पुत्री प्रभावती से इनका विवाह हुआ। सिर्फ ८३ दिन की साधना के बाद ही इन्हे परम ज्ञान की प्राप्ति हो गयी। ऐसा माना जाता है कि लगभग ३,२७,००० स्त्री और १,६४,००० पुरुष इनके अनुयायी थे।

१०० वर्ष की अवस्था मे इनकी समेत पर्वत पर मृत्यु हो गयी।

(ब) महावीर . अतिम तीर्थंकर

महावीर जैन धर्म के अतिम तीर्थंकर (पैगम्बर) थे। इनका असली नाम वर्द्धमान था। ऐसा माना जाता है कि इनका जन्म विहार के वैशाली शहर के किसी उपनगर मे लिच्छवी वश के सिद्धार्थ नाम के कुलीन समृद्ध के घर हुआ था। परम्परा-नुसार महावीर की तिथियाँ ५३९ ई० पू० से ४६७ ई० पू० इस प्रकार दी जाती हैं। यह बुद्ध के समकालीन थे। सिद्धार्थ का विवाह वैशाली के शासक चेतक की बहन राजकुमारी त्रिशला से हुआ था। डाक्टर विल के अनुसार, इनके माता-पिता उस सम्प्रदाय के थे जो पुनर्जन्म को अभिशाप मानता था और आत्महत्या को मुक्ति। जब इनका पुत्र इकतीस वर्ष का हुआ तो इन लोगो ने स्वेच्छा से निराहार रहकर अपनी जिंदगी का अत कर लिया। वर्द्धमान का विवाह यशोदा से हुआ और इन्हे एक पुत्री हुई। लेकिन इन्होंने ससार को त्याग दिया और एक तपस्वी बन गये।

तपस्वी वर्द्धमान—ससार और उसके रीतिरिवाजो को त्यागने के बाद निर्वस्त्र होकर 'आत्म-पवित्रीकरण और ज्ञान' प्राप्त करने के लिए वे पश्चिम बङ्गाल मे भटकते रहे। अन्तरगसूत्र के अनुसार, "वह निर्वस्त्र और घर-बार त्याग कर भटकते रहे। लढा के निवासियो ने उन्हें तरह-तरह से तग किया और उन पर कुत्ते छोड दिये। इन लोगो ने उन्हें लकडियो और पैरो से पीटा और उन पर फल, मिट्टी के ढेले और टूटे हुए

बर्तन के टुकडे फेके। इन लोगो ने हर सम्भव यातनाओ द्वारा उनकी तपस्या भग करने के प्रयत्न किये। लेकिन युद्ध के मोर्चे के वीर की तरह महावीर यह सब सहते रहे। सर्दियो मे वे छांव मे तपस्या करते और गर्मियो मे झुलसा देनेवाली धूप मे तो कभी वे महीनो तक पानी नहीं पीते थे। कई बार वे सिर्फ छठां, आठवां, दसवां और १२वां भोजन ही करते रहे और बिना किसी चाह के ध्यानावस्था मे लीन रहते थे।

तेरह वर्षों तक इस प्रकार के आत्म त्याग के पश्चात् 'जृमभिका' ग्राम नामक शहर की रिजुपालिका नदी के पास सामग्य नामक गृहस्थ के खेतो के मध्य स्थित मदिर के नजदीक साल वृक्ष के नीचे उन्हे निर्वाण प्राप्त हुआ। इस प्रकार वे अर्हंत, एक जिन (विजेता) और एक सर्वज्ञानी बने। उनके अनुयायियो ने उन्हे 'महावीर' का नाम दिया जिसका अर्थ होता है शूरवीर, और स्वय को जैन कहने लगे।

(स) महावीर के उपदेश

डाक्टर विल डुराट के अनुसार इस सम्प्रदाय ने धर्म के इतिहास मे विचित्र सिद्धान्तो का विकास किया जो यो हैं—

१ **पाँच प्रतिज्ञाएँ**—पार्श्वनाथ ने अपने तपस्वी अनुयायियो को चार व्रत लेने का निर्देश दिया। पहला, किसी भी प्राणी या जीव को नही मारना, दूसरा, असत्य भाषण से दूर रहना, तीसरा, कोई चीज नहीं चुराना और चौथा सभी बाह्य वस्तुओ से सुख की प्राप्ति का जिसमे योग भी है, त्याग करना और इस प्रकार जीवन पर्यन्त पवित्रता तथा ब्रह्मचर्य बनाये रखना। महावीर ने इसमे पाँचवां व्रत भी जोड दिया जो था सासारिक वस्तुओ से लगाव नही रखना, विशेषकर स्वामित्व सम्बन्धी। जन सामान्य से भी आशा की जाती थी कि वे इन बातो का यथासम्भव पालन करेंगे।

२ **अहिंसा**—महावीर के अनुसार न सिर्फ प्राणी और पशुओ में बल्कि पेड-पौधे, हवा और अग्नि मे भी आत्मा होती है। इसलिए किसी भी परिस्थिति मे किसी को भी घायल कर उसे मुसीबत मे नही डालना चाहिए। दूसरे शब्दो मे सच्चे जैनी को नित-प्रतिदिन की जिंदगी मे निम्नलिखित नियमो का पालन अहिंसा से डिगे बगैर करना चाहिए —

(१) **शहद का त्याग**—किसी भी जैनी को शहद नही लेना चाहिए, क्योकि वह मधुमक्खी का प्राण है। इसलिए शहद लेने का मतलब होता है मधुमक्खी को उसकी जिंदगी से वचित रखना।

(२) **पानी छाना हुआ होना चाहिए**—प्रत्येक जैनी को पानी छानकर पीना चाहिए ताकि पानी पीते वक्त उसमे छिपे हुए कीटाणु न मरे।

(३) **मुँह ढका होना चाहिए**—प्रत्येक जैन धर्मावलम्बी को अपना मुँह ढंककर सोना चाहिए ताकि श्वांस लेते समय हवा में उपस्थित जीवाणुओ की हत्या न हो सके।

(४) **दीपक पर जाली लगाना**—प्रत्येक जैन धर्मावलम्वी को चाहिए कि वह दीपक पर जाली लगाये ताकि पतगो की लौ से रक्षा हो सके ।

(५) चलने के पहले **जमीन को साफ कर लेना चाहिए** । निष्कर्ष रूप मे सच्चे जैनी को जमीन पर चलने के पहले उसे साफ कर लेना चाहिए ताकि उसके नगे पैरो के नीचे जीवाणु न कुचलने पाये ।

(६) **कृषि सम्बन्धी कार्यों से दूर रहना**—सच्चे जैन धर्मावलम्वी को कृषि को अपना पेशा वनाने की मनाही है, क्योकि वह मिट्टी के टुकडे करने के साथ उसमे उपस्थित कीडे-मकोडो को भी कुचल देता है ।

(७) **सदाचार और पवित्रता भरा जीवन**—सच्चे जैन धर्मावलम्वी मे यही अपेक्षा की जाती है कि वह सदाचारी और पवित्र जीवन विताये ।

३ **कठोर तपस्या**—भगवान् महावीर के मतानुसार अनशन (उपवास) तथा अन्य तपस्याये, भावनाओ का प्रतिनिधित्व करने तथा शारीरिक आवश्यकताओ को नियन्त्रित करने वव एस प्रकार आत्मनियन्त्रण प्राप्त करने के लिए परमावश्यक होती हैं ।

४ **वास्तविक सत्य सिर्फ जिन को ही प्राप्त होता है**—महावीर के अनुसार एक दृष्टि से ही कुछ भी सत्य प्रमाणित होता है । दूसरी दृष्टियो से देखा जाये तो शायद वह असत्य प्रमाणित हो । इस कथन को सिद्ध करने के लिए महावीर के अनुयायी ६ अधे मनुष्यो की कहानी का उदाहरण दिया करते थे जिन्होंने हाथी के शरीर के जिस अग को छुआ था, उसी के अनुसार उसका वर्णन करने लगे । जिसने हाथी के कान पर हाथ फिराया था उसने हाथी का एक वडे हवादार पखे के रूप मे वर्णन किया, जिसने हाथी के पैर पर हाथ रखा था, उसने हाथी को एक वडा खम्भा वतलाया और इसी तरह अन्य भी अपने-अपने तरीके से उसका वर्णन करते रहे । इस प्रकार यह प्रमाणित हो जाता है कि कोई भी निर्णय सशर्त होता है । पूर्ण सत्य सिर्फ जिन ही जान पाता है ।

५ **उत्कृष्ट जिन्दगी में आस्था, लेकिन ईश्वर में नहीं**—महावीर ने ईश्वर के अस्तित्व और ससार के विधाता के रूप मे मानने से इनकार कर दिया । डाक्टर विल "विश्व के रचयिता या प्रथम कारण के रूप मे कल्पना करना आवश्यक नही है । कोई भी वालक इस बात की कल्पना का खडन कर सकता है कि अरचित सर्वत्रता या कारणरहित कारण को समझ सकना उतना ही मुश्किल है जितना अकारण या अरचित ससार को । यह मानना अधिक तर्कसगत होगा कि विश्व का अस्तित्व अनन्तकाल से चला आ रहा है और इसमे कोई दैवी हस्तक्षेप न होकर, इसके अपरिमित बदलाव और वृत्त चक्र प्रकृति की स्वाभाविक अजेय शक्ति है ।" फिर भी इनका ईश्वर के एकमात्र उत्कृष्ट, योग्य और वास्तविक सत्य को जानने के लिए मत्रो का उच्चारण

और वलि आदि चढाना व्यर्थ है। सच्ची आस्था, गूढ ज्ञान और अच्छे कर्मों के योग से ही उच्च जीवन प्राप्त होता है। उच्च जीवन के इन तीन गुणो को, तीन रत्न माना गया है।

६ वेद और वर्ण-व्यवस्था का अस्वीकार—चूँकि महावीर को ईश्वर के अस्तित्व मे विश्वास नही था, इसलिए उन्होंने तत्क्षण ही वेदो की सत्ता और उसमे वतलाए गये ईश्वर को विश्व का रचयिता मानने से इनकार कर दिया। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था को भी स्वीकार नही किया। फिर भी उन्हें कर्मों के सिद्धान्त और पुनर्जन्म मे विश्वास था।

७ कर्म का नाश—महावीर ने अपने अनुयायियो को आदेश दिया कि वे तपस्या के द्वारा कठोर व्रत और कुकर्म के आने से रोक कर कर्म को नाश करे। व्रत करना, शरीर को कष्ट पहुँचाना, अध्ययन और सेवा आदि कुछ ऐसे आत्म सयमो के पालन के लिए महावीर ने उपदेश दिये, जिसके द्वारा आत्मा जन्म और मरण के चक्र से मुक्ति पा सकती है।

जैन धर्म के दो प्रमुख सम्प्रदाय

लगभग ७९ वर्ष के वाद जैन धर्म नग्न या वस्त्रहीन रहने के प्रश्न पर दो दलों या सम्प्रदायो मे विभक्त हो गया—(१) श्वेताम्बर और (२) दिगम्बर।

(१) श्वेताम्बर सप्रदाय के लोगो ने अपने अनुयायियो को श्वेत वस्त्र धारण करने की शिक्षा दी।

(२) दूसरी तरफ दिगम्बर सम्प्रदाय के लोग पूर्ण नग्नता मे विश्वास रखते थे। आज यह दो प्रमुख सम्प्रदाय और आगे छोटे दलो मे विभक्त हो गये है।

गाधी जी इस धर्म के सिद्धान्तो से बेहद प्रभावित थे। उन्होंने अपने जीवन और नीति मे बुनियादी रूप मे अहिंसा को अपनाया था और सिर्फ कमर के नीचे ही वस्त्र धारण करते थे।

(द) गौतम बुद्ध की सक्षिप्त जीवन-कथा

बौद्ध धर्म की स्थापना विख्यात भगवान् गौतम द्वारा हुई थी। ईसा से पूर्व ५६७ ई० मे कपिलवस्तु के शाक्य शासक शुद्धोदन और उनकी पत्नी माया देवी के घर बुद्ध का जन्म हुआ था और जो गौतम, सिद्धार्थ, शाक्यमुनि, अव-लोक्तेश्वर के नाम से भी जाने जाते हैं। जन्म के सात दिनो के बाद ही सिद्धार्थ मातृ-हीन हो गये और इसलिए माँ की प्रेमालु बहन गौतमी के पालन-पोषण मे बडे हुये। विलासपूर्ण जिन्दगी, सुन्दर महलो, सगीत और नृत्य के बीच ही शाक्य मुनि का बचपन बीता। कम उम्र मे ही अवलोक्तेश्वर का यशोधरा से विवाह हो गया और ईश्वर की कृपा से पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम राहुल रखा गया।

एक सन्ध्या जब गौतम घूम रहे थे, तब शायद पहली बार उन्होंने एक जर्जर अवस्था के वृद्ध, एक बीमार व्यक्ति और एक आदमी का मृत शरीर देखा। पूछताछ करने पर उन्हे पता चला कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जिंदगी मे इन अवस्थाओ मे से होकर गुजरना पडता है। इस घटना ने उनके मस्तिष्क को पूर्णत बदल दिया और तब से वह मोक्ष की खोज मे लग गये। उन्होंने अपना घर, सुन्दर पत्नी और नये जन्मे शिशु को छोडकर ससार को भी त्याग दिया। २९ वर्ष की उम्र के आसपास वह एक तपस्वी बन गये।

राजगृह मे अपने दो विशिष्ट गुरुओ अलारा कलमा और उद्दकारामपुता के निरीक्षण मे ध्यान केन्द्रित करने की कला पर उन्हे पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया, लेकिन मोक्ष अब भी प्राप्त नही हुआ। तब गया के जगलो मे उन्होंने एकदम कठोर तपस्या शुरू की, यहाँ तक कि उनका शरीर सिर्फ हड्डियो का ढाँचा रह गया। लेकिन व्रत और योग के अभ्यास का भी कोई फल नही निकला और मोक्ष उनके लिए अब भी दूर की वस्तु थी तब उन्होंने उपवास और तपस्या को छोडकर सामान्य जीवन बिताना प्रारम्भ किया, किन्तु सासारिक सुखो से दूर रहकर चिंतन भी करते रहे।

गौतम बुद्ध

एक बार जब गया मे वे पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान मे बैठे थे, तब सहसा ही उन्हें प्रकाश दिखलाई पडा और वे प्रकाश से पूर्ण हो उठे और 'बुद्ध' कहलाने लगे। वह जो खोजना, प्राप्त करना और महसूस करना चाहते थे, उन्हे प्राप्त हो गया। उन्होंने एक बडे सघ की स्थापना की। भिन्न सम्प्रदाय और ईसा से पूर्व ४५७ ई० मे ८० वर्ष की अवस्था मे उनकी मृत्यु हो गयी।

बुद्ध के उपदेश—पैंतालीस वर्ष तक भगवान् बुद्ध अलग-अलग स्थानो पर अपने दर्शन के व्याख्यान दिये। उनके दर्शन का सार और तत्व उनके चार श्रेष्ठ सत्यो मे निहित है।

चार श्रेष्ठ सत्य—भगवान् बुद्ध ने सारनाथ मे बनारस के नजदीक 'धर्म-चक्र परिवर्तन' नामक अपना पहला उपदेश दिया जिसका अर्थ है—सत्कर्मा के पहिये के घर

को बदलने का उपदेश । उन्होंने अपना उपदेश पाली भाषा मे दिया । इस उपदेश मे उन्होंने अपने चार पवित्र सत्यो को निम्नलिखित ढङ्ग से समझाया

(१) **पीडा और दु ख**—प्रथम सत्य इस ससार मे कष्टो और दु खो की उपस्थिति है । यहाँ पर सब कुछ क्षणिक दु खमय और कष्टमय है ।

जन्म दु ख है, अवस्था दु ख है, बीमारी दु ख है, मृत्यु दु ख है, हर अरुचिकर वस्तु मे सम्बन्ध दु खमय है, रुचिकर से विछोह दु खमय है, हर अपूर्व इच्छा दु खमय है । साराश मे व्यक्तित्व के सारे पाँच अवयव दु खमय है । इसमे कोई सन्देह नही है कि जन्म, वृद्धावस्था, बीमारी, रोग, मृत्यु की कल्पना, अरुचिकर, हतोत्साह और निराशा, यह सभी पीडामय और दु खमय है ।

(२) **पीडा का कारण**—कष्टो और दु खो की मूल जड दूसरा सत्य है । तृष्णा दु खो का मूल कारण है इसलिए इसे निकालना चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति हजारो इच्छाओ की पूर्ति करना चाहता है जो पूर्ण न होने पर व्यक्ति को कष्टो और दुखो से भर देती है । इसलिए इन स्वार्थी इच्छाओ का दमन करना चाहिए ।

(३) **कष्टों से निवारण**—दु खो का निवारण तीसरा सत्य है । इस ससार मे आकाक्षाओ को नष्ट करके ही दुखो और कष्टो को दूर किया जा सकता है । आकाक्षाओ को नष्ट करने से ही दु खो का अत होता है और तब परम सुख की प्राप्ति होती है ।

(४) **पीडा को दूर करने का मार्ग**—इच्छाओ का अत, कष्टो को दूर करना और असीम सुख का आनन्द प्राप्त करना चौथा सत्य है ।

आठ मोडो वाला मार्ग—भगवान् बुद्ध के अनुसार स्वार्थमय इच्छाओ के अत से कष्टो और दु खो से छुटकारा प्राप्त होता है । अष्ट मार्ग के द्वारा सभी आकाक्षाओ से छुटकारा पाया जा सकता है और जो इस प्रकार हैं—(१) स्वस्थ विचार, (२) दृढ प्रतिज्ञा, (३) शुद्ध वाणी, (४) मद्यपान से दूर रहना, (५) सत्चरित्र, (६) सत्प्रकाश (७) सत्य स्मरण और (८) सत्य चिंतन ।

जब भगवान् बुद्ध के एक शिष्य ने उनसे पूछा कि आजीविका से उनका क्या तात्पर्य है तो उन्होंने सदाचार के यह पाँच नियम बतलाये—(१) किसी भी जीव की हत्या मत करो । (२) चोरी मत करो । (३) असत्य मत बोलो । (४) नशीले पेय मत पीओ और (५) व्यभिचार मत करो ।

कर्म का सिद्धान्त और निरन्तर पुनर्जन्म—कर्म का सिद्धान्त कठोर है । जो तुम बोओगे, वही फल पाओगे । बुद्ध भगवान् इस सिद्धान्त मे विश्वास रखते थे और पुनर्जन्म को मानते थे । उनके अनुसार इस जन्म और दूसरे जन्म में मनुष्य की दशा उसके कर्मों पर निर्भर करती है । कोई भी पाप ईश्वर को दी गयी बलि से नही धुल

सकने, किसी भी पुरोहित की प्रार्थना से कुछ भी भला नही हो सकता। मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। धर्म का यही नियम विश्व मे चलता है और सभी को इसका पालन करना चाहिए। यह नियम कभी नही बदलता है।

निर्वाण—भगवान् बुद्ध ने अपने अनुयायियो को इस बात का विश्वास दिलाया कि जो कोई भी अष्ट मार्ग के पथ को अपनायेगा निर्वाण प्राप्त होगा, अर्थात् सर्वोच्च परम सुख को प्राप्त होगा, आत्मा का सर्वशक्तिमान परमात्मा के साथ मिलन तथा भूत, वर्तमान और भविष्यो के साथ सरसता की भावना एव पुनर्जन्म से मुक्ति।

बुद्ध के उपदेशो का अर्थ है, सभी व्यक्तिगत इच्छाओ का अत और ऐसी स्वार्थ-हीनता के द्वारा पुनर्जन्म से मुक्ति।

नास्तिकता—भगवान् बुद्ध ने कभी ईश्वर के विषय मे कुछ नही स्वीकारा।

एकता का आदर्श—बुद्ध ने ब्राह्मणो से अलग जाति, रग और धर्म को कोई महत्त्व दिये बगैर एकता के आदर्श का उपदेश दिया। उनकी दृष्टि मे सभी प्राणी समान थे।

इस तरह, भगवान् बुद्ध ने विश्व को पूजा, धार्मिक सस्कार, स्वर्ग, नर्क और पापो से शुद्धि आदि से रहित विशुद्ध नैतिक धर्म दिया। यह सीधा, सरल, नैतिक मूल्यो और आचारवाद से भरा दृष्टिकोण था।

बुद्ध धर्म के सघ नामक सगठन के द्वारा यह नया सरल और नैतिक धर्म सपूर्ण भारत मे चारो ओर प्रचारित हुआ।

(इ) हीनयान और महायान सम्प्रदाय

गौतम बुद्ध की मृत्यु के बाद उनके शिष्यो मे उनके उपदेशो की व्याख्या लेकर मतभेद हो गया। इसके कारण हीनयान और महायान नाम के दो सम्प्रदाय बन गये। इन दोनो मे मूल भेद निम्नलिखित प्रकार हैं—

१ हीनयान सम्प्रदाय ने मूलत बुद्ध के सरल उपदेशो को मूर्तिपूजा और आडम्बरो के बगैर अपनाया। दूसरी ओर महायान ने मूर्तिपूजा को स्वीकारा और भगवान् बुद्ध को देवत्वमय बतलाया। साथ ही इसमे विस्तृत धार्मिक पूजा विधि, मत्रो और सूत्रो मे आस्था दिखलाई।

२ हीनयान सप्रदाय ने मोक्ष को व्यक्ति का लक्ष्य माना। जबकि महायान ने मोक्ष को सभी प्राणियो का लक्ष्य माना।

३ प्रथम ने स्वय की सभ्यता और अच्छे कर्मों को मोक्ष प्राप्त करने का एक-मात्र साधन, माना। जबकि द्वितीय ने विभिन्न बुद्धो और बोधिसत्वो के प्रति समर्पण मे आस्था को सभी प्राणियो के मोक्ष का साधन माना।

४ प्रथम ने पाली भाषा को अपनाया और द्वितीय ने सस्कृत भाषा को।

(फ) बौद्ध धर्म और जैन धर्म

बौद्ध धर्म और जैन धर्म के बीच समानता—जैन धर्म और बौद्ध धर्म मे बहुत-सी निम्नलिखित समानताएँ हैं—

(१) महावीर और बुद्ध दोनो ही राजसी परिवार के थे न कि पुरोहित परिवार के। (२) दोनो को ही न तो वेदो मे विश्वास था और न ही बलि और धार्मिक पूजा-पाठ आदि मे। (३) दोनो ने ही साधारण जनता की भाषा प्राकृत का उपयोग किया और ब्राह्मणो की तरह सस्कृत भाषा का नही। (४) दोनो ने ही वर्ण प्रथा का परित्याग कर सभी धर्म और स्त्री-पुरुष दोनो को अपने धर्म मे सम्मिलित किया। (५) दोनो ने अपने उपदेशो मे कर्म के सिद्धान्त पर जोर दिया। (६) दोनो ने ही सीधे-सरल, सदाचारी और पवित्र विचारो, इन्द्रिय सुख देने वाले सभी कथन और कर्म से मुक्त रहने का प्रचार किया, जो उनके अनुसार हर व्यक्ति को इसी जन्म मे मोक्ष दिलाता है। (७) दोनो ने ही मठ बनवाये जो निवास-स्थान, धर्मप्रचार और पूजा-पाठ के काम आता था। (८) कुछ ही समय मे महावीर और बुद्ध दोनो अपने अनुयायियो के कारण देवत्वमय माने गये। (९) दोनो ने ही आत्मा के पुनर्जन्म के सिद्धान्त को माना था। (१०) दोनो ही प्रारम्भ से योग से प्रभावित थे।

दोनो में असमानतायें—बुद्ध धर्म और जैन धर्म मे दो निम्न असमानताएँ हैं—

(१) ***शरीर को शारीरिक यातना***—जैन धर्म ने शरीर को शारीरिक यातना देने मे बौद्ध धर्म को कही पीछे छोड दिया था। वैसे बुद्ध और महावीर दोनो ने ही अत्यन्त कठोरतम से कठोरतम साधना की थी। फिर भी प्रथम ने अपने अनुयायियो मे तपस्या का अधिक प्रचार नही किया जबकि द्वितीय ने चरम सीमा तक इसका प्रचार किया। जब कोई नया शिष्य जैन मन्दिरो मे भिक्षु के रूप मे प्रवेश करता, तो अपने सिर के एक-एक बाल को तोडकर उसे अपनी सहनशीलता का परिचय देना होता था।

(२) **पवित्रता की जिन्दगी**—बौद्ध और जैन धर्म दोनो ने पवित्रता भरी जिन्दगी का प्रचार किया, लेकिन इस सम्बन्ध मे जैन धर्म, बौद्ध धर्म से अधिक बढा-चढा निकला। जैन पानी, हवा और मिट्टी मे उपस्थित जीवाणुओ और कीटाणुओ को भी मृत्यु से बचाने के प्रयत्न की सीमा तक चले गये।

प्रश्नावली

१ सक्षेप मे महावीर के जीवन का वर्णन कीजिए।
२ महावीर के मुख्य उपदेशो को समझाइये।
३ गौतम के जीवन पर सक्षेप मे चर्चा कीजिए।
४ बुद्ध के मुख्य उपदेशो को समझाइये।

ग्यारहवाँ अध्याय

शैववाद और वैष्णववाद

(अ) परिचय

त्रिमूर्ति—हिन्दू दर्शन के अनुसार जीवन और जगत् को तीन प्रक्रियाओ से गुजरना पडता है—सृजन, सरक्षण और विनाश। अत दैवी शक्ति तीन प्रमुख रूप धारण करके प्रकट होती है—ब्रह्मा जो सृजन करते हैं, विष्णु जो पालन करते हैं और शिव, जो सहार करते हैं। इन तीनो से मिल कर त्रिमूर्ति बनती है—'तीन आकृतियाँ' जिन्हे जैनो को छोडकर प्रत्येक हिन्दू पूजता है। इन तीनो मे अधिकतर हिन्दुओ के बीच विष्णु और शिव की पूजा अधिक लोकप्रिय है।

वैष्णववाद क्या है—वैष्णववाद वह हिन्दू धार्मिक सप्रदाय है, जो भगवान् विष्णु और उनके दो प्रमुख अवतारो एक ओर कृष्ण तथा उनकी पत्नियो मे तथा दूसरी ओर राम-सीता मे विकास करता है। वास्तव मे, वैष्णव मत वाले भगवान् विष्णु के अनेक अवतारो मे विश्वास करते है। वैष्णववाद का सर्वप्रमुख सिद्धान्त अपने किसी देवता की, उसका मूर्ति के माध्यम से, भक्ति और सरल अनुष्ठान है, जहाँ किसी पुरोहित को मध्यस्थ बनाना अनिवार्य नही है। भक्ति के माध्यम से भक्त का हृदय भगवान् विष्णु या राम या कृष्ण के चरण-कमलो मे लग जाता है।

शैववाद क्या है—शैववाद एक अन्य हिन्दू धार्मिक प्रणाली है, जो भगवान् शिव और उनकी प्रिया तथा उनके प्रतीको की भक्ति को समर्पित करता है। यद्यपि उसमे वैष्णववाद के अनेक प्राथमिक सिद्धान्त शामिल हुए हैं जैसे सम्प्रदाय के देवता के नामो का जाप, गुरु की आज्ञा का पालन आदि, फिर भी उसकी निम्नलिखित विशिष्टताएँ भी हैं

१ वैष्णवो से भिन्न, शैव लोग अपने देवता के अवतारो मे विश्वास नही करते।

२ वैष्णवो की अपेक्षा शैव अधिक तपोमय होते हैं।

३ शैव श्मशानो मे भी चक्कर लगाते हैं और अपने शरीर पर भभूत मलते हैं।

४ अधिकाश शैव सम्प्रदायो का लिंग की पूजा करना और उसके प्रति आदर प्रदर्शित करना एक महत्वपूर्ण अग है।

५ शैव धर्मावलम्बी रुद्राक्ष की तसवीर या माला का भी उपयोग करते हैं।

६ शैव कट्टर एकेश्वरवादी होते हैं और भगवान् की एकता एव सर्वव्यापकता मे विश्वास करते है।

७ शैवो का अधिकाश साहित्य सस्कृत या तमिल मे है, जबकि वैष्णवो का साहित्य मराठी और हिन्दी मे भी है। फिर शैव साहित्य वैष्णव साहित्य की अपेक्षा अधिक सजीव और पौरुषपूर्ण है।

वैष्णववाद और शैववाद की नींवें—प्राकृतिक दृश्य, प्रतीति और घटनाएँ, जिन्होंने प्रेम, स्नेह, सहानुभूति, प्रशसा और पूजा की भावना को जन्म दिया और उत्तेजित किया, उन्होंने ही वैष्णववाद की रचना की, जबकि उस तमाम प्राकृतिक दृश्य, जिसने लोगो के दिमाग मे आतक और भय का सूत्रपात किया, शैववाद के विकास मे सहायक हुआ। इस प्रकार प्रेम की भावना पर वैष्णववाद की नीव रखी गयी, जबकि भय, चाहे वह अपने विकास मे कितना ही निहित क्यो न हो शैववाद की नीव बना। विश्व के अन्य एकेश्वरवादी धर्मों मे उसी देवता को प्यार भी किया जाता है और उसी से वासुदेव-कृष्ण ऐसे देवता है, जिन्हे प्यार किया जाता है और रुद्र-शिव ऐसे देवता है, जिनसे भय उत्पन्न होता है।

(आ) भगवान् शिव का वर्णन

रुद्र-शिव—सामान्य रूप से सबसे अधिक विनाशकारी और खौफनाक प्राकृतिक दृश्य उपस्थित होता है उस आँधी-तूफान मे जब पेड जड से उखड जाते हैं, शाखाये टूट जाती हैं, मकान गिर पडते हैं और जब साथ मे करकापात होने से मनुष्य, जानवर और पक्षी पल भर मे जलकर राख हो जाते हैं और बीमारियाँ फैलती है—ऐसे मे प्राचीन आर्यों को रुद्र का रूप दिखायी देता था।

अत रुद्र देवता को खासतौर पर "क्रूरता और विनाश का देवता माना जाता है उस दैवी शक्ति का मानवीकरण जो एक-एक करके सभी कोशिकाओ, जातियो, विचारो, कृतियो और रचनाओ को ध्वस्त कर देती है।" (डा० विल डुराट) इस प्रकार वह विनाश का देवता है और आकाश की बिखरी हुई ताकतो का प्रतीक।

लेकिन मनुष्य सृष्टि का नियन्त्रण करनेवाली शक्ति को महान् भयानक शक्ति ही नही मानते। डरानेवाले और विनाश उत्पन्न करने वाले प्राकृतिक दृश्य ईश्वर के क्रोध के सूचक माने जाने हैं, जिन्हे प्रार्थना करने और बलि आदि चढाने से शात किया जा सकता है। तब रुद्र देवता शिव मे बदल जाते हैं अत कृपालु हो जाते हैं। इस प्रकार रुद्र-शिव की अवधारणा प्राचीन भारत मे उत्पन्न हुई और लोकप्रिय ढङ्ग से अपना ली गयी। इसी के अनुसार शिव के अनेक नाम पडे जैसे रुद्र, सर्व, उग्र और अमनि जो उनकी विनाशकारी शक्तियो का प्रतिनिधित्व करते हैं, दूसरे नाम है पशुपति, महादेव और ईशान जो उनके दयालु रूप को परिलक्षित करते है।

भगवान् शिव—पुनर्ज्जीवन के देवता—भगवान् शिव पुनर्ज्जीवन के देवता माने जाते हैं। पवित्र गगा भगवान् विष्णु के चरणो से निकलती है और उमे भगवान् शिव की मोटी-मोटी घनी जटाओ से होकर धरती पर उतरना कुछ बुनियादी प्रतीको मे से है जो मनुष्य को प्रजनन अग का प्रतिनिधित्व करता है।

शिव—नृत्य के देवता—शिव की 'नटराज' के रूप मे भी पूजा की जाती है। उन्होंने अपना सबसे अद्भुत नृत्य तरगन के वन मे किया था। एक दतकथा के अनुसार ऋषियो की पत्नियाँ शिव के प्रेम मे बावली हो उठी थी, और सारे ऋषि इससे बौखला उठे थे। अत उन्होने एक भयानक बाघ उनके विरुद्ध भेजा, परन्तु शिव ने उसे चीर-फाड डाला और उसकी खाल का दुशाला बनाकर काम मे लिया। उसके बाद ऋषियो ने उनके पीछे एक खौफनाक सर्प छोडा, लेकिन शिव ने उसे मारकर गुलूबद की तरह पहन लिया। तीसरी बार ऋषियो ने शिव के पीछे एक शक्तिशाली हाथी छोडा, लेकिन उन्होंने उसको फाड डाला और उसकी खाल का लबादा बनाकर ओढ लिया। अत मे, जब मुलायक नाम के असुर, जिसे अपस्मार भी कहते है, ने भगवान् शिव पर हमला करने का प्रयत्न किया तो उन्होंने उसे अपने पैर के नीचे दबा कर उसके फैले हुए शरीर पर अपना सबसे अद्भुत ताण्डव नृत्य शुरू कर दिया। यह नृत्य इतना शानदार और आश्चर्यजनक था कि देवतागण और स्वर्ग तथा नरक लोक सभी उसको देखने के लिए इकट्ठे हो गये, जिसके कारण ऋषि उनके भक्त हो गये। यहाँ तक कि शेषनाग भी बहुत प्रभावित हुआ। वास्तव मे उसे नृत्य इतना भाया कि उसने भगवान् विष्णु को छोड दिया और नृत्य देखने के लिए वर्षों तक कठोर जीवन-यापन किया।

शिव—तपस्या के देवता—भगवान् शिव तपस्या के देवता भी माने जाते है और उनकी महायोगी के रूप मे पूजा होती है। पारम्परिक रूप से भगवान् शिव को निर्वसन दिखाया जाता है, इकहरा चेहरा, रूखे बाल, तन पर भभूत मली हुई, मुड-माला धारण किये हुए, साँपो के बडे-बडे कुडल पहने हुए और सर्प-फण की छत्र-छाया में गहन तपश्चर्या में निमग्न बैठे हुए।

शिव का रूप—आमतौर पर भगवान् शिव के एक, तीन या पाँच चेहरे और चार हाथ दिखाये जाते हैं। ऊपर के दो हाथो मे डमरू और प्रज्ज्वलित ज्वाला होती है और नीचे के दो हाथ अभय और क्रिया की मुद्रा मे होते है। कुछ चित्रो मे उन्हे तीन हाथो मे सीग, त्रिशूल और डमरू पकडे हुए दिखाया जाता है और चौथे से वरदान देते हुये। अक्सर उनके माथे के बीच मे तीसरा नेत्र भी दिखाया जाता है। एक कथा के अनुसार जब प्रेम के देवता कामदेव ने भगवान् शिव की पत्नी पार्वती के मन मे काम की भावना जागृत की तो उन्होंने अपने तीसरे नेत्र को खोलकर कामदेव को उसके दुस्साहस के कारण भस्म कर दिया। अत उनका तीसरा नेत्र विनाशकारी अग माना जाता है।

भगवान् शिव की गर्दन भी नीली दिखायी जाती है, जो समुद्र-मन्थन से निकले विष के प्याले को निगल लेने के कारण ऐसी हो गयी थी। शिव का वाहन साँड है, और उनके शस्त्रो मे त्रिशूल, पिनाक, अजगव, खट्वॅग और पाश। हिमालय पर स्थित कैलास मे उनका स्वर्गिक निवास है। उनकी पत्नियाँ हैं—पार्वती और शक्ति के सभी रूप। उनके दो संताने हैं गणेश और कार्तिकेय।

भगवान् शिव

शिव की संज्ञाएँ—परम्परानुसार, शिव के १००८ नाम या संज्ञाएँ हैं, जिनमे से प्रमुख हैं आदिनाथ, भैरव, मूलेश्वर, चन्द्रचूड, धूर्जटि, गंगाधर, हर, जयधर, महादेव, महाकाल, महायोगी, महेश, नटराज, नीलकंठ, पंचानन, पशुपति, शंभु, त्रिलोचन, विश्वनाथ और कैलाशनाथ।

(इ) सिंधु घाटी मे शैववाद

भारत मे शैववाद का उद्भव सिंधु घाटी सभ्यता मे ढूँढा जा सकता है। मोहन-जोदडो और हडप्पा की खुदाई मे मिली कुछ अत्यन्त दिलचस्प और विचारोत्तेजक मुहरें वे हैं, जिन पर एक तीन सिरो वाले निर्वसन देवता की आकृति अंकित है, उसके हाथ मे लम्बा-सा त्रिशूल है और जो एक चौकी पर पालथी मारकर योग की मुद्रा मे बैठा है। इस आकृति के चारो ओर सात भिन्न प्रकार के जानवर जैसे हाथी, बाघ, कूबड निकला हुआ साँड, भैंस, गैंडा, अरना भैंसा और हिरन अंकित हैं। सर जॉन मार्शल का विचार था कि यह मानवाकृति और किसी की नही, बल्कि पशुपति अर्थात् जंगली जानवरो के देवता भगवान् शिव की है। इससे प्रमाणित होता है कि भगवान् शिव सिंधु जनमानस के प्रमुख देवता थे। भगवान् शिव की पूजा मानव रूप मे ही नही, बल्कि लिंग और योगी के रूप मे भी की जाती थी। यह सिंधु घाटी के स्थलो से प्राप्त अनेक बेलनाकार और सच्चाकार—पत्थरो से अंतिम रूप से प्रमाणित हो जाता है। अत सिंधु के लोगो मे लिंग-पूजा बहुत लोकप्रिय थी।

इसी के साथ-साथ करधनी पहने, किरीट लगाये और कभी-कभी आभूषणो से सुसज्जित एक नारी आकृति की अर्धनग्न छोटी-सी मृणमूर्ति मोहनजोदडो के प्रत्येक घर और हडप्पा के कुछ स्थलो मे पायी गयी है। ये नारी आकृतियाँ धुआँ खायी और चिकनी पायी गयी जिससे विद्वानो ने यह निष्कर्ष निकाला कि ये नग्न और अर्धनग्न नारी आकृतियाँ उस देवी माँ का ही रूप हैं, जिसे अंबा, माता, काली, कराली, गौरी,

दुर्गा और पार्वती नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकार शैववाद प्राचीन-काल से आज तक भारतीयो द्वारा सामान्य रूप मे पूजा जाता रहा है।

(ई) प्रमुख शैव सम्प्रदाय

शैववाद के विकास के दौरान अनेक शैव सम्प्रदायो या पथो का जन्म हो गया। प्रत्येक सम्प्रदाय के अपने सिद्धान्त थे। फिर भी समस्त सम्प्रदाय पशुपत सम्प्रदाय या महेश्वर सम्प्रदाय के नाम मे जाने जाते थे।

(उ) वैष्णववाद का उद्गम

पाणिनि के समय से—वैष्णववाद का उद्गम यानी—वासुदेव की पूजा पाणिनि के समय से मानी जा सकती है, जबकि पतजलि का स्पष्ट मत है कि सूत्र मे वर्णित वासुदेव 'आराध्य' अर्थात् ईश्वर का नाम है। अत भगवान वासुदेव की पूजा कम से कम पाणिनि के बराबर पुरानी है।

घोसुन्दी और बेसागर के शिलालेख—घोसुदी मे प्राप्त एक ब्राह्मी लिपि के शिलालेख मे शकर और वासुदेव के पूजा-गृहो के चारो ओर बनी एक दीवार के निर्माण का उल्लेख है। यह शिलालेख कम से कम ईसा के लगभग २०० वर्ष पूर्व उत्कीर्ण किया गया होगा। वासुदेव के २०० ई० पू० भी पूजे जाने की बात बेसागर मे हाल ही मे मिले एक और शिलालेख से भी पुष्ट हो जाती है। उस समय वासुदेव की पूजा लोग देवताओ के देव रूप मे करते थे और उनके पूजने वाले भागवत कहलाते थे। उत्तर-पश्चिम भारत से लोग बडी सख्या मे भागवत धर्म को मानते थे, यूनानी लोग भी इसी धर्म के अनुयायी थे।

महाभारत मे वासुदेव—महाभारत के नारायणीय वर्ग मे नारायण नारद को वही एकातिका-धर्म समझाते है,जो भगवद्गीता मे श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया था—"जो लोग मेरे (वासुदेव) भक्त है, वे मुझमे प्रवेश करके मुक्ति पा सकते हैं। दूसरे सभी देवता भी मेरे द्वारा बनाये गये हैं और अतत सब मुझमे समा जायेंगे।" फिर नारायण वासुदेव के अवतारो के बारे मे बताते हैं जैसे वाराह, नरसिंह, बलि का दमन करने वाले, भृगु वश के राम और क्षत्रियो के सहारक, दाशरथी राम, और वे, जो मथुरा मे कस का विनाश करने के लिए जन्म लेगे और अनेक दैत्यो को मारने के पश्चात् अत मे द्वारका मे जा बसेंगे। देवताओ के देवता हरि को वे ही लोग देख सकते हैं, जो उनकी मुक्ति और पूर्ण समर्पण के साथ पूजा करते हैं। तब वह परम शाश्वत, सर्वोच्च शक्ति भक्त को अपने दर्शन देती है। इस धर्म का सात्वतो ने पालन किया। सर्वोच्च नारायण ने यह सब सुनकर नारद बदरिकाश्रम लौट आये।

(ऊ) भगवद्गीता का दर्शन

डॉ० विल डुराट का कहना है, 'महायुद्ध के वर्णन मे दुनिया की सबसे विशाल दार्शनिक कविता छिपी हुई है—भगवद्गीता या ईश्वर का गीत ।' इलियट ने इसको उचित ही 'दि न्यू टेस्टामेंट आफ इंडिया' कहा है, जो वेदो के समान ही महान मानी जाती है और बाइबिल या कुरान की तरह अदालतो मे शपथ दिलाने के लिए उपयोग मे लायी जाती है ।

जब पाण्डव वीर अर्जुन अपने रथ से युद्ध-क्षेत्र मे दृष्टि दौडाते हैं तो शत्रु सेना में अपने मित्रो, सम्बन्धियो, गुरुओ और उन सभी लोगो को पाते हैं, जिन्हे उन्होंने प्यार किया है और पूरे जीवन भर आदर दिया है । फिर वे अपने अस्त्र डाल देते हैं और युद्ध करने तथा अपने सगे-सम्बन्धियो को मारने से इनकार कर देते हैं । तब वे गाधी और ईसा के दर्शन की बाते निम्न पक्तियो मे श्रीकृष्ण के सम्मुख रखते है, जो कि उनके सारथि हैं, और किसी होमरिक देवता की तरह उनके साथ हैं ।

अर्जुन कहते हैं कि 'हे केशव युद्ध मे अपने कुल को मारकर कल्याण भी नही देखता । और हे कृष्ण मैं विजय को नही चाहता, हमे राज्य से क्या प्रयोजन है अथवा भोगो से और जीवन से भी क्या प्रयोजन है । क्योकि हमे जिनके लिए राज्य, भोग और सुखादिक इच्छित हैं, वे ही यह सब धन और जीवन की आशा को त्यागकर युद्ध मे खडे हैं । जो कि गुरुजन, ताऊ, चाचे, लडके और वैसे ही दादा, मामा, श्वसुर, पोते, साले तथा और भी सम्बन्धी लोग हैं । इसलिए हे मधुसूदन मुझे मारने पर भी अथवा तीनो लोको के राज्य के लिए भी मैं इन सबको मारना नही चाहता, फिर पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या है ।'   —गीता अध्याय १ श्लोक ३१-३५

तब श्रीकृष्ण अर्जुन को धर्म ग्रथो के सबसे महान् दर्शन को यह कहकर समझाते हैं कि अपना 'कर्म' पूरा करना उनका सबसे पवित्र और पुनीत कर्तव्य है, युद्ध क्षेत्र मे लडना और अपने सम्बन्धियो तथा मित्रो और प्रियजनो का साफ मन और सद्भाव से बिना किसी मोह, व्यक्तिगत इच्छा या महत्वाकाक्षा के वध करना उनका धर्म है । उन्हे समाज, जिसके वे एक सदस्य हैं, द्वारा सौंपे गये कार्य को पूरी कुशलता और योग्यता से पूरा करना चाहिए—बिना फल की आशा किये । उन्हे ईश्वर की सेवा मे अपना कर्तव्य करना चाहिए । इस प्रकार कृष्ण ने अर्जुन से कहा—

'हे अर्जुन ! यद्यपि मुझे तीनो लोकों मे कुछ भी कर्तव्य नही है तथा किंचित् भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नही है तो भी मैं कर्म मे ही वर्तता हूँ । क्योकि यदि मैं सावधान हुआ कदाचित् कर्म मे न वर्तूं तो हे अर्जुन ! सब प्रकार से मनुष्य मेरे बर्ताव के अनुसार वर्तते हैं अर्थात् वर्तने लग जायें । तथा यदि मैं कर्म न करूँ तो यह सब लोक

भ्रष्ट हो जायं और मैं वर्णसकर का करने वाला होवें तथा इस सारी प्रजा को हनन करूं अर्थात् मारने वाला बनूं। इसलिए हे भारत ! कर्म मे आसक्त हुए अज्ञानी जन जैसे कर्म करते हैं वैसे ही अनासक्त हुआ विद्वान् भी लोक-शिक्षा को चाहता हुआ कर्म करे।'
—गीता अध्याय ३ श्लोक २२-२५

तब श्रीकृष्ण ने उनसे कहा, केवल शरीर को आघात पहुँचाया जा सकता है, जबकि आत्मा मृत्यु से परे है, जो न नष्ट हो सकती है, न परिवर्तनशील है और जो अनन्त है। श्रीकृष्ण ने कहा—

'हे अर्जुन, जो इस आत्मा को मारनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनो ही नही जानते हैं, क्योकि यह आत्मा न मारता है और न मारा जाता है। यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा हो करके फिर होने वाला है, क्योकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नही होता है। हे अर्जुन ! जो पुरुष इस आत्मा को नाश रहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है, और कैसे किसको मारता है।'

श्रीकृष्ण ने अत मे अर्जुन को समझाया कि सभी वस्तुएँ और प्राणी सर्वोच्च शक्ति के ही प्रतिरूप हैं। उन्होंने कहा—

'हे अर्जुन ! जिनकी बुद्धि तद्रूप है, जिनका मन तद्रूप है तथा जिनकी उसकी सच्चिदानन्द परमात्मा मे ही निरन्तर एकीभाव से स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञान के द्वारा पाप रहित हुए परमगति को प्राप्त होते हैं। ऐसे वे ज्ञानी जन विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण मे तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल मे भी समभाव से देखने वाले ही होते हैं।'
—गीता अध्याय ५ श्लोक १७-१८

भगवद्गीता के दर्शन को इस वाक्य मे प्रस्तुत किया जा सकता है, 'तुम्हारा लक्ष्य कर्म होना चाहिए फल नही।' और इस प्रकार हमको अपना कर्त्तव्य करना चाहिए क्योकि वही कर्म है और ऐसा करते समय हमे स्वार्थ रहित रहना चाहिए। दूसरे शब्दो मे हमारा कार्य ब्रह्म के प्रति समर्पित हो।

विश्व मे महाभारत साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृतियो में से एक है।

वासुदेव की नारायण से एकरूपता :

(ए) नारायण, नर और हरि

नारायण शब्द का अर्थ है विश्राम-स्थल या नर का लक्ष्य या नर का सग्रह। महाभारत के नारायणीय वर्ग मे, हरि या केशव अर्जुन को बताते हैं कि उन्हे विश्राम-स्थल के रूप मे जाना जाता है, अर्थात् देवताओ और समस्त मानवता का लक्ष्य। एक

परम्परा के अनुसार नारायण का सम्बन्ध आदिकालीन जलों से जोडा जा सकता है। जलो को नरस कहा जाता था, क्योकि वे नर के पुत्र थे और क्योंकि 'वे पहले ब्रह्मा और फिर हरि के विश्राम-स्थल थे, इसलिए दोनो को नारायण कहा जाता था।' इसके अतिरिक्त ऐसी भी कथा है कि ब्रह्मदेव नारायण या विष्णु की नाभि कमल से निकले। डा० आर० जी० भण्डारकर लिखते हैं, 'समूचे नारायणीय वर्ग का जोर नारायण और वासुदेव की इसी एकरूपता दिखाने मे है।'

नारायण कौन हैं ?—तैत्तरीय आरण्यक मे नारायण को सर्वोच्च, शाश्वत और परमात्मा की सज्ञाएँ दी गयी हैं। पौराणिक रूप मे वे क्षीरसागर मे शेष नाम के एक विशालकाय सर्प के ऊपर लेटे दिखाये गये हैं। लक्ष्मी उनके चरणो की ओर बैठी हैं और नारद तथा दूसरे भक्त उनके निकट खडे हैं। हरिवश मे कहा गया है कि योगनियाँ और कपिलसख्य, जो मोक्ष की इच्छा करते हैं, नारायण की प्रार्थना और अर्पण करके सीधे श्वेत द्वीप जाते हैं। श्वेतद्वीप वह स्वर्ग है जहाँ नारायण या हरि निवास करते हैं। वह विष्णु के वैकुठ, शिव के कैलाश, गोपाल कृष्ण के गोलोक की तरह है। वन पर्व मे जनार्दन को अर्जुन से यह कहते हुए बताया गया है।

'ओ अपराजेय, तू नर है और मैं हरि नारायण और हम सत नर-नारायण इस ससार मे उचित समय पर आये हैं। हे पार्थ तू मुझसे भिन्न नही है, और मैं तुझसे भिन्न नही हूँ, मुझमे और तुझमे अतर नही।' इस प्रकार अर्जुन और वासुदेव की नर और नारायण से अनेक समानताएँ देखने को मिलती हैं।

(ऐ) सर्वोपरि देवता—विष्णु से वासुदेव की एकरूपता

ऋग्वेद मे कई ऋचाओ मे भगवान विष्णु की प्रशस्ति है, जिनमे उनका व्यक्तित्व काफी महत्वपूर्ण है। ब्राह्मणो के समय, महाकाव्य और पौराणिक युगों मे बुद्धिमान लोगो द्वारा उनकी सर्वश्रेष्ठ, सर्वोपरि और महानतम देवता के रूप मे पूजा होती थी। ब्राह्मणो के युग मे अग्नि को सबसे छोटा और विष्णु को सबसे बडा देवता माना जाता था। वामन के रूप मे विष्णु की कहानी सतपथ ब्राह्मण और तैत्तरीय आरण्यक मे इस प्रकार मिलती है देवताओ और असुरो मे बलि के स्थान के लिए सघर्ष हुआ। अत मे असुर मान गये कि वे वामन के आकार भर का स्थान उन्हे दे सकते हैं। अत विष्णु से लेटने के लिए कहा गया। वे धीरे-धीरे फैलकर इतने बडे हो गये कि पूरी धरती पर समा गये और इस प्रकार देवताओ को पूरी धरती प्राप्त हो गयी।

विष्णु घर-घर के देवता है। विवाह के समय सप्तपदी की रीति मे वर को अपनी वधू से उसके कदम बढाते ही कहना होता है · 'विष्णु तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करे या

तुम्हारे साथ हो ।' महाकाव्य के युग मे विष्णु हर प्रकार के सर्वोच्च शक्ति हो गये और वासुदेव तथा नारायण के रूप मे स्वीकार कर लिए गये । डा० आर० जी० भण्डारकर लिखते हैं, 'पौराणिक युग मे वासुदेव को मानने वाला सम्प्रदाय शक्तिहीन हो गया था और धार्मिक दर्शन की तीन धारायें—एक वैदिक देवता विष्णु से निकली, दूसरी स्वर्गिक और दर्शन प्रधान देवता नारायण से निकली और तीसरी ऐतिहासिक देवता वासुदेव से निकली—अंतिम रूप मे घुल-मिल कर वैष्णववाद मे परिवर्तित हो गयी ।

भगवान् विष्णु

वायु-पुराण और भागवत-पुराण मे समस्त दैत्यो को मारने के लिए गौ-चारण के बीच कृष्णावतार का उल्लेख आया है । इस प्रकार चरवाहे कृष्ण, जिनका एक नाम गोविन्द भी था, वासुदेव कृष्ण के समान पाया गया है ।

(ओ) विष्णु या नारायण के अवतार

वैष्णववाद की एक विशेषता है अवतारो की अवधारणा । अवतार का तात्पर्य उस देवता से है जिसमे ईश्वर की चमत्कारिक शक्तियाँ हो—वह साकार रूप मे दिखाई दे, ईश्वर की तरह निराकार न हो । (डॉ० आर० जी० भंडारकर) । भगवान् विष्णु पृथ्वी पर कई बार मानवता के रक्षक और विघ्नहर्ता के रूप में अवतरित हुए । उनका यही अवतरित होना अवतार कहलाता है । भगवान् विष्णु के अवतारो मे निम्न दस सर्वविदित हैं —

(१) मत्स्य—भगवान् विष्णु सातवें मनु वैवस्वत को प्रलय से बचाने के लिये मछली के स्वरूप में अवतरित हुए ।

(२) कूर्म—समुद्र मन्थन के समय उन्होंने कच्छप का रूप धारण कर लिया था, जिससे अमरता प्रदान करने वाला अमृत प्राप्त कर सके ।

(३) वाराह—हिरण्यकश्यप दैत्य से लडने के लिये उन्होंने वाराह का रूप रख लिया ।

(४) नरसिंह—अत्याचारी हिरण्यकश्यप पर विजय प्रात करने और उसका नाश करने के लिये उन्होंने नरसिंह का अवतार लिया ।

चरवाहे कृष्ण

(५) वामन—दैत्यराज बलि पर विजय प्राप्त करने के लिए उन्होंने यह रूप रखा ।

(६) परशुराम—क्षत्रियो के अत्याचारो से ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिए उन्होंने यह अवतार लिया ।

(७) राम—लंका के शक्तिशाली रावण को मारने के लिए उन्होंने राम के रूप में जन्म लिया। संसार के महानतम महाकाव्यों में से एक—रामायण इसी कथा पर आधारित है।

(८) कृष्ण—यह विष्णु का सर्वप्रमुख अवतार था जो उन्होंने भगवद्गीता के द्वारा एकनाथ धर्म स्थापित करने के लिये लिया। इस धर्म की दीक्षा उन्होंने अर्जुन को कुरुक्षेत्र में दी।

(९) बुद्ध—विष्णु बौद्ध धर्म की स्थापना करने के लिए बुद्ध के रूप में अवतरित हुये। बौद्ध धर्म वेदों और देवताओं को न मानकर परम निर्वाण के लिये आठ-गुणी पथ पर बल देता है।

(१०) विष्णु—विष्णु का अन्तिम अवतार कल्कि होगा, जब वे कलियुग की समाप्ति पर सफेद घोड़े पर चढ़कर अवतरित होंगे।

यह दस सर्वमान्य अवतार हैं। भागवत्पुराण में बाईस अवतारों का वर्णन है तथा दूसरी पौराणिक कथाओं में अनेकानेक अवतारों का जिक्र मिलता है, क्योंकि उनके अवतार अथाह झील से निकलने वाले असंख्य झरनों की तरह है।

(आ) वैष्णववाद के प्रचारक

वैष्णववाद लगभग आठवीं शताब्दी के अंत तक चलता रहा, जब अद्वैत और मिथ्या संसार का दर्शन लोकप्रिय हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी में फिर, रामानन्द ने नवोन्मेष के साथ भक्ति का संदेश फैलाने का सतत प्रयास किया। उत्तर में निम्बार्क ने उनका अनुसरण किया और स्वानों—वैष्णववाद के तत्व और कृष्ण की राधा को भी अधिक महत्व दिया। आगे चलकर, राम की पूजा को लोकप्रिय बनाकर रामानन्द ने वैष्णववाद को एक नयी दिशा दी। चौदहवी शताब्दी में रामानन्द और उनके शिष्यों ने देशी बोलियों में अपने उपदेश दिये। पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर ने राम को महिमा-न्वित करके और कठोर एकेश्वरवाद की शिक्षा देकर इस परम्परा को कायम रखा। सोलहवी शताब्दी में वल्लभ ने बालकृष्ण और उनकी प्रिया राधिका की भक्ति को प्रचारित किया, जबकि चैतन्य ने उस भक्ति के माधुर्य को पहचाना।

अन्त में, मराठा प्रदेश में नामदेव जो संभवत चौदहवी शताब्दी में हुये और तुकाराम जो सत्रहवी शताब्दी में हुए, पंढरपुर में विठोबा को सर्वोपरि ईश्वर मानते थे और उनकी भक्ति का स्वरूप भी अधिक गम्भीर था। इस प्रकार नामदेव, तुकाराम, कबीर और चैतन्य ने उस समय प्रचारित धर्म के रूढिवाद का खंडन करके पवित्र भक्ति और ईश्वर-प्रेम को विकसित और प्रतिपादित किया। उन्होंने मानव हृदय के शुद्धीकरण और नैतिक उत्थान पर विशेष बल दिया। यहाँ उस सर्वोच्च और निर्बाध प्रेम का एक साधन है जो उनकी दृष्टि में जीव की मोक्ष प्राप्ति या परम आनन्द प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

प्रश्नावली

१ सक्षेप मे शैववाद के मूलभूत सिद्धान्तो की व्याख्या कीजिये ।

२ आप शैववाद के वीर शैव और लिगायत सम्प्रदाय के बारे मे क्या जानते है ?

३ सक्षेप मे वैष्णववाद के प्रमुख सिद्धान्त समझाइये ।

४ भगवद्गीता के दर्शन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये ।

५ भगवान् वासुदेव की नारायण, हरि और विष्णु से किस प्रकार एकरूपता स्थापित की गयी, बताइये ।

६ वैष्णववाद की भगवद् प्रणाली समझाइये ।

७ भगवान् विष्णु के प्रमुख अवतारो का वर्णन कीजिये ।

८ निम्न विषयो पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए —

(१) भगवान् शिव
(२) भगवान् विष्णु
(३) सिंधु घाटी सभ्यता मे शैववाद
(४) शैववाद की पशुपत प्रणाली
(५) शैववाद का शैव सम्प्रदाय
(६) कश्मीर शैववाद
(७) शैववाद का लिंगायत सम्प्रदाय
(८) गणपति
(९) कार्तिकेय और
(१०) विष्णु के अवतार ।

———

बारहवाँ अध्याय

कनफ्यूशीअसवाद (कनफ्यूशी धर्म)

कनफ्यूशीअस धर्म उस दार्शनिक धर्म का नाम है, जिसका प्रस्तुतीकरण तथा उपदेश चीन के महान् दार्शनिक कनफ्यूशीअस ने किया था।

(अ) कनफ्यूशीअस (५५१-४७८ ई० पू०) की संक्षिप्त जीवन-कथा

ईसा के जन्म से ५५१ वर्ष पूर्व (वर्तमान शान-तुंग) प्रांत में जन्मे कुंग-फू-जी-कुंग द मास्टर (गुरु), जैसा कि उनके शिष्य उन्हें कहकर पुकारते थे, प्राचीन चीन के एकमात्र व्यावहारिक दार्शनिक थे। कुछ समय पूर्व तक उनकी प्रशंसा तथा आदर करने वाले उनके अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक थी।

जब कुंग का जन्म हुआ था, तब उसके पिता की आयु सत्तर वर्ष की थी, और जब उसके पुत्र की आयु ३ वर्ष की हुई, तब उनका देहांत हो गया। कुंग ने उन्नीस वर्ष की आयु में विवाह किया था, पर चार वर्षों के वैवाहिक जीवन के बाद, अपनी पत्नी को तलाक दिया, और फिर कभी विवाह नहीं किया।

कनफ्यूशीअस

बाईस वर्ष की आयु में उन्होंने अपना जीवन एक अध्यापक के रूप में आरंभ किया। अध्यापक के रूप में उनका प्रभाव बहुत अधिक था और वह उनकी मृत्यु के बाद भी कायम रहा। अध्यापक की हैसियत से अपने जीवनकाल में उन्होंने तीन हजार युवकों को प्रशिक्षित किया। ५० वर्ष से अधिक की आयु में उन्हें लू नगर का गवर्नर नियुक्त किया गया। गवर्नर की हैसियत से उन्होंने अपनी प्रशासकीय योग्यता, विलक्षणता तथा राजनैतिक विचारों में गहरी पैठ का अच्छा परिचय दिया। उनकी

मृत्यु ईसा से ४७९ वर्ष पूर्व हुई । अपनी मृत्युशय्या पर उन्होंने कहा था, "अब साम्राज्य मे कोई भी नही बचा है, जो मुझे अपना गुरु मानने को तैयार हो । वास्तव मे मेरा अत समय आ गया ।"

कनफ्यूशीअस के शिष्यो के अनुसार, "चार बाते थी, जिससे हमारे गुरु (कुग अर्थात् कनफ्यूशीअस) सर्वथा मुक्त थे । वे पूर्वाग्रहो से मुक्त थे, कभी मनमाने ढग से किसी निष्कर्ष पर नही पहुँचे थे, कट्टर नही थे तथा अहमन्यता से रहित थे ।" उनका सर्वाधिक समर्पित और निष्ठावान् शिष्य था—मेनसियम ।

(आ) कनफ्यूशीअस का दार्शनिक धर्म

कनफ्यूशीअस एक परम्परागत दार्शनिक के रूप मे—कनफ्यूशीअस वस्तुत रूढिवादी दार्शनिक थे । इसलिए वे अपने शिष्यो से सदा परम्परागत पूजा-विधियो तथा धार्मिक अनुष्ठानो, जैसे पूर्वजो की पूजा तथा राष्ट्रीय बलिदान-विधियो की पूरी सावधानी और निष्ठा के साथ पालन करने को कहा करते थे । उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने माता-पिता का आदर करे और उनके आदेशो का पालन करे—उनके जीवन मे तथा उनकी मृत्यु के बाद—उनका अतिम सस्कार परम्परागत धार्मिक विधियो के साथ करे ।

कनफ्यूशीअस एक नैतिक दार्शनिक के रूप मे—कनफ्यूशीअस के नैतिक दर्शन का सार-तत्व उनके लिखित प्रवचनो के निम्न पैराओ मे व्यक्त हैं :

"हमारे पूर्वज जब कभी पूरे साम्राज्य मे सर्वोच्च गुणो का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते थे, तो वह इसकी शुरुआत पहले अपने राज्यो की भलाई से करते थे । और अपने राज्यो की भलाई का काम वे पहले अपने परिवारो की भलाई की योजनाओ से करते थे । अपने परिवारो की भलाई को ध्यान मे रखकर वे पहले आत्मोद्धार पर जोर देते थे । आत्मोद्धार के प्रयासो से पूर्व वे अपने मन का परिशोधन करते थे, और अपने मन का परिशोधन करने से पूर्व वे अपने विचारो मे सच्चे होने का प्रयास करते थे । विचारो मे सच्चे होने का प्रयास करने से पूर्व, वे पहले अपने ज्ञान की परिधि का अधिकतम विस्तार करते थे और ऐसा अधिकतम विस्तार वस्तुओ के सही अन्वेषण से ही सभव है ।

"जब वस्तुओ का सही अन्वेषण होता है तो ज्ञान सम्पूर्ण हो जाता है और ज्ञान सम्पूर्ण हो जाता है तो विचार भी सच्चे हो जाते हैं । जब विचार सच्चे हो जाते हैं तो मन का भी परिशोधन हो जाता है । मन के परिशोधन के पश्चात्, आत्मोद्धार भी सभव हो जाता है । आत्मोद्धार के बाद परिवार की भलाई भी सभव है और परिवार की भलाई से राज्य पर सुशासन सभव हो जाता है । जब राज्यो पर अच्छा शासन होने लगता है तो सारा साम्राज्य सुखी और शात बन जाता है । इस प्रकार यह स्पष्ट

है कि विवेक और बुद्धिमानी की शुरुआत घर से ही होती है और समाज का आधार ऐसा अनुशासित व्यक्ति होता है, जो अनुशासित परिवार से आया हो।"

कनफ्यूशीअस एक व्यावहारिक दार्शनिक के रूप मे—कनफ्यूशीअस प्राचीन चीन के एक अत्यन्त व्यावहारिक दार्शनिक थे। वे उन देवताओ तथा वस्तुओ से, जिनसे मृत्यु के बाद साक्षात्कार होता है, अधिक पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यो के बारे मे चिंतित थे। इसलिए उन्होने सही ही कहा था, "जब तब मुझे जीवन के बारे मे पता नही, तब तक मृत्यु के बारे मे क्या पता लगेगा ? जब तक तुम मनुष्यो की सेवा नही कर सकते, तब तक देवताओ और प्रेतात्माओ की क्या करोगे ? आज मुझे किसी सत को पाने की आशा नही है, कोई सज्जन व्यक्ति मिल गया तो मुझे सतोष हो जायेगा।" उन्होंने आगे कहा, "कृपा का बदला कृपा से दो, पर बुराई का प्रत्युत्तर न्याय से दो।" उनकी व्यावहारिकता इस कथन मे भी प्रतिबिम्बित होती है "दूसरो के साथ वैसा व्यवहार न करो, जैसा दूसरो के द्वारा तुम अपने लिए नही चाहते। सबसे प्यार करो, पर मित्रता केवल अपनी बराबरी के लोगो से ही करो। अपनी अधिकाश शक्ति का उपयोग अपने मानसिक सुधार के लिए करो।" कनफ्यूशीअस कडे अनुशासन मे विश्वास करते थे। वे नियमो तथा विधियो का सख्ती से पालन करने मे भी विश्वास करते थे। इस प्रकार उनका दर्शन सबसे अधिक व्यावहारिक दर्शन था।

कनफ्यूशीअस राजनैतिक दार्शनिक के रूप मे—उनका राजनैतिक दर्शन इस प्रकार था :

प्रभुसत्ता लोगो के हाथ मे है · राज्य की प्रभुसत्ता उसकी प्रजा के हाथो मे होती है। इसलिए प्रत्येक शासक को लोगो का विश्वास जीतने का प्रयत्न करना चाहिए, नही तो देर-सबेर उसका अत सुनिश्चित है।

शासन आदर्श व्यवहार की श्रेष्ठता का प्रतीक बने · डा० विल डुरान्ट लिखते हैं · "शासक को आदर्श व्यवहार की श्रेष्ठता का प्रतीक बनना चाहिए। इससे उसके सदाचरण की वर्षा उसकी प्रजा पर भी होगी, अतएव शासन को अच्छे व्यवहार और आचरण का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए, जिसका अनुकरण उसके राज्य के अन्य लोग कर सके।"

योग्य तथा ईमानदार व्यक्तियों की नियुक्ति—शासक को योग्य और ईमानदार व्यक्तियो को ही नियुक्त करना चाहिए। "ईमानदार को काम दो, और बेईमान को दूर हटाओ। इस प्रकार बेईमानो को ईमानदार बनाया जा सकेगा।"

सुधार—दड नहीं—कनफ्यूशीअस ने अपने इस मत का प्रतिपादन किया कि आदमी को दड के स्थान पर उसके सुधार पर अधिक महत्व देना चाहिए। इस मत को व्यावहारिक रूप देने के लिए यह आवश्यक है कि सब वर्गों के लोगो को प्रशिक्षित किया

जाये। पर उन्होंने यह भी कहा कि लोगो को वे ही विषय सिखाये जाये, जो उनकी समझ मे आ सके।

आत्म-निर्भर राज्य—राज्य को यथासभव आत्म-निर्भर होना चाहिए तथा अन्य राज्यो से अन्तर्राष्ट्रीय सवध स्थापित करने से बचना चाहिए। इसके अतिरिक्त जब कोई राज्य आत्मनिर्भर होता है, और अपने लोगो के कल्याण और उनकी अच्छाई के लिए अन्य राज्यो पर निर्भर नही करता है, तो वह राज्य अन्य राज्यो के साथ युद्ध नही छेडता और उसे ऐसा करना भी नही चाहिए।

राष्ट्रीय सम्पत्ति का न्यायसगत वितरण—कनफ्यूशीअस ने यह खुले आम कहा कि प्रत्येक शासक का यह कर्तव्य है कि वह यथासभव राष्ट्रीय सम्पत्ति का न्यायसगत वितरण करे और जीवन की विलासपूर्ण वस्तुओ पर सार्वजनिक धन का अपव्यय न करे।

शासन तथा शासित मे अनुशासन—शासको तथा शासितो दोनो को नियम, अनुशासन, उचित आचरण तथा व्यवहार का अधिक से अधिक आदर करना चाहिए। जब आचार-व्यवहार का ह्रास होता है तो राष्ट्र का ह्रास भी आरभ हो जाता है। "अतएव जब महान् सिद्धातो का वोलवाला रहता है", डा० विल ड्यूरान्ट लिखते है, "तो सारा विश्व एक प्रजातत्र बन जाता है। लोग योग्य और प्रतिभाशाली व्यक्तियो को चुनते है, वे सत्यपूर्ण समझौतो की बात करते हैं, तथा विश्व-शाति की स्थापना करते हैं।" कनफ्यूशीअस ने स्वय को प्रेषक कहा, प्रर्वतक नही।

परोपकारी शासन—अत मे कनफ्यूशीअस ने ऐसे परोपकारी शासन का समर्थन किया, जो लोगो के कल्याण के लिए ही सक्रिय रहता है। वे हिंसक क्राति, आपसी घृणा तथा निरकुश-शासनवाद के प्रवल विरोधी थे। उनके कथनानुसार एक क्रूर और रक्तपिपासु शासक क्रूर सिंह से भी खराव हैं।

श्रेष्ठतर मनुष्य का आचरण—जी-लू नामक उनके एक शिष्य ने एक बार उनसे पूछा, "श्रेष्ठतर मनुष्य के लक्षण क्या है?" कनफ्यूशीअस ने उत्तर दिया "स्वय का श्रद्धामय प्रवर्धन।" कनफ्यूशीअस ने श्रेष्ठतर मनुष्य का निम्न चित्रण किया है, ऐसा आदर्श मनुष्य, जिसमे सत और दार्शनिक दोनो के गुण मौजूद हो। इन दोनो गुणो के सयोजन से ही आदमी पडित और विवेकी वनता है। कनफ्यूशीअस की कल्पना के अतिमानव मे ये चार परम गुण होते हैं बुद्धि, चरित्र, साहस और सद्भाव। "श्रेष्ठतर मनुष्य को इस वात की परवाह नही रहती कि वह निर्धन हो जायेगा, उसे इस वात की ज्यादा परवाह रहती है कि कही सत्य से उसका सबध न टूट जाये वह उदारमना होता है, अधभक्त नही उसे इस वात का पूरा ध्यान रहता है कि वह कोई गलत वात मुंह से न निकाले।" अतएव, वह ज्ञान का प्रेमी होता है। साथ ही वह उच्च नैतिक चरित्र वाला भी होता है। चरित्र का आधार है—सच्चाई। "वह बोलने से पहले कर्म करता है और वाद मे अपने कर्म के अनुसार वोलता है 'श्रेष्ठतर मनुष्य जो

हुआ और इसलिए वह ताओवाद से अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुआ। उसे हान, ताग और सुग राजवशो का एकनिष्ठ समर्थन प्राप्त हुआ। वे इतने अधिक लोकप्रिय बन गये कि लोग उन्हे देवतुल्य मानकर उनकी पूजा करने लगे।

वह एक पूर्ण आधार नहीं है—यद्यपि कनफ्यूशीअस धर्म ने अपने काल के समाज को अत्यधिक प्रभावित किया, तथापि उसके दर्शन को अपने आप मे आधुनिक समाज के लिए पूर्ण आहार नही माना जा सकता। किसी भी आधुनिक राष्ट्र के लिए वह एक बधन सिद्ध होगा। कारण, आधुनिक राष्ट्र अतरराष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता के कारण नित नये परिवर्तन करने और विशालतर बनने की होड मे लगे हैं। "इस धर्म मे आदमी की अन्त प्रेरणाओ, नैसर्गिक तथा ओजस्वी भावनाओ के लिए कोई स्थान नही है।"

आदमी नहीं, नियमो का शासन चाहिए—आधुनिक समाज का सफल प्रबध आदमी नही कर सकता। अर्थात् शासको के अच्छे उदाहरणो द्वारा और शासितो की अन्तर्निहित अच्छाई द्वारा। इसलिए यह आवश्यक है कि समाज आदमी द्वारा नही, बल्कि नियमो द्वारा शासित हो। ये नियम ऐसे होने चाहिए, जो शासक तथा शासित दोनो से ऊपर हो, और उनका सख्ती से पालन होना आवश्यक है।

पर, इस अध्याय की समाप्ति हम कुग-ची के इन शब्दो के साथ कर सकते हैं, "सर्व-समावेशी तथा अपार, वे (कनफ्यूशीअस) स्वर्ग के समान हैं। निर्झर के समान गहरे और सक्रिय, वह अगाध गर्त की भाँति हैं, वे देख जाते हैं और सब लोग उन्हे श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं, वे बोलते हैं तो सब उन पर विश्वास करते हैं, वे कर्म करते हैं, और सब को उससे प्रसन्नता होती है।"

प्रश्नावली

१ सक्षेप मे कनफ्यूशीअस की जीवन-कथा लिखिए।

२ सक्षेप मे कानफ्यूशी धर्म (कनफ्यूशीअसवाद) की धारणा की चर्चा कीजिए।

३ निम्न विषयो पर सक्षिप्त नोट लिखिए :—

(अ) कनफ्यूशीअस एक नैतिक दार्शनिक के रूप मे,

(आ) कनफ्यूशीअस का राजनैतिक दर्शन,

(इ) कनफ्यूशीअस की कल्पना का आदर्श पुरुष।

———

तेरहवाँ अध्याय

जरतुस्त (पारसी) धर्म

आरम्भ मे फारसवासियो का विश्वास था कि विभिन्न देवता, जैसे असुर, अनाहेता, मित्र और होमा प्राकृतिक वस्तुओ मे निवास करते हैं। जरतुस्त वे फारस-वासियो के इस पुराने धार्मिक विश्वास को हटाया और उनके धर्म 'जरतुस्त' धर्म को सवने अगीकार किया।

(अ) जरतुस्त की सक्षिप्त जीवन-गाथा

वास्तव मे, विश्व के सब महान् धर्म कुछ धार्मिक नेताओ की धार्मिक प्रस्तुतिया हैं। बौद्ध धर्म बुद्ध की प्रस्तुति थी, जैन-धर्म महावीर की, ईसाई धर्म ईसा (जीसस क्राइस्ट) और इस्लाम धर्म पैगम्बर मुहम्मद की। इसी प्रकार, जरतुस्त (पारसी) धर्म जरतुस्त की प्रस्तुति थी।

जरतुस्त

फारसवासियो की परम्परा से अनुसार ईसा के जन्म से कई सौ वर्ष पूर्व, जरतुस्त का जन्म ५७० और ६०० (ईसा पूर्व) ईरान मे कही हुआ था। स्वय अपने अनुयायियो मे वे जरतुस्त के नाम से जाने जाते थे, पर यूनानी लोग उन्हे जरतुस्त कह कर पुकारते थे। वदिदाद के अनुसार "वे अपने जन्म-दिवस पर ही वडे जोर से हँसे थे और प्रत्येक जन्म के अवसर पर एकत्र हो जाने वाले अप-दूत डर के मारे शोरगुल करते हुए भाग गये थे।" कुछ समय पश्चात्, वे समाज का परित्याग कर पर्वतीय क्षेत्रो मे चले गये, जहाँ उनकी भेट आहुरा-माजदा से, जो पर-मेश्वर तथा प्रकाश के देवता हैं, हुई। आहुरा-माजदा ने उन्हे ज्ञान तथा विवेक से पूर्ण अवेस्ता नामक ग्रथ देकर, उसके उपदेश पीडित मानवता को देने के आदेश दिये। एक लवे समय तक लोगो ने उनके उपदेशो पर कोई ध्यान नही दिया, और दुनिया ने उनकी अवहेलना की तथा लम्बी हँसी उडायी। जिस पहले व्यक्ति का मन-परिवर्तन करने मे वे सफल हुए, वह स्वय उनका रिस्ते से भाई लगता था। अत मे ये ईरान के शक्तिशाली राज्य विस्तास्व या हिस्तासपेस को अपने पक्ष मे करने मे सफल हो गये। इस राजा ने उनसे वायदा किया कि वह उनके नये धर्म का प्रचार अपनी प्रजा मे करेगा, तथा उसे लोकप्रिय वनाने का पूरा प्रयास करेगा। ऐसा विश्वास है कि जरतुस्त दीर्घ जीवन जीकर "विद्युल्लता की कौंध मे समाकर, ऊपर स्वर्ग की ओर चले गये।"

(व) जरतुस्त (पारमी) धर्म

जरतुस्त के आगमन से पूर्व, ईरान के लोग बहुदेववाद का पालन करते थे, तथा मित्र, मूर्य देवता, अनाहिता, उर्वरता तथा पृथ्वी की देवी और होमा, वृपभ-देवता की आराधना करते थे। वे मागी अर्थात् पुजारियो द्वारा किये जाने वाले बलिदानो मे भी विश्वास करते थे। जरतुस्त ने बलिदानो के लिये मागी का विरोध किया, बहुदेववाद की निन्दा की और स्वय अपने उपदेशो, अर्थात आहुरा-माजदा के सदेश का प्रचार किया।

अवेस्ता तथा आहुरा-माजदा—जरतुस्त के उपदेशो को जरतुस्त (पारमी) धर्म के रूप मे जाना जाता था। इस नये धर्म का धर्म-ग्रथ था अवेस्ता, जो कि जिद भाषा मे लिखा गया था। इस धर्म-ग्रन्थ मे इस धर्म के सस्थापक जरतुस्त के प्रवचनो और स्तुतियो का सग्रह है। काफी हद तक, यह धर्मग्रथ ऋग्वेद से मिलता है। पर ऋग्वेद के अनुयायी आर्य लोग जहाँ बहुदेववादी थे, वहाँ फारसियो ने एकेश्वरवाद का विकास किया। वे आहुरा-माजदा मे, जो "प्रकाश, पवित्र मन, सत्य, प्रभुत्व, धर्मनिष्ठा, कल्याण तथा अमरत्व" के प्रतीक थे, विश्वास करते थे। "मूर्य और चद्र उसके नेत्र हैं, वह सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का प्रतीक है।"

आहरीमन—जरतुस्त अपदूत के अस्तित्व मे विश्वास करते थे। अपदूत को आहरीमन या एग्रो मेन्यास कहा जाता था, जो कि तम-प्रसारको, पापियो, कपटियो और अहितेच्छुओ का स्वामी है। वह प्रत्येक मानव पर अपना अनिष्ट प्रभाव डालता है। ऐसा माना जाता है कि उसके अप्रतिरोध प्रलोभन के कारण ही आदि नर और आदि नारी ने नैतिक मार्ग का परित्याग कर, पाप मार्ग का अवलम्बन किया और इस प्रकार स्वर्गीय सुख से हाथ धो बैठे।

आहुरा-माजदा और आहरीमन का परस्पर विरोध—ईसाइयो की बाइबिल के साथ शैतान का भी उल्लेख है, अवेस्ता मे आहुरा-माजदा और उनके शत्रु आहरीमन के साथ हुए लबे—१२,००० वर्षों तक चलने वाले—सघर्ष का उल्लेख है। इस प्रकाण्ड और प्रचण्ड सघर्ष का पहला दौर ३००० वर्षों तक चला और इसमे आहरीमन ने आहुरा-माजदा पर विजय प्राप्त की। इस सघर्ष के दूसरे दौर मे, जो अगले ३००० वर्षों तक चला, आहुरा-माजदा ने आहरीमन को पराजित किया। ३००० वर्षों तक चलने वाले इस सघर्ष के तीसरे दौर मे आहरीमन फिर विजयी रहा। पर सघर्ष के ३००० वर्षों तक चलने वाले अन्तिम दौर मे आहुरा-माजदा ने आहरीमन को परास्त कर उसे पूर्णतया नष्ट कर दिया। इससे सिद्ध हुआ कि अन्त मे, भलाई की बुराई पर विजय होती है।

विश्व एक रस्साकशी—जरतुस्त के अनुसार विश्व "प्रकाश और अच्छाई के आदि स्रोत आहुरा-माजदा और बुराई और अधकार के आदि स्रोत आहरीमन के बीच

चल रही रस्साकसी और लडाई के लिए रगमच है। इस लडाई मे, अन्तत आहुरा-माजदा आहरीमन को पराजित करता है।" विश्व मे रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इन दोनो शक्तियो मे से एक को चुनना पडता है। यदि वह आहुरा-माजदा के साथ रहने का निश्चय करता है, तो माजदा के आदर्शो के लिये लडना तथा कार्य करना उसका कर्तव्य हो जाता है। इसके विपरीत, यदि वह पाप, बुराई और भ्रष्टता की ओर रहने का निश्चय करता है, तो वह आहरीमन के उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक होता है। पर, प्रत्येक सच्चरित्र आदमी आहुरा-माजदा के आदर्शों का समर्थन करता है और प्रत्येक झूठा आदमी आहरीमन के उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक होता है।

मनुष्य के तिहरे कर्तव्य—जरतुस्त की शिक्षा के अनुसार मनुष्य के कर्तव्य तिहरे और इस प्रकार हैं :—

(१) "जो अपना शत्रु है, उसे मित्र बनाना,
(२) जो दुष्ट है, उसे पुण्यात्मा बनाना, और
(३) जो अज्ञानी है, उसे ज्ञानी बनाना।"

शुचिता तथा सदाचारपूर्ण जीवन—ईसा, बुद्ध तथा अन्य धार्मिक नेताओ के समान, उन्होंने मन की पवित्रता, महिलाओ के प्रति आदर-भाव, सच्चरित्रता, सदाचार तथा न्यायप्रियता का उपदेश दिया। इन गुणो का पालन करने पर अमरत्व की प्राप्ति होती है। उनके अनुसार सर्वश्रेष्ठ गुण है—धर्मपरायणता। इसलिये आहुरा-माजदा देव की पूजा और भक्ति पवित्र मन से करनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त, उनके अनुयायी अग्नि को प्रकाश-देवता के पुत्र और अतर देवता के रूप मे मानकर सूर्य देवता के साथ पूजा करते है।

अन्तिम निर्णयन—अन्तिम निर्णयन के दिन, अन्त मे, सब पहाड-पहाडियाँ पिघल कर लावा बन जायेगी और प्रत्येक मानव को इस पिघली हुई लावा मे से गुजरना पडेगा। "धर्मात्मा को यह लावा गुनगुने दूध से ज्यादा गर्म प्रतीत नही होगा, पर दुष्ट और पापी को वह उबलते हुए पानी के समान गर्म लगेगा।"

इसके अतिरिक्त जरतुस्त ने अपने अनुयायियो को आदेश दिया कि वे मृतको को न तो गाडे, और न जलाये, बल्कि उसे शिकारी पक्षियों को खाने के लिये डाल दे, क्योकि मृतको को जमीन मे गाडने से जमीन सदूषित हो जाती है और उन्हें जलाने से वायु दूषित होती है। पर, शव को शिकारी पक्षियो को अर्पित करने से यह लाभ होता है कि इन पक्षियो को उनका भोजन मिल जाता है। इसलिये, भारत मे रहने वाले सब पारसी अपने मुर्दों को अपनी 'टावर आफ सायलेन्स' मे गिद्धो के सामने फेक देते हैं।

(इ) उसका ह्रास और महत्व

जैसे-जैसे समय बीतता गया, जरतुस्त का यह सरल और उदात्त धर्म अनेक धर्मविधियो, समारोहो तथा फारसी पुजारियो, मागी के जादूभरे मन्त्रो से सम्बद्ध हो

जाने के कारण पेचीदा हो गया। वे भगवान् के दृश्यमान प्रतीको—अग्नि तथा सूर्य—की पूजा करते थे।

जरतुस्त धर्म (पारसी धर्म) का यद्यपि ह्रास हो गया, तथापि उसके कारण महान् धार्मिक अर्थवेत्ताओ के परिणाम सामने आये। उसने फारसवासियो का चरित्र निर्माण किया और अनेक शताब्दियो तक उनके सामने उच्च आदर्शों को प्रतिष्ठित किया। हेरोडोटस के अनुसार, "झूठ बोलने का अपराध करने की अपेक्षा मर जाना बेहतर है।" बाद के अधिकाश धर्मों ने जरतुस्त धर्म मे बहुत-सी बातें सीखी। यहूदियो ने फारसियो से नरक और शैतान की कल्पनाओ को लेकर उन्हें ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म को दिया।

दुर्भाग्य से, इस सरल तथा उदात्त धर्म का आगे चलकर फारस से पुजारियों, राजाओ, सामन्तो तथा साधारण लोगो के कारण ही अध पतन हुआ। उन्होंने अजरतुस्ती विश्वासो, विचारो और व्यवहारो का समावेश इस धर्म मे किया। जिसके कारण प्राचीन मूल्यो एव मान्यताओ का पुन उदय हुआ।

प्रश्नावली

१ सक्षेप मे जरतुस्त की जीवन-गाथा की चर्चा कीजिए।

२ जरतुस्त धर्म की धारणा का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

३ निम्न विषयो पर सक्षिप्त नोट लिखिए :—

(अ) जरतुस्त,

(आ) अवेस्ता और

(इ) आहुरा-माजदा और आहरीमन।

———

चौदहवाँ अध्याय

यहूदियों का जूडावाद

(अ) जीवीकरणवाद, पशु-पूजा और बहुदेववाद

प्राचीन मिस्रवासियो, बेबीलोन निवासियो, असीरियावासियो, फोनिशिया-वासियो और कनानियो की ही भांति बनजारे यहूदियो ने जीवीकरणवाद, पशु-पूजा और बहुदेववाद को अपनाया।

जीवीकरणवाद—इनका अर्थ निर्जीव वस्तुओ और प्रकृति-पदार्थ जैसे चट्टाने, वायु, गुफाये, पर्वत और नदियो मे जीवन्त आत्माओ की परिकल्पना करना था। अत वे पेडो, चट्टानो, वायु, गुफाओं, पवित्र कुओं, झरनो और विशिष्ट बनावट के पत्थरो तक की जीवात्माओं की पूजा करते थे।

पशुपूजा—इसका अर्थ है पशु-देवताओ की पूजा। यहूदी बैल, भेड, मेमने और सांप जैसे पशु-देवताओ को भी पूजते थे।

बहुदेववाद—इसका अर्थ है बहुत से देवी-देवताओ मे विश्वास और उनकी पूजा करना। यहूदी कनानियो और अरेमियावासियो की भांति बहुत से देवी-देवताओ मे विश्वास करते थे। कनानियों के देवता तम्मुज़ और अब्राहम के देवता जेवोहा उनके सबसे महत्वपूर्ण देवता थे।

मूर्तिपूजा—यहूदी बाल देवता की प्रस्तर-प्रतिमाये बनाते थे। पूजा के निमित्त बनी इन मूर्तियो मे उन्हे सूच्याकार पत्थरो और सर्प-आवृत्तियो के माध्यम से चित्रित किया जाता था। बाल देवता की पूजा में हो रहे धार्मिक नृत्यो मे बच्चो की बलि चढाने का रिवाज था। लेकिन हज़रत मूसा और लेवाइटी लोगो ने मूर्तिपूजा और धार्मिक नृत्यो मे बच्चो की बलि चढाने के अपराध मे लगभग ३००० यहूदियो को मार डाला था।

(आ) एकदेववाद

एकदेववाद के अर्थ हैं एक ही देवता मे विश्वास किन्तु बिना इस बात पर बल दिये कि केवल वही अकेला देवता है अर्थात् हो सकता है कि बहुत से अन्य देवता हो, किन्तु मनुष्य को विश्वास एक ही देवता मे है। धीरे-धीरे यहूदी यावेह को ही एकमात्र राष्ट्रीय देवता मानने की अवधारणा मे विश्वास करने लगे थे। यावेह का अर्थ अभी भी अज्ञात है। यावेह का उद्‌गम कनान के एक देवता याहू मे ढूँढा जा सकता है, जिसकी कल्पना यहूदी लोग एक शक्तिशाली योद्धा के रूप मे करते थे। जन-श्रुति के अनुसार डेविड ने कहा था, "वह मेरे हाथो को युद्ध के लिए प्रेरित करता है।"

इस प्रकार यावेह् युद्ध, प्रतिशोध, डर, भयावहता और दहशत का देवता था, प्रेम, कृपा, दया, उदारता और आशा का नही। इसी कारण यहूदी धर्म निराशावादी, दु खी और उदासीपूर्ण था। इसके अतिरिक्त यहूदियों को विश्वास था कि यावेह् देवता पापियों को यहाँ तक कि पूरे राष्ट्र को निर्दयतापूर्वक दण्ड देंगे यदि उन्होंने कोई पाप किया। यावेह देवता की मनुष्याकृति भी थी, जिसमें उन्हे हाथ, पैर, आँखो और हृदय से युक्त दिखाया जाता था। इतना कुरूप देवता शायद ही कोई हो। इस प्रकार कई गौण देवताओ मे यावेह ही यहूदिया के प्रमुख देवता बन गये।

(ड) हज़रत मूसा के दस आदेश

ऐसा विश्वास है कि हज़रत मूसा अपने अनुयायियो को पवित्र पर्वत (सिनाई पर्वत) के नीचे ले गये, जहाँ उन्होंने केवल जेहोवा देवता को पूजने का निश्चय किया और देवता ने उन पर अनुकम्पा करने का वचन दिया। उन्होंने अपने चुने हुए अनुयायियो को दस आदेश देते समय यह स्पष्ट कर दिया था कि जब तक वे लोग इन दसो आदेशो का पालन करते रहेंगे प्रभु जेहोवा हर स्थान पर उनकी रक्षा करेंगे। यह दस आदेश इस प्रकार थे —

१ मैं प्रभु हूँ, तेरा देवता मेरे सम्मुख तेरा अन्य कोई देवता नही होगा ·· न तो तू उनका अभिनन्दन करेगा न ही उनकी सेवा।

२ दूसरे आदेश के अनुसार उनके राष्ट्रीय देवता यावेह की मूर्ति पूजा की मनाही की गयी। यद्यपि उनका राष्ट्रीय देवता सभी मानवीय गुणो से पूर्ण था, फिर भी उन्होंने उसे 'निराकार' मानने की चेष्टा की।

३ तू व्यर्थ मे ही अपने स्वामी, अपने प्रभु का नाम नही लेगा। इससे यहूदियो की असीम पवित्रता का बोध होता है, जो कभी अपने प्रभु का नाम नही लेते। यदि प्रार्थना मे भी यावेह का नाम आ जाता है, तो वह उसके स्थान पर उसे एडोनाई (प्रभु) कहकर पुकारते थे।

४ चौथे आदेश के अनुसार सप्ताह मे एक दिन शैबाथ (सप्ताह मे विश्राम का दिन) के रूप मे अवकाश रहेगा।

५ पाँचवे आदेश के अनुसार परिवार को समाज का आधार माना गया है। यावेह पत्नी को आदेश देता है, "तेरी इच्छाएँ तेरे पति तक सीमित रहेंगी, और वह तुझ पर शासन करेगा।" इसके अनुसार 'ब्रह्मचर्य' (विवाह न करना) पाप और अपराध था, बीस वर्ष के बाद विवाह करना पुजारियो तक के लिये अनिवार्य था। इसमे विवाह योग्य कुमारियो और सतानहीन नारियो की भी भर्त्सना की गई है।

६ तू हत्या नही करेगा।

७. सातवे आदेश के अनुसार विवाह परिवार का आधार था। डा० विल डुराट के अनुसार "कोई स्त्री प्रजनन से वचित नही रह सकती थी। यदि किसी का पति मर जाता तो पति के भाई को, चाहे उसकी पहले ही कितनी भी पत्नियाँ क्यो न हो, उससे विवाह करना पडता। पति का भाई न होने की दशा मे उसके निकटतम पुरुष सम्बन्धी पर यह भार होता।"

८. आठवाँ आदेश व्यक्तिगत सम्पत्ति के नियम को मान्यता देता है और इसे धर्म और परिवार के साथ जोडकर ही सभ्यता के तीन आधारो मे से एक बताता है।

९ नवे आदेश मे गवाहो से पूर्ण ईमानदारी की माँग है। तू अपने पडोसी के विरुद्ध झूठी गवाही नही देगा।

१० दसवाँ आदेश है, तू अपने पडोसी के घर, उसकी पत्नी, उसकी नौका, उसकी नौकरानियो, उसके बैल, उसके गधे या उसकी अन्य किसी वस्तु की इच्छा नही करेगा।

इन दस आदेशो का, जो हजरत मूसा के निदेश के रूप मे भी जाने जाते हैं, विशेष महत्व इस बात मे है कि इनके द्वारा यहूदी, आदिम सभ्यता को छोडकर, नये और महान् आदर्शों और धर्म एव चरित्र के मापदण्ड ग्रहण कर सके।

(ई) पैगम्बरो का कार्य

हीब्रू धर्म के बहुत से गुण उनके पैगम्बरो के कार्य को दृष्टिगत करते हैं। पैगम्बर अपने काल और समान के जिम्मेदार और दृढ समीक्षक थे। कई पैगम्बर हुए किंतु उनमे सर्वाधिक महत्वपूर्ण निम्न चार हैं :—१ अमोस, २ इसाइहा, ३ जर्मिहा, ४ एजीकील।

अमोस (७६० ई० पू०)—जूडा मे ७६० ई० पू० जो पहले पैगम्बर अवतरित हुए वे अमोस थे। वे एक सीधे-सादे गाँव के चरवाहे थे। कहा जाता है कि जेहोवा देवता ने अमोस को आज्ञा दी कि वे अपनी भेड-बकरियाँ छोडकर उनका सन्देश लोगो तक पहुँचाये। उन्होंने व्यञ्जनापूर्ण ढग से अमीरो के वस्त्र, वैभवशाली घर, सुन्दर फर्नीचर, दूषित जीवन और गरीबो के प्रति कठोर हृदयता अर्थात् सक्षेप मे अमीरो द्वारा गरीबो के शोषण पर प्रहार किये। उन्होंने कहा कि अत्याचार और सामाजिक अन्याय सम्पूर्ण देश के पाप थे और उन्होंने इसलिये इज़राइल के पतन की भविष्यवाणी की। यह पतन असीरियावासियो द्वारा इज़राइल के विजय के रूप मे ७३३ ई० पू० मे हुआ।

इसाइहा (७२४-६८० ई० पू०)—अमोस के कार्य को जारी रखने का कार्य इसाइहा ने किया। अन्य किसी भी पैगम्बर से अधिक यह बात इसाइहा ने यहूदियो के

समक्ष स्पष्ट करने की कोशिश की कि उनका देवता जेहोवा, उनका राष्ट्रीय देवता ही नही सम्पूर्ण जगत का ईश्वर है। यह पूरे जगत का स्वामी है। इसाइहा ने यह भी कहा कि सभी देश उसके हाथो के औजार हैं और वह एक के सुधार के लिये दूसरे का प्रयोग करता है। इस प्रकार असीरिया के सेनाचेरिब द्वारा यरुशलम का विनाश भी यहूदियो को उनके बुरे कामो के लिये सपूर्ण ससार के ईश्वर जेहोवा द्वारा असीरियावासियो के माध्यम से दिलाया गया दण्ड ही था। इसाइहा ही पहले पैगम्बर थे, जिनके विषय मे ज्ञात है कि उन्होने मसीहा के आगमन की भविष्यवाणी की थी। मसीहा जो कि यहूदियो के बीच आकर उनके राजनीतिक मतभेदो को उनकी परतन्त्रता और उनका दुःख दूर करके, विश्व बन्धुत्व और शान्ति के एक नये युग का प्रारम्भ करेगे।

इस प्रकार एक ऐसे स्वर्ण युग की भविष्यवाणी करके जिसमे न्याय की विजय होगी और अन्यायी को दण्ड मिलेगा, इसाइहा ने यहूदी धर्म को ऊँचे दार्शनिक धरातल पर पहुँचा दिया। उन्होंने ससार के दुखियो को भ्रातृत्व का ऐसा स्वप्न दिया, जो आने वाली अनेक पीढ़ियो के लिये एक दुर्लभ और अविस्मरणीय धरोहर बन गया।

जर्मिहा (६२५-५८६ ई० पू०)—जर्मिहा सम्भवत हजरत मूसा के वशज थे। जब बेबीलोन के नेब्चडनजार ने यरुशलम को फिर से विजय करके नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, तब उन्होंने बेबीलोन को प्रभु के हाथ का अस्त्र भर माना था, जो यावेह देवता की ही इच्छा से यहूदियो को उनके पापो का दड दे रहा था। उन्होंने यावेह देवता को सर्व विद्यमान, सर्वशक्तिमान और अतर्यामी बताया। इस प्रकार उन्होंने जूडा-वाद के मध्य एकेश्वरवाद की स्थापना की। उन्होंने यह भी उपदेश दिया कि धर्म बाहरी दिखावे का नही हृदय की वस्तु है और यह व्यक्ति विशेष और प्रभु के ही बीच का मामला है।

एजीकील (६ठी शताब्दी ई० पू०)—इसाइहा और जर्मिहा की ही भाँति एजी-कील ने भी व्यञ्जनात्मक ढग से मूर्तिपूजा और यरुशलम मे हो रहे भ्रष्टाचार एव अन्य अपराधो की आलोचना की। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति के लिए सही आकार के सुनहरे नियम की शिक्षा दी। उन्होंने पापो के लिये पिताओ और पुत्रो की सामूहिक जिम्मेदारी के पुराने यहूदी विश्वास का परित्याग किया। उन्होंने कहा, "पिता के अधर्म का दण्ड पुत्रो को नही मिलेगा और न ही पुत्रो के अधर्म का दण्ड पिता को मिलेगा। धार्मिक को अपने धर्म का फल मिलेगा और अधार्मिक को अपने अधर्म का दण्ड।"

यहूदी धर्म की महानता—यहूदी धर्म की महानता इस बात मे निहित है कि उसके द्वारा ससार को एकेश्वरवाद का यह श्रेष्ठ सिद्धात प्राप्त हुआ कि ससार का एक ही ईश्वर है, जो सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञाता और सर्वव्यापी है, जो दया, न्याय और विश्व-प्रेम का देवता है। किंतु जेहोवा को एक अविकसित, ईर्ष्यालु, लालची, चिड़चिडे, रक्त-

पिपासु और सनकी राष्ट्रीयदे वता से सर्व शक्तिमान, प्रेव, दया, उदारता और न्याय के सर्वोच्च देवता के रूप मे प्रतिष्ठित करना पैगम्बरो का ही कार्य था। हेब्रू धर्म के श्रेष्ठ सिद्धात ही ससार के दो महान् धर्मों—इस्लाम और ईसाई धर्म—ने अपनाया।

एक अर्थ मे ईसाई धर्म को तो जूडावाद का ही आगे का रूप माना जा सकता है, क्योकि ईश्वर-दूत सम्बन्धी ईसाई धर्म मे तो अधिकाश तत्व जूडावाद के ही है। जीसस क्राइस्ट स्वय भी यहूदी थे, यद्यपि अधिकाश यहूदियो ने उन्हे मसीहा या उद्धार-कर्त्ता मानने से इनकार कर दिया था। डब्ल्यू० एन० वीच का कहना है कि पैगवरो की शिक्षा के समक्ष अन्य कोई शिक्षा अभी तक नही पायी गयी। उनके लिये कोई वाहरी स्रोत नही था, जिससे वे अपने विश्वास को ग्रहण कर सकते। इसका प्रारम्भ और अस्तित्व दिव्य दर्शन से ही समव हुआ दीखता है।

प्रश्नावली

१ जूडावाद के विभिन्न तत्वो पर प्रकाश डालिये।

२ हज़रत मूसा और उनके दस आदेशो पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिये।

३ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये .—

(अ) यावेह देवता,
(आ) दस आदेश,
(इ) पैगवर अमोस,
(ई) पैगवर इसाइहा:
(उ) पैगवर जर्मिहा,
(ऊ) पैगवर इजीकील।

पद्रहवाँ अध्याय

ईसाई धर्म

(ब) ईसा का सक्षिप्त जीवन-इतिहास (४ ई० पू० से २६ ई०)

उनके माता-पिता—२५ दिसम्बर ४ ई० पू० को बैथेलम की एक घुडसाल मे, येरुशलम से लगभग ५ मील दूर, कुँआरी माँ मरियम के गर्भ से ईसा का जन्म हुआ। जोजेफ नज़ारेथ नामक एक बढई उसका धर्म पिता बना। इस समय आगस्ट्स रोम का सम्राट था और हैरॉड जुडा का राजा।

प्रभु ईसामसीह

नज़ारेथ के ईसा—ईसा ने अपने जीवन का अधिकाश भाग गेली स्थित नज़ारेथ मे बढई के रूप मे व्यतीत किया। उनका बपतिस्मा मेरी की चचेरी बहन एलिजाबेथ के पुत्र जॉन द्वारा जार्डन नदी मे हुआ, जिसने उन्हे मसीहा या रक्षक की सज्ञा दी। जॉन ने पापियो और दुष्ट व्यक्तियो की कडी भर्त्सना की। बपतिस्मा करने वाले जॉन का राजा हेराड की आज्ञा से वध कर दिया गया।

ईसा का व्यक्तित्व—जॉन के वध के पश्चात् ईसा ने बहुत उत्साहपूर्वक उसके कार्य को आगे बढाया। ईसा का व्यक्तित्व श्रेष्ठ, प्रीतिकर और विशिष्ट था जिसके कारण वह अपने जीवन काल और बाद मे भी अलग ही पहचाने जाते थे। वह अत्यन्त प्रेम करने योग्य, बुद्धिमान्, दया के स्रोत और मनुष्यो से प्रेम व सद्भाव बरतने वाले थे। भलाई करना ही उनका कार्य था। बाइबिल के अनुसार ईसा को दैवी शक्ति प्राप्त थी जिसके द्वारा वह पागलपन दूर करते थे, रोगी को पैरो पर खडा कर देते थे और अधे को दृष्टि, बहरे को श्रवण शक्ति, गूंगे को वाणी और मृतक को जीवन प्रदान करते थे। उन्होंने प्रेम, दया, पश्चाताप, विश्वास, अहिंसा और मोक्ष की धर्म-शिक्षा दी।

यहूदी पुजारियों के विरुद्ध ईसा—उन्होंने यहूदी पुजारियो की, जो ढोगी और भ्रष्ट थे, खुल्लमखुल्ला निंदा की। स्वाभाविक ही था कि वे उनके शत्रु बन गये और उन्हे समाप्त करने का यत्न करने लगे। उन्होंने सबके सम्मुख अपने को ईश्वर का पुत्र, एव मसीहा अर्थात् यहूदियो का उद्धारकर्ता रक्षक और राजा घोषित कर दिया।

ईसा और उनके बारह शिष्य—ईसा के बारह पट्ट शिष्य थे, अर्थात् जो उनके शिष्यो मे सर्वाधिक समर्पित और भक्त थे। वह इस प्रकार थे—(१) साइमन, जिन्हे अक्सर पीटर के नाम से जाना जाता है। (२) साइमन के भाई एन्ड्रू, (३) जेम्स, (४) जेम्स के भाई जॉन, (५) फिलिप, (६) फिलिप के भाई बारथोलोम्यू, (७) टामस, (८) मैथ्यू, (९) जेम्स, छोटा वाला, (१०) थैडेन्स, (११) साइमन देशभक्त और (१२) जूडास इकेरिऑट। ईसा ने अपने बारहो शिष्यो को आज्ञा दी कि वह जाकर प्रभु के सदेश का प्रचार करे, रोगियो को स्वस्थ करे, कोढियो का उपचार और दुष्टात्माओ को भगाये। उन्होंने उनसे कहा "तुम्हे बिना मूल्य दिये शिक्षा मिली है, अत तुम भी इसे "बिना मूल्य लिये दूसरो को बाँटो। अपनी जेब मे सोने, चाँदी या ताँबे के सिक्को के रूप मे धन मत रखो, रास्ते के लिए भिक्षुको का झोला साथ न रखो, न ही कोई फालतू कमीज, जूते या छडी। काम करने वाले के पास वही होना चाहिये, जिसकी उसे आवश्यकता हो।" इनके अतिरिक्त ईसा के ७२ और अनुयायी थे। अपने अनुयायियो और शिष्यो मे उन्होंने महान् आत्मिक निग्रह, सेवा की भावना, विनम्रता, दया एव लज्जाशीलता कूट-कूट कर भर दी थी।

सत पीटर

ईसा का पकडा जाना और सूली पर चढाया जाना—यहूदी पुजारी ईसा द्वारा यहूदी पुजारियो के दुष्ट, चरित्रहीन और भ्रष्ट जीवन की भर्त्सना किये जाने से बहुत अधिक नाराज़ हो गये थे। अत पुजारियो ने ईसा से बदला लेने और सदा के लिए उनका अन्त करने का निश्चय किया।

एक रात, ईर्ष्यालु और भ्रष्ट पुजारियो के इशारे पर, ईसा को रोम की पुलिस द्वारा राजद्रोह और ईश्वर निंदा के अपराध मे पकड लिया गया। जब उन्हे रोमन प्रतिनिधि पान्टियस पाइलेट के सम्मुख ले जाया गया, उसने ईसा से पूछा कि क्या उन्होंने अपने को यहूदियो का राजा घोषित किया है। ईसा ने उत्तर दिया, हाँ, क्योकि मैं सत्य के पक्ष मे बोलने को ही जन्मा हूँ। क्योकि उन्होंने स्वय को मसीहा, ईश्वर पुत्र और मानव-जाति का उद्धारकर्ता घोषित किया था, अत यहूदी पुजारियो की दृष्टि मे यह ईश्वर निंदा के दोषी थे और क्योकि उन्होंने स्वय को यहूदियो का राजा घोषित किया था, वह रोमन राज्य की दृष्टि मे राजद्रोही थे, यद्यपि पान्टियस पाइलेट को ईशा की निर्दोषिता मे पूरा विश्वास था, उसे रुष्ट यहूदी पुजारियो को सतुष्ट करने के लिए यीसू को सूली पर चढाये जाने की दडाज्ञा देनी पडी। ईसा को ३३ वर्ष की आयु

मे दो चोरो के साथ येरुशलम के सामने गालगोथा की पहाडी पर २९ ई० मे एक शुक्रवार के दिन सूली पर चढा दिया गया । यही दिन 'गुड फ्राइडे' के रूप मे मनाया जाता है ।

वहुत से पुजारी उन पर हँसे और यह कहकर खिल्ली उडाई—"ये दूसरो को वचाता था, पर स्वय को नही बचा सकता । यह तो इज्राइल का राजा है न ?" सूली पर चढाये जाते समय ईसा ने प्रभु से अपने यातना देने वालो को क्षमा करने की प्रार्थना यह कह कर की—"प्रभु, इन्हे क्षमा करो, क्योकि ये नही जानते कि ये क्या कर रहे है ।"

उनकी प्रकट असफलता—जब २९ ई० के दुर्भाग्यपूर्ण शुक्रवार को यीशु को फांसी पर चढा दिया गया तो लगा कि उनका उद्देश्य उस विशाल जनता की दृष्टि मे, जिसका विश्वास उनमे घट गया था असफल हो गया । उनके कुछ शिष्य तो पूर्णतया निराश और दु खी हो गये, वह अपने पीछे कोई ग्रन्थ या अपने शिष्यो द्वारा चलाया जाने वाला कोई कार्यक्रम भी नही छोड गये थे । रोम के राज्यपाल पान्टिपस पाइलेट ने इस सबको एक ऐसी मामूली-सी घटना समझा जो शीघ्र ही भुला दी जायेगी । पर ऐसा न होना था ।

उनका पुनर्जीवित होना—वाइविल के अनुसार, सूली पर चढाये जाने के तीसरे दिन, अर्थात् रविवार को, ईसा अपने शिष्यो से किये गये वादे के अनुसार पुनर्जीवित हो गये और अपने वारह शिष्यो और अन्य अनुयायियो के साथ चालीस दिन तक रहे और तव फिर 'स्वर्ग ले जाये गये ।' यीशु के शिष्यो और बाद के सभी ईसाइयो के लिए उनके पुनर्जीवित ने दु ख को सुख मे, निराशा को आशा मे, अविश्वास को विश्वास में, भय को साहस मे और असफलता को सफलता मे बदल दिया । उन्हें तब पूर्ण रूप से विश्वास हो गया कि वह ईश्वर-पुत्र ईसा मसीह ही थे, जो स्वर्ग से आये और उन्होंने मनुष्य जाति को पाप और अनन्त मृत्यु से वचाने से लिये अपने आपको सूली पर चढाये जाने दिया । वह रविवार, पुनर्जीवित के दिन से, प्रसन्नता और आशा के दिन 'ईस्टर' रविवार के रूप मे मनाया जाता है ।

(आ) प्रभु ईसा की शिक्षा

प्रभु ईसा की शिक्षा और उपदेश उनके चार शिष्यो मैथ्यू, मार्क, ल्यूक और जॉन द्वारा लिखे चार धर्म शिक्षाओ मे समाहित है । वह प्रभु ईसा की चार सक्षिप्त जीवनियाँ हैं । यह न्यू टेस्टामेट का एक भाग है । इसके साथ-साथ ईसाई यहूदियो के ओल्ड टेस्टामेट को भी मानते हैं ।

प्रभु ईसा की मूलभूत शिक्षा जो ईसाई धर्म के श्रेष्ठ सिद्धात और आदर्श बनी सक्षेप मे इस प्रकार है —

१ **तीन रूपी ईश्वर**—प्रभु ईसा ने ससार को बताया कि ईश्वर एक है, पर वह तीन व्यक्तियो का बना है—(१) स्वर्ग का ईश्वर पिता, (२) प्रभु पुत्र यीशु और

(३) पवित्र आत्मा (दि होली घोस्ट) ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और सर्वज्ञाता है। उन्होंने कहा—'प्रभु ईश्वर एक ही है और तू अपने स्वामी ईश्वर को अपने सम्पूर्ण हृदय, सम्पूर्ण आत्मा, सम्पूर्ण मस्तिष्क और सम्पूर्ण बल से प्रेम करेगा।''

२. आदम और हव्वा—आदम और हव्वा ईश्वर के बनाये दो सर्वप्रथम प्राणी थे। उन्होंने वर्जित फल खाया और इस प्रकार प्रभु और उनकी सृष्टि के बीच व्यवधान खड़ा कर दिया।

३. ईश्वर पुत्र और कुमारी मरियम—ईश्वर पुत्र अर्थात् ईसा मसीह स्वर्ग से आये और पवित्र आत्मा द्वारा वे कुमारी मरियम से उत्पन्न किया गया।

४ प्रायश्चित्त के लिये सूली चढ़ना—यशु ईसा स्वयं को सूली चढ़ाया जाना चाहते थे। ताकि आदम और हव्वा और उनके वंशजों के पापों का प्रायश्चित्त हो सके।

५ मानवता की सेवा—मानवता की सेवा द्वारा ईश्वर-प्राप्ति सम्भव है।

६ धार्मिक जीवन पर बल—ईसा ने अपने कार्यों, उनमे चरित्र और धार्मिक जीवन पर बल दिया। यह सही ही कहा गया है कि—''मोजेज परम्पराएँ और नियम बदल कर मनुष्यों का सुधार करना चाहता था। क्राइस्ट मनुष्यों को बदल कर परम्पराओं का पुनर्निर्माण और नियमों मे कमी करना चाहते थे।''

७ अपने साथी मनुष्यों के प्रति प्यार—ईश्वर को प्रेम और सेवा करने के कर्तव्य से अगले महत्व का कार्य मनुष्य द्वारा अपने साथी मनुष्यों को इतना ही प्यार करना है जैसा वह स्वयं अपने को करता है। उन्होंने कहा—''उनने दूसरो के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करे।''

८ प्रेम, दया और अहिंसा की धर्म शिक्षा—प्रभु ईसा ने अपने बारह सर्वात्मिक समर्पित और भक्त शिष्यों के सहित प्रेम, दया, पश्चाताप और मनुष्यों मे परस्पर बंधुत्व एवं ईश्वर को पिता समझने की शिक्षा दी।

८ पापियो के लिये आशा—पापियों को उनसे आशा और प्रेरणा मिली, क्योंकि उन्होंने उनको विश्वास दिलाया कि यदि वह सच्चे दिल से अपने पापो पर पश्चाताप करें और उन्हे फिर कभी न दोहराये तो प्रभु उन्हे क्षमा कर देंगे।

१० अमीर और गरीब—उन्होंने धन के लालचियो की निंदा की और गरीबो को स्वर्ग मे जाने का पूर्ण विश्वास दिलाया। ईसा ने स्पष्ट घोषणा की '''बच्चो, जो धन मे विश्वास करते हैं उनका ईश्वर के राज्य मे प्रवेश कितना कठिन है।'' शिष्य ईसा के इस कथन पर स्तब्ध रह गये। उन्होंने तब उनसे कहा—''ऊँट का सुई के नाके मे से निकल जाना अमीर व्यक्ति के ईश्वर के राज्य मे प्रवेश करने से अधिक आसान है।'' (मार्क)। उनके अनुसार मानवता की सेवा ईश्वर की सेवा थी।

११ **बुराई के बदले भलाई**—प्रभु ईसा ने अपने अनुयायियो को बुराई के वदले भलाई करने का आदेश दिया। उन्ही के शब्दो मे कहें तो—"तूने सुना होगा कि कहा गया। "आँख के लिये आँख और दाँत के लिये दाँत लो।" किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ—"अपने शत्रुओ को प्यार करो, जो तुम्हे श्राप दे उन्हे आशीर्वाद दो, जो तुमसे घृणा करें उनके साथ भलाई करो और जो तुम्हारे साथ द्वेषपूर्ण व्यवहार करे या यातना दें उनके लिए प्रार्थना करो।"

१२ **आत्म-निरीक्षण**—प्रभु ईसा ने अपने अनुयायियो को आज्ञा दी कि दूसरों मे दोष निकालने के वजाय वह स्वय अपने आचरण को परखे और अपने को पवित्र करे। उन्होंने अपने शिष्यो से इस प्रकार कहा—"यह सोच कर न्याय मत करो कि तुम भी न्याय पर परखे जाओगे। क्योकि जिस आधार पर तुम न्याय करोगे उसी आधार पर तुम्हारे साथ न्याय किया जायेगा। और जो नियति उसकी हुई है, वही तुम्हारी भी होगी। तुम दूसरे की आँख का तिनका भी देखते हो, अपनी आँख का शहतीर क्यो नही देखते।"

१३ **पश्चात्ताप न करने वाले पापी**—अविश्वासी और पश्चात्ताप न करने वाले पापी सदा चलने वाले नरक की न बुझने वाली आग और तृप्त न होने वाले कीडो द्वारा सताये जायेंगे।

१४ **मृतकों का पुनर्जीवन**—न्याय के अतिम दिन सब मृतको के पुनर्जीवित होने मे प्रत्येक को विश्वास करना चाहिए।

ईसाई धर्म की लोकप्रियता—ईसाई धर्म निम्न कई कारणो से लोकप्रिय हुआ। जैसे—(१) ईसा की शिक्षा बहुत सीधी-सादी थी और वह प्रत्येक द्वारा सरलता से समझी जा सकती थी। (२) उन्होंने अपने अनुयायियो को उच्च कोटि का नैतिक चरित्र रखने को कहा। (३) गरीबो के लिये, जो कि जनता का अधिकाश भाग थे, उनकी यह बातें विशेष महत्व की थी। (४) ईसा के शिष्यो मे उत्साह था और उन्होंने ईसा की धर्म-शिक्षा को रोमन साम्राज्य मे दूर-दूर तक फैलाया। (५) जब रोमन सम्राट् कान्स्टेन्टाइन ने ईसाई धर्म को वैज्ञानिक रूप से स्वीकार कर लिया तो लोगो को खुले रूप से ईसाई धर्म अपनाने की स्वतन्त्रता मिल गयी। (६) ईसाई धर्म मे बहुत अच्छी चर्च व्यवस्था थी जो उसकी मजबूत नीव सिद्ध हुई। आज ईसाई धर्म के अनुयायी पूरे ससार मे विशेषकर यूरोप और अमरीका मे हैं।

कान्स्टेन्टाइन महान्

प्रश्नावली

१ संक्षेप में ईसा का जीवन-परिचय लिखिये।

२ प्रभु ईसा की शिक्षाओं का आलोचनात्मक अध्ययन कीजिये।

३ ईसा को सूली पर क्यों चढ़ाया गया ?

४ संक्षेप में उन कारणों पर प्रकाश डालिए, जिनकी वजह से ईसाई धर्म लोकप्रिय हुआ।

५ निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—

(अ) प्रभु ईसा,

(आ) बारह शिष्य,

(इ) प्रभु ईसा का सूली पर चढ़ाया जाना, और

(ई) प्रभु ईसा का पुनर्जीवन।

सोलहवाँ अध्याय

इस्लाम

(अ) मोहम्मद (ई० सन् ५७०-६३२) का सक्षिप्त जीवन-परिचय

इस्लाम या मुस्लिम धर्म अरबी धर्मों मे से एक है, जिसका प्रवर्तन मोहम्मद नामक एक अरब ने किया। 'इस्लाम' शब्द का अर्थ है 'सलामती' और 'मुस्लिम' का अर्थ है—'वे लोग जो खुदा या अल्लाह की इच्छा के आगे आत्मसमर्पण कर देते हैं और मोहम्मद को खुदा का सबसे बडा और अंतिम पैगम्बर स्वीकार करते हैं।' मोहम्मद का जन्म अब्दुल्ला और अमीना के घर २९ अगस्त, ५७० ईस्वी को अरब के नगर मक्का मे हुआ।

मोहम्मद के पिता अब्दुल्ला मोहम्मद के जन्म से दो-एक दिन पूर्व ही स्वर्गवासी हो गये थे और जब मोहम्मद छ वरस के ही थे, उनकी माँ, अमीना का भी देहान्त हो गया। अत उनका पालन-पोषण उनके चाचा अबू तालिब के हाथो हुआ। बारह बरस की उम्र मे वह अपने चाचा के साथ एक काफिले के सदस्य के रूप मे सीरिया के नगर बोस्रा गये। जहाँ वह यहूदियो, ईसाइयो और पारसियो के सम्पर्क मे आये। चाचा के व्यापार के लिये मोहम्मद बहुत उपयोगी साबित हुये। पच्चीस बरस के हुये तो उन्होंने खदीजा नामक धनी विधवा के यहाँ नौकरी कर ली। खदीजा दो बार विधवा हो चुकी थी। वह मोहम्मद के जीवन्त व्यक्तित्व, उनकी साफ ईमानदारी, व्यापार-कुशलता और शालीनता से बहुत प्रभावित हुई और उनके इन गुणो ने खदीजा का हृदय जीत लिया। बाद मे उसने उनसे शादी कर ली।

मोहम्मद और खदीजा का दाम्पत्य जीवन बहुत सुखी था। उनके कई बच्चे हुये, लेकिन बच्चो मे से सभी लडके छोटी उम्र मे ही चल बसे। अत उन्होंने अपने चाचा अबू तालिब के अनाथ पुत्र, अली को दत्तक पुत्र बना लिया। अली का विवाह फातिमा से हुआ, जो मोहम्मद की सबसे छोटी बेटी थी। अली और फातिमा के दो बेटे हुये—हसन, जो बडे थे और हुसैन।

अपने मधुर व्यवहार और उच्च चरित्र के कारण शादी के कुछ दिनो बाद ही मोहम्मद अल-अमीन-यानी विश्वासपात्र—के रूप मे जाने जाने लगे। शादी के बाद बरसो तक वह मक्का की ही एक गुफा मे प्रार्थना और समाधि के लिये जाते रहे। कहते हैं, एक बार उन्होंने आसमान से एक आवाज सुनी 'तुम ही वह व्यक्ति हो, तुम खुदा के पैगम्बर हो' बाद मे उन्होंने दूसरी आवाज सुनी, 'अपने चोगे मे लिपटे ऐ इनसान, उठ और अपने खुदा को गौरवान्वित कर।' तब वह उठे और उन्होंने अपने

आपको पैगबर मान लिया, यानी खुदा की इच्छा को व्यक्त करने वाला खुदा द्वारा नियुक्त पुरुष। इस प्रकार उन्हे एक नया धर्म स्थापित करने की प्रेरणा मिली। इस सन्दर्भ मे वे यहूदियो तथा ईसाइयो के एक-ईश्वरीय विश्वास से भी प्रभावित हुये। खदीजा के सीरिया और फिलस्तीन जाने वाले काफिलों के साथ जाते हुये वह इन मतावलवियो के सपर्क मे आये थे। उन्होंने अपने नये धर्म का उद्घोष चालीस वर्ष की अवस्था मे किया। उनकी पत्नी खदीजा, अली, उनका मित्र अबूबक्र और उनका गुलाम जईद उनके सबसे पहले अनुयायी बने।

बाद मे मक्का के अधिकारी लोग पैगम्बर मोहम्मद की लोकप्रियता से चौकन्ने हो उठे। कुरैश कबीले के लोगो ने, जिनका मक्का की जनता पर बहुत अधिक दबदबा था, उन्हे झूठा और पागल कवि कहकर अपमानित किया और उन्होंने मोहम्मद को सजा देने के लिए मोर्चा जमा लिया। सौभाग्य से इन्हे मदीना के अधिकारियो की ओर से आमन्त्रण मिल गया कि वह वहाँ आकर अपने धर्म का प्रचार करे। (मक्का और मदीना अरब के दो प्रमुख नगर हैं,) इसी दौरान मोहम्मद की हत्या के इरादे से कुरैश कबीले ने मक्का मे कुरैश सघ का सगठन कर डाला। मोहम्मद और उनका मित्र अबूबक्र २० सितम्बर, ६२२ ईस्वी को मक्का से मदीना चले गये। इसी तिथि से एक नये सवत् की शुरुआत हुई, जिसे हिजरत कहा गया और सन् ६२२ मुस्लिम चन्द्र-सवत् का पहला वर्ष माना गया।

मदीना मे मोहम्मद ने लोगो का दिल जीत लिया। यहाँ उन्होंने यहूदी मन्दिर की तर्ज पर पहली मस्जिद बनवायी, एक शक्तिशाली सरकार की स्थापना की और उन्होंने कट्टर पथियो की एक फौज तैयार की जो मदीना के पास से गुजरने वाले काफिलो को लूटा करती थी। मोहम्मद हर साल तीर्थ-यात्रा के लिये मक्का जाते थे। अन्य मुसलमानो ने उनके इस उदाहरण का अनुसरण किया। मदीना मे अपनी स्थिति को सुदृढ कर लेने के बाद, मोहम्मद मक्का से सघर्ष के लिए तैयार थे। दोनो के बीच ६३० ई० तक अनेक बार मुठभेड हुई मोहम्मद की विजय हुई और वह मक्का के निर्द्वन्द्व स्वामी के रूप मे मक्का मे दाखिल हुए। सधि की शर्तों के अनुसार काबा के पवित्र पत्थर को मक्का के मन्दिर मे स्थापित रहने दिया गया तथा शेष सभी मूर्तियो को नष्ट कर दिया गया अस- सफा पर्वत शिखर पर मक्का के लोगो ने शपथ ली कि वे इस्लाम के सिद्धान्तो का पूरी ईमानदारी और आस्था से पालन करेंगे। मोहम्मद ८ जून, ६३२ ई० को स्वर्गवासी हुए। लेकिन तब तक पूरा अरब जगत राजनीतिक और आध्यात्मिक स्तर पर एक हो चुका था। मोहम्मद के उत्तराधिकारी खलीफा कहलाये।

(ब) कुरान

इस नये धर्म का बाइबल (या धर्म ग्रथ) कुरान है, जो कि मोहम्मद को अन्तिम और महानतम पैगम्बर घोषित करता है। इसमे मोहम्मद को अल्लाह द्वारा

उनको व्यक्त की हुई शिक्षाएँ, उपदेश तथा प्रवचन सम्मिलित हैं जिन्हें शिष्यो ने लिखा। मोहम्मद जो कुछ बोलते थे, शिष्य उसे लिखते जाते थे। मोहम्मद की मृत्यु के थोडे समय बाद इब ताबित ने इन सभी प्रवचनो आदि को पुस्तक का रूप दिया। अन्य धर्म-ग्रन्थो की तरह, कुरान भी प्रार्थना को बहुत महत्वपूर्ण मानता है, और इसमे नैतिक मान्यताओ, खुदा दृष्टि, प्रलय, जीवन के पूर्व-निर्धारण, मृतको के पुनरुत्थान और कयामत के दिन आदि का वर्णन मिलता है।

कुरान मे आये विषयो और शैली पर हिब्रू पैगम्बरो के ग्रथो और यहूदी रीति-रिवाजो का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। खतना और सूअर के गोस्त से पहरेज आदि अनेक मुस्लिम रूढियाँ भी हिब्रू लोगो से ली गयी हैं। कुरान मे ११४ सूरा या अध्याय आये हैं और अरबी भाषा मे इसमे करीब ७८,००० शब्द हैं। हर मुसलमान का यह विश्वास है कि कुरान का हर शब्द अल्लाह की प्रेरणा से आया है।

(स) पैगम्बर मोहम्मद की शिक्षाएँ

पैगबर मोहम्मद की शिक्षाएँ निम्नलिखित हैं —

(१) **एक ईश्वरवाद**—जीसस क्राइस्ट के विपरीत, जो कि एक-मे-तीन ईश्वर मे विश्वास करते थे, मोहम्मद ने उपदेश दिया कि ईश्वर (अल्लाह) सिर्फ एक है, जो सर्वशक्तिमान, सर्व-योग्य और सर्व दयावान है और सब कुछ उसी पर निर्भर करता है। मोहम्मद अल्लाह के अन्तिम और महानतम पैगम्बर हैं। हर मुसलमान को अरबी भाषा में अपनी आस्था के सबध मे यह घोषणा करनी पडती है—ला, 'इलाह इलल अल्लाह। मोहम्मद रसूल अल्लाह', जिसका अर्थ है—'अल्लाह एक है। उसके सिवा और कोई खुदा नही है और मोहम्मद उसके पैगम्बर हैं।' अल्लाह सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है। उसका कोई आकार नही है। अत मूर्तिपूजा नही होनी चाहिये।

(२) **मरणोपरान्त जीवन तथा नर्क और स्वर्ग**—जीसस की तरह ही मोहम्मद ने भी मरणोपरात जीवन तथा कयामत के दिन की बात की है, जब सभी लोग जो कुछ उन्होने धरती पर जीवित रहते हुए बोया था, उसका फल पायेंगे। अधर्मी लोग 'नर्क' मे,'अनन्त दडो और जलाती हुई यातनाओ के भागी होंगे।' कुरान का ईमानदारी से पालन करने वाले लोग स्वर्ग जायेंगे जहाँ खूबसूरत हूरें उनकी सेवा करेंगी, जिनकी आँखें मोतियो सी हैं, ओठ मिसरी से हैं और गाल चन्द्रमा से हैं और उनकी सभी सुख-सुविधाओ का ध्यान रखेंगी।

(३) **नैतिकता के सिद्धान्त**—जीसस की तरह ही मोहम्मद ने भी अपने अनुयायियो के लिए नीति-सहिता प्रदान की है। यह सहिता माँ-बाप का आदर करने, जरूरतमदो को दान देने, गरीबो, रोगियो, अनाथो और विधवाओ के साथ हमदर्दी से पेश आने, पीडितो पर दया करने और सभी के साथ न्याय करने का आदेश देती है।

इसके अनुसार जुआ, अपराध, सूअर का गोश्त और मद्यपान निषिद्ध है। संहिता यह उपदेश भी देती है कि स्त्रियो का आदर किया जाना चाहिये तथा पूरी मानवता को एक बिरादरी के रूप मे माना जाना चाहिये।

४ अल्लाह की पूजा और प्रार्थनाएँ—कुरान अपने पालको को आदेश देता है कि वे व्यक्तिगत रूप से दिन मे पाँच बार, तथा समष्टिगत रूप से हर शुक्रवार को प्रार्थना करे, (मोहम्मद के हर अनुयायी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह (१) सूर्योदय से पहले, (२) दोपहर बाद, (३) सूर्यास्त से पहले, (४) सूर्यास्त के बाद और (५) सोने से पहले, पाँच बार प्रार्थना करे।

५ रमजान का उपवास—रमजान के पूरे महीने मे हर मुसलमान को सूर्योदय से सूर्यास्त तक हर रोज उपवास रखना पड़ता है। फिर भी रोगियो, बच्चो और लबी यात्राओ पर निकले लोगो को इस उपवास से छूट दी गयी है। रमजान पवित्र महीना माना जाता है, क्योकि रमजान के महीने मे ही फरिश्ते गैब्रील के माध्यम से मोहम्मद को ईश्वरीय ज्ञान का अनुभव हुआ था।

मक्का का काबा

६ मक्का की तीर्थ-यात्रा—कुरान हर सच्चे मुसलमान का आह्वान करता है कि वह जीवन मे कम से कम एक बार मक्का की तीर्थ-यात्रा—यानी 'हज'—जरूर करे और 'हाजी' की उपाधि प्राप्त करे। हर हाजी काबा के पवित्र मदिर की सात बार परिक्रमा करता है और हर परिक्रमा के दौरान वह एक छोटे-से काले पत्थर का चुम्बन लेता है। इस प्रकार मुसलमानो की हज समाप्त होती है। रोजाना की प्रार्थना के समय दुनिया का हर मुसलमान मक्का और काबा की ओर मुख घुमा लेता है।

७ स्त्रियो का स्थान—कुरान मे बहु-विवाह की छूट दी गयी है। हर मुसलमान चार बीवियाँ तक रख सकता है। औरतो को अलग रहने के लिए कहा गया है और

उनके-निवास स्थान को 'हरम' कहा जाता है। जब भी उन्हे हरम से बाहर जाना हो, उन्हे भारी पर्दों मे जाना चाहिए। मोहम्मद के बारे मे यह लिखा मिलता है कि उन्होंने अपने दत्तक पुत्र जईद की तलाक शुदा बीबी जैनब मे शादी कर ली थी, जिसमे बुतपरस्तो के बीच काफी हो-हल्ला मचा था, क्योकि उनके विचार मे यह शादी एक घोर अपराध था।

इस्लाम का तेजी से विस्तार—इस्लाम का बडी तेजी से दूर-दूर तक विस्तार हुआ। इसके अनेक कारण थे, जैसे—(१) यह एक ऐसा धर्म था, जिसमे पुजारियो, संस्कारो और रीतियो के लिए कोई स्थान नही था, (२) यह एकदम सादा धर्म था, (३) मोहम्मद एक महान् धार्मिक और सैनिक नेता थे, (४) अबूबक्र और उमर जैसे कुछ खलीफा असाधारण उत्साह से भरपूर व्यक्ति थे और उन्होंने इस्लाम का विस्तार चारो दिशाओ मे किया और (५) हर रोज बढती हुई इस्लामी सेनाओ को पश्चिम एशिया और उत्तर अफ्रीका के देशो मे किसी तरह से सुदृढ विरोध का सामना ही नही करना पडा और वहाँ के लोगो ने बडी आसानी से इस्लाम को स्वीकार कर लिया।

प्रश्नावली

१ पैगबर मोहम्मद की संक्षिप्त जीवन-कथा लिखिए।

२ इस्लाम के प्रमुख सिद्धातो की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

३ निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ दीजिए—

(अ) पैगबर मोहम्मद, (आ) इस्लाम,
(इ) अल्लाह, (ई) इस्लाम की नीति-सहिता तथा
(उ) कुरान।

सत्रहवाँ अध्याय

सामंतवाद

(अ) सामतवाद का अर्थ, इसके कारण और स्रोत

सामतवाद का अर्थ—सामतवाद मध्य युग के सर्वाधिक जटिल घटना-वृत्तो मे से एक था। एक प्रणाली के रूप में सामतवाद का सामान्यीकरण करना बहुत कठिन है, क्योकि इसका प्रसार पश्चिमी यूरोप के प्राय हरेक भाग मे हो गया था, भले ही स्थान और व्यक्तियो के अनुसार इसके रूप मे थोडा-बहुत परिवर्तन भी नजर आता था। इसी कारण सामतवाद का कोई एक सुनिश्चित रूप नजर नही आता और इसी वजह से इसे एक प्रणाली के रूप मे भी स्वीकार नही किया जा सकता। बहरहाल, सामान्यतया, सामतवाद अपनी प्रकृति मे करीब-करीब हर जगह एक-सा ही था। इस नाम के सीमित, तकनीकी अर्थो मे, बिशप विलियम स्टब्स (Bishop William Stuffs) के शब्दो मे सामतवाद "जागीरदारी के माध्यम से समाज की पूर्ण व्यवस्था है, जिसमे राजा से लेकर निम्नतम स्तर के भू-स्वामी तक सभी लोग सेवा और सुरक्षा की जरूरत से एक-दूसरे मे बंधे हैं कि स्वामी प्रजा की रक्षा करे और प्रजा अपने स्वामी की सेवा करे।"

इस तरह की प्रणाली मे, भूमि प्रजा को स्वामी की जागीर के रूप मे मिलती है, और बदले मे प्रजा को स्वामी की सेवा करनी होती है और प्रजा पूरी तरह से अपने स्वामी के प्रति वफादार होती है। मोटे तौर पर कहें तो "सामतवाद" शब्द एक तरह की सभ्यता और समाज के एक रूप का प्रतीक है, जिसमे "स्वामियो, प्रजा और जागीरो के अलावा कुछ सामान्य गुण भी मौजूद हैं।"

सामतवाद के स्रोत—सामतवाद प्रारंभिक रोमन, जर्मन और सभवत कैल्टिक (Caltic) पद्धतियो के मिश्रण के रूप मे विकसित हुआ—इन पद्धतियो को समय के अनुरूप ढालने के लिहाज से इनमे सुधार या परिवर्तन जरूर किया जाता रहा। सामती प्रणाली धीरे-धीरे दो महान्, सुस्थापित सस्थाओ में से विकसित हुई। ये सस्थाएँ थी "हितकारी" (Beneficiery) तथा "सरक्षण" (Commendation)।

हितकारी—हितकारी प्रणाली की शुरुआत छोटे तथा निर्बल जमीदारो द्वारा बडे, सशक्त जमीदारो या गिरजो को भूमि दे देना भी था। यह भूमि इन छोटे जमीदारों को इजारेदारो के रूप मे वापस मिल जाती थी और वे बडे जमीदारो और चर्च के

सेवक के रूप मे कार्य करते रहते थे। आठवी या नवी शताब्दी मे यूरोप के पश्चिमी भागों के लोगो पर उत्तरी हिंस्र जातियो ने कई बार हमले किये और बाद मे कैरोलिंजियाइयो की केन्द्रीय सत्ता लोगो की रक्षा कर पाने मे असफल रही। अत हितकारी पद्धति के प्रबंध के मुताबिक छोटे और कमजोर आदमी ने, जो अपने आपको असुरक्षित महसूस करता था, अपने सशक्त पडोसी सरदारो के किलो मे शरण ले ली—साथ ही अपनी जमीन भी उसी को सौंप दी। बडे सरदार बाद मे उस भू-खड को वापस उन छोटे-छोटे जमीदारो को ही सौंप देते थे, जो सरकार के इजारेदार के रूप मे उसमें खेती करते थे और वे बडे सरदार को किराया या शुल्क देते थे। इस प्रकार छोटा, कमजोर, स्वतत्र जमीदार बडे सरदार के पराधीन किरायेदार मे तब्दील हो गया।

सरक्षण—सामतवाद का एक अन्य स्रोत सरक्षण पद्धति का चलन था। इसके अनुसार कमजोर और निचले दर्जे का आदमी अपने आपको शक्तिशाली सरदार के सरक्षण मे सौंप देता था, लेकिन इससे उसकी सपत्ति के स्वामित्व का दर्जा परिवर्तित नही होता था यद्यपि वह बडे सरदार की प्रजा बन जाता था। प्रजा के रूप मे वह अपने स्वामी को पारपरिक ढग से श्रद्धार्पण करता था। तभी से वह बडे सरदार का 'अपना आदमी' हो जाता था।

इस प्रकार काश्तकार और प्रजा ने सुरक्षा प्राप्त करने के लिए अपनी आजादी को दान कर दिया। अशाति के उस युग मे सुरक्षा की कीमत आजादी से ज्यादा थी। हलचल भरी नवी शताब्दी मे यह प्रक्रिया और भी तेज हो गयी। "हितकारी बधन के सरक्षण से जुड जाने से" बिशप विलियम स्टब्स कहते हैं, "सामती जरूरत का विचार पूर्ण हो गया, स्वामी और प्रजा के भूमि पर दोहरे अधिकार मे दोहरी जिम्मेदारी भी आकर जुड गयी—कि सरदार प्रजा की रक्षा करेगा और प्रजा उसके प्रति स्वामिभक्त रहेगी।"

मुक्ति-दान—सामतवाद के विकास मे योगदान देने वाला तीसरा तत्व मुक्तिदान था जिसके अनुसार इग्लैंड की ही तरह, फ्रैंक (Frank) साम्राज्य मे भी भूमि-स्वामित्व को न्याय-व्यवस्था के अधिकार से जोड दिया गया। इस प्रकार काश्तकार और प्रजा अपने सरदारो के न्याय-क्षेत्र के तहत आ गये और वे राजा के नियत्रण से मुक्त हो गये। इसके परिणामस्वरूप राजा के अपने अधिकार-क्षेत्र में ही अनेक छोटी-छोटी, स्वतत्र, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक इकाइयो की स्थापना हो गयी। इस तरह की हर इकाई अपने स्वामी के आधिपत्य मे अपना निजी, अन्य इकाइयो से कटा जीवन व्यतीत करती थी।

वैयक्तिक हाथो मे राजकीय शक्तियाँ—केन्द्रीय शासन ज्यो-ज्यो कमजोर पडता गया, सरदार, सामत और कैरोलिंजियाई साम्राज्य के बाद के उच्चवर्गीय सामत

(Duke) ज्यादा से ज्यादा शक्तिशाली और स्वतन्त्र होते गये । चूँकि शासन की सबसे बडी जिम्मेदारियो में से एक—यानी शाति और व्यवस्था बनाये रखने और प्रजा की सुरक्षा का ध्यान रखने का काम उनके हाथ मे था, इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि इन सरदारो, सामतो तथा उच्चवर्गीय सामतो के पास प्रजा पर शासन करने के भी पर्याप्त अधिकार थे ।

"जैसे-जैसे समय बीतता गया, सामतो और बडे सामतो का पद वशानुगत होता चला गया, और इस प्रकार वे अपने-अपने प्रशासनिक क्षेत्रो के स्वाभाविक शासक बनते चले गये, और करीब-करीब हर नजर से, वे राजा के अधिकारी के पद मे स्वतन्त्र होते चले गये, यद्यपि वे राजा को तब भी अपने से ऊपर स्वीकृति या मान्यता देते थे । इसी कारण छोटे सरदारो ने भी शासनिक अधिकारो को अपने हाथ मे लेना शुरु कर दिया और वे अपने-अपने प्रशासनिक क्षेत्रो की प्रजा के शासक बनते चले गये—कारण सिर्फ यही था कि ऐसा करने के लिए उनके पास ताकत मौजूद थी ।

इस प्रकार सामती प्रणाली का जन्म हुआ यानी "न्याय-व्यवस्था की एक धीरे-धीरे विकसित होने वाली प्रणाली का जन्म", बिशप विलियम स्टब्स लिखते है, "इसका आधार भूमि स्वामित्व था, जिसमे प्रत्येक भू-स्वामी अपने से नीचे के वर्ग का न्याय करता था, उनसे कर वसूल करता था और उस पर शासन करता था, जिसमे घोर गुलामी सबसे नीचे का तथा गैरजिम्मेदाराना अनाचार सबसे ऊपर का दर्जा बन गये थे, और जिसमे आपसी लडाइयों, निजी सिक्को के चलन तथा निजी कारागृहो ने सरकार की शाही संस्थाओं का स्थान ले लिया ।"

(आ) महत्वपूर्ण सामती शब्दावली तथा रीतियाँ

सामतवाद को समझने के लिए सबसे पहले यह जरूरी है कि कुछ सामती शब्दो के अर्थ और गुह्यार्थ तथा रीतियो को समझ लिया जाये, इनकी व्याख्या नीचे की जा रही है ।

स्वामी—सामती भूखड के मालिक को "भूस्वामी" या सिर्फ "स्वामी" या "अधिपति-जमीदार" के नाम से जाना जाता था ।

खेतिहर—खेतिहर जमीन में खेती करने वाला काश्तकार था । आमतौर पर वह भी सामत ही होता था और कई बार एक खेतिहर के नीचे अनेक अन्य खेतिहर भी होते थे—यानी ऐसे लोग, जिनके पास उसकी ही जमीन होती थी ।

जागीर—खेतिहरो को मिली भूमि या दूसरी सपत्ति "जागीर" कहलाती थी । (इसी शब्द से सामतवाद या 'जागीरदारी प्रथा' का अग्रेजी शब्द 'फ्यूडलिज्म' निकल कर आया है ।) शुरू-शुरू मे, जब खेतिहरो के पास खेतिहर के रूप मे ही जमीन का कोई टुकडा होता था, तो उसे "हितकारी" भूमि का नाम दिया जाता था, जैसा कि ऊपर

लिया जा चुका है, लेकिन जैसे-जैसे समय निकलता गया और जब "हितकारी" भूमि वंश-परंपरा मे मिलने लगी, और पिता द्वारा बेटे और फिर उसके बेटे को प्राप्त होने लगी, तो इसे 'जागीर' कहा जाने लगा।

श्रद्धार्पण और विधिपूर्वक पद-नियुक्ति (Homage and Investiture)—श्रद्धार्पण एक रीति थी, जिसके अनुसार खेतिहर अपने स्वामी के भरे दरबार मे नगे सिर, नगे पांव और बिना किसी शस्त्र के लिये प्रस्तुत होता था और अपने स्वामी के हाथो मे अपने हाथ देकर "उसका आदमी" (Homme) होने तथा स्वामिभक्त बने रहने की शपथ लेता था।

इसके बाद स्वामी, शपथ के उत्तर मे, पदनियुक्ति की रीति को निभाता था, जिसके अनुसार वह खेतिहर को ऊपर उठाकर उसका चुबन लेता था, उसे उसकी 'जागीर' की नियुक्ति देता था और उसे भाला या नेजा, या छडी, या ध्वज, या डडा उसे दी गयी जागीर और सुरक्षा के प्रतीक के रूप मे कोई अन्य चीज भेट देता था। ऐसा होते ही स्वामी का यह कर्तव्य हो जाता था कि वह अपने खेतिहर की "सुरक्षा, मैत्री, विश्वासपात्रता और आर्थिक तथा वैधानिक सहायता देने का जिम्मा ले।"

सामती अनुबंध—स्वामी और खेतिहरो के बीच के आपसी सबध पूरे यूरोप में एक से नही थे। फिर भी उनकी प्रकृति अनुबधो जैसी ही होती थी, जिनका विकास परपरा से हुआ था और जिनका चालन जनमत से होता था। इन सामती अनुबधो मे, पश्चिमी यूरोप के सम्राट् और राजा, उसके उच्चवर्गीय सामत और सरदार यहाँ तक कि कस्बे, नगर और चर्च भी आ जाते थे।

स्वामी के कर्तव्य—सामत-स्वामी का सबसे पहला कर्त्तव्य था अपनी भूमि और उसके वासियो (यानी अपने खेतिहर) की हमलावरो और लुटेरो से सैन्य-शक्ति द्वारा रक्षा करना। दूसरे, अपने खेतिहरो के झगडो को निवटाने और न्याय करने के लिए उसे अपने इलाके मे अदालत लगानी पडती थी। अन्त मे, उसे अपने से ऊपर के सरदार या सामत या राजा की, युद्ध के दौरान सेवा करनी पडती थी।

खेतिहरों के कर्तव्य—मोटे तौर पर, खेतिहरो के अपने स्वामी के प्रति तीन तरह के कर्त्तव्य होते थे—सरकारी, आर्थिक और सैन्य। सरकारी कर्त्तव्यो के अनुसार खेतिहरो को एक खास अतराल के बाद या जब भी उनसे कहा जाये, स्वामी के दरबार में पेश होना पडता था और उन्हे वे सभी कार्य करने पडते थे जो स्वामी उनसे करने को कहता था। खेतिहरो के आर्थिक कर्त्तव्य ये थे कि उन्हे समय-समय पर अपने स्वामी को आर्थिक सहायता देनी होती थी, जैसे स्वामी की बेटी की शादी के मौके पर, सरदार के सबसे बडे लडके के सरदार बनाये जाने के समारोह के मौके पर तथा जब कभी भी स्वामी को बदी बना लिया जाता था और शत्रु उसे मुक्त करने के लिए धन की मांग करता था। यह आर्थिक सहायता खेतिहरो की जागीरों के अनुपात में ही होती

थी। ये विशिष्ट अनुदान सामती "सहायताएँ" कहलाती थी तथा अन्य सभी सामती भुगतानो की तरह, इनका नियमन भी परपरा से ही होता था।

खेतिहरो के सैन्य कर्त्तव्य पश्चिमी यूरोप मे सामतवाद के उदय और विलास के एक प्रमुख स्रोत थ। हर खेतिहर का यह कर्त्तव्य था कि वह व्यक्तिगत तौर पर, एक सरदार के रूप मे, साल मे चालीस दिनो तक अपने स्वामी (या अगर उसके एक से ज्यादा स्वामी हो तो, स्वामियो) को सैन्य सेवा प्रदान करे।

सामंती दर्जे—स्वामी और खेतिहर अपने "कुलीन वशीय जन्म" के कारण साधारणजन से अलग माने जाते थे। वे सैन्य अभिजात्य का अग थे और शारीरिक श्रम करने वाले लोगो से ऊपर थे। उनके दर्जे अलग थे· राजा से एकदम नीचे ड्यूक (Dukes) होते थे, और उनके वाद मार्क्विस (Marquises) तथा काउट (Counts) का क्रम आता था, इग्लैंड मे उन्हे अर्ल (Earls) तथा वैरन (Barons) कहा जाता था। ये सभी कुलीन सामत सरदार के नाम से जाने जाते थे।

वहादुर

किसी भी स्वामी की ताकत का अदाज, इसीलिये, उसके तहत आनेवाले सरदारो की गिनती से ही लगाया जाता था।

राजा का दर्जा —सैद्धातिक रूप मे राजा सामन्ती प्रणाली में सर्वसत्ता सम्पन्न होता था, लेकिन यथार्थ मे, डा० विल ड्यूरेंट (Dr Will Durent) के शव्दो मे "वह राजकुमारो, सामन्तो (ड्यूको, मार्क्वियो और काउट आदि) से एकाध इच ही ऊपर होता था। वह महज एक बडा जमीदार होता था—जरूरी नही कि सवसे वडा ही हो—और उसकी सम्पत्ति चर्च के वरावर कभी नही होती थी।"
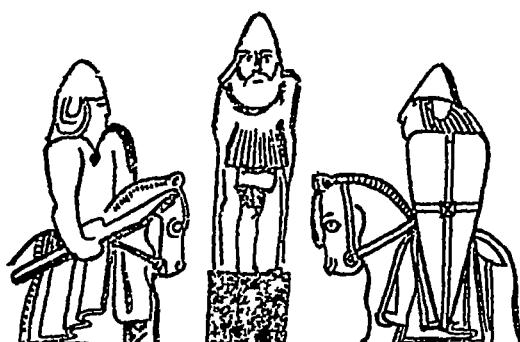
राजा

चर्च विशालतम सामन्ती जागीरदार—डा० विल ड्यूरेंट के कथनानुसार "चर्च यूरोप का सबसे वडा भू-स्वामी था सामती जागीरदारो मे सवसे वडा।" पादरी

लोग धार्मिक कार्यों के साथ-साथ सामती कार्य भी करते थे। अत चर्च केवल धार्मिक ही नही, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य सस्था भी बन गया। चर्च ने, "ईश्वरीय सधि" के जरिये सप्ताह की सभी छुट्टियो के दिनो लडाई पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इनमे गुरुवार, शुक्रवार, शनिवार और रविवार भी सम्मिलित थे। लेकिन चर्च अपने इस ध्येय मे ज्यादा कामयाब नही हो पाया।

(इ) सामतवादी प्रणाली का सामाजिक पहलू

सामतवाद ने पश्चिमी यूरोप मे एक खास किस्म के समाज को जन्म दिया। सामतवादी सामाजिक ढाँचे को मोटे तौर पर निम्नलिखित ढग से व्याख्यायित किया जा सकता है —

सामतवादी सामाजिक ढाँचा—सामतवाद ने निम्नलिखित चार सामाजिक वर्गों का विकास किया—ये हैं, स्वामी या भू-स्वामी, मुक्त जन (Freeman), किसान तथा गुलाम।

स्वामी—सामाजिक ढाँचे मे सबसे ऊपर, सामती यूरोप मे बैरन (Barons) और इग्लैंड मे लार्ड (Lords) का स्थान था। लातीनी भाषा मे उन्हे 'डोमीनस' (Dominus) कहा जाता था, फ्रेंच मे 'सीन्योर' (Seigneur)। जैसा कि नाम से सकेत मिलता है, वह अपनी जागीर का एक तरह से सप्रभु होता था, लेकिन साथ ही वह अपने ऊपर के किसी बडे भू-स्वामी का खेतिहर भी। भू-स्वामी के रूप मे वह हमलावरो और लुटेरो से अपने खेतिहरो और भूमि की रक्षा करता था, उस भूमि पर खेती-बारी, व्यापार और उद्योग की व्यवस्था करता था और अपने अधिकार-क्षेत्र मे न्याय-व्यवस्था भी करता था, एक खेतिहर के रूप मे, युद्ध के दिनो मे, वह अपने से ऊपर के भू-स्वामी या राजा की सेवा करता था। इस प्रकार अपने अधिकार-क्षेत्र मे वह शासनिक, आर्थिक, न्यायिक और सैन्य शक्तियो का इस्तेमाल करता था। उसके पास उसकी अपनी पुलिस, सशस्त्र सेना और न्यायालय होता था और अनेक मामलो मे, वह अपना सिक्का भी चलाता था।

भू-स्वामी (Lord) एक दुर्ग मे रहता था, जिसे उसके प्रत्येक क्षेत्र मे 'डोनजन' (Donjon) के नाम से जाना जाता था। यह दुर्ग आराम के लिये कम, सुरक्षा के लिये ज्यादा होता था। वह लार्ड लोगो की खास किस्म की रगीन सामती वेश-भूषा मे रहता था। सामान्यतया, कुलीन लोग अपने बेटे को सात साल की उम्र मे किसी अन्य अभिजात्य परिवार मे सेवक के बतौर भेज दिया करते थे। वहाँ उसके शरीर, मन और कर्मों को सरदारो के अनुरूप ही ढाल दिया जाता था। पढना-लिखना और अन्य सैकडो उपयोगी घरेलू कलाएँ लडकियो के जिम्मे आती थी।

मुक्त जन—बैरन और लार्ड के बाद मुक्त जन का क्रम आता था। ये कुलीन वशीय, पेशेवर सैनिक, व्यापारी, दूकानदार, कारीगर और किसान होते थे जिन्हें

'मुक्त स्वामी' (Freeholder) कहा जाता था, और ये अपनी भूमि के स्वयं ही स्वामी होते थे तथा सामंत लार्ड या वैरन लोगों से इनका कोई लेना-देना नही होता था, या नही के बराबर होता था। वे जब भी चाहे, अपना भू-भाग छोड सकते थे। वे अपने लार्ड लोगों के दरबारो मे हिस्सा लेते थे और कोई शिकायत होती थी, तब भी वहाँ जाते थे।

भूदास—सामतवादी समाज की तीसरी सीढी भूदास वर्ग की थी, जो न तो गुलाम ही होते थे और न ही मुक्त जन। ये धरती से बंधे थे और अपने स्वामी की अनुमति के बगैर उस भूखड मे दूर नही जा सकते थे। वे भारत के शूद्रो से भी बदतर थे। उनके साथ पशुओं का-सा बर्ताव किया जाता था। यानी वे चल संपत्ति जैसे ही थे। फ्रांस मे, भू-स्वामी एक किसान को भूमि से अलग करके मात्र ४० शिलिंग मे बेच सकता था। भूदास अपने स्वामी या वैरन से मिले भूखड मे खेती करता था, स्वामी भूदास को जीवन भर के लिये वह भूखड देता था और साथ ही सैन्य-सुरक्षा भी। बदले मे, भूदास को अपने स्वामी के तरह-तरह के कार्य करने पडते थे। भू-स्वामी भूदास के शरीर और मन, दोनो का मालिक होता था। भूदास को भूमि के किराये के रूप मे अपने स्वामी को अनेक चीजे देनी पडती थी—खेत की फसल, श्रम और संभव हो तो पैसा भी, उसे वर्ष का करीब आधा अपने स्वामी की सेवा मे गुजारना पडता था। युद्ध के दौरान मे उसे अपने स्वामी की सेना के साथ भी लडना पडता था। वह अपने बच्चो को स्कूल या चर्च मे नही भेज सकता था, क्योंकि उस हालत मे स्वामी एक आदमी खो बैठता। भूदास को अपने स्वामी की चक्की, भट्ठी, नांद और इस्त्री का इस्तेमाल करना पडता था और हर चीज के इस्तेमाल के लिये शुल्क भी देना पडता था। उसे मछली मारने, शिकार खेलने और स्वामी के चरागाह मे पशुओ को चराने पर भी शुल्क देना पडता था।

अपने स्वामी के प्रति भूदास के कर्तव्य इतने ज्यादा और अलग-अलग प्रकार के थे, कि उनका कुल जमा निकाल पाना नामुमकिन ही है।

दास—सामतवादी समाज के ढाँचे मे दासो या गुलामो का दर्जा निम्नतम था। अध सागर (Slaves) के तटवर्ती इलाको, पश्चिम एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका मे गुलामो का व्यापार बहुत धडल्ले से चलता था। गुलामो के व्यापारी मुसलमानो और ग्रीको को उठवा लेते थे और उन्हे बेच देते थे। इस्लामी और ईसाई देशो मे ये गुलाम खेत-मजदूरो, घरेलू सेवको, रखैलो, दासियो और वेश्याओ के रूप मे कार्य करते थे। वे धार्मिक कानून द्वारा ही नही, धर्म-निरपेक्ष विधान द्वारा भी संपत्ति के रूप मे स्वीकार किये जाते थे। बहरहाल, ज्यो-ज्यो किसानो का दबदबा बढता गया, वैसे-वैसे गुलामी की प्रथा घटती गयी—लेकिन यह बदलाव नैतिक विकास के कारण नही आर्थिक परिवर्तन से ही आया।

एक अकेली झोपड़ी—मुक्त जन और किरायेदार, दोनो तरह के किसानो का जीवन बहुत कठोर, मशीनी और एक रस था। "वे सूरज के साथ ही जागते-सोते थे, मोमबत्तियो का इस्तेमाल करते थे, लेकिन कभी-कभी।" चूंकि वे हमेशा डरते रहते थे कि कही आग उनकी फूस की झोपड़ियो को जलाकर राख न कर दे, इसलिये उनके घरो मे चूल्हे और अँगीठियाँ नही होती थी। अत खाना एक केन्द्रीय भट्ठी और चूल्हे पर बनता था। उनका खाना बहुत मोटा था। सर्दियो मे वे जाडे की तकलीफ सहते थे, क्योकि उनकी झोपड़ियो मे गर्मी का कोई साधन नही होता था। चेचक, मोतीझरा, हैजा जैसे रोग अक्सर फैलते रहते थे और लबे अरसे तक बने रहने के बाद जाते-जाते हजारो जाने अपने साथ ले जाते थे। लेकिन ऊँची मृत्यु-दर ऊँचे जन्म दर से सतुलित बनी रहती थी।

उदास दुर्ग—औसत किस्म का दुर्ग निस्सदेह औसत किस्म की झोपड़ी से सभी नजरो से बहुत बेहतर होता था और भू-स्वामी के परिवार के सदस्यो तथा मेहमानो को अपेक्षाकृत कही अच्छे भोजन तथा वस्त्र उपलब्ध थे, उनके पास अवकाश का समय भी किसानो से कही ज्यादा रहता था। फिर भी मोटी, आकर्षक दीवारो तथा छोटी-छोटी, गिनी-चुनी खिडकियो के कारण दुर्ग भी अधकारमय, सीलन भरा और उदास दिखायी देता था। वह बाहरी दुनिया से पूरी तरह कटा हुआ था।

उदास दुर्ग

उज्ज्वल पक्ष—सामती युग के बाहरी जीवन मे कुछ उज्ज्वलता भी थी। किसानो का जीवन अधिकतर घर के बाहर ही व्यतीत होता था। दुर्ग में भी, समय-समय पर शानदार समारोह होते रहते थे। बडे-बडे भोज, खेल आदि—और उन मौको पर नृत्य, सगीत, हास्य आदि से जीवन जीने लायक और रोचक बन जाता था। चर्च धार्मिक सस्था ही नही था, वह सामाजिक केंद्र भी था जहाँ सभी गाँववासी प्रार्थना के लिये और एक दूसरे को शुभेच्छायें देने के लिये जाते थे। कुल मिलाकर सामती भूखड मे ग्रामीण जीवन प्राचीन रोम या मिस्र के किसी ऐसे ही भूखड से काफी बेहतर था।
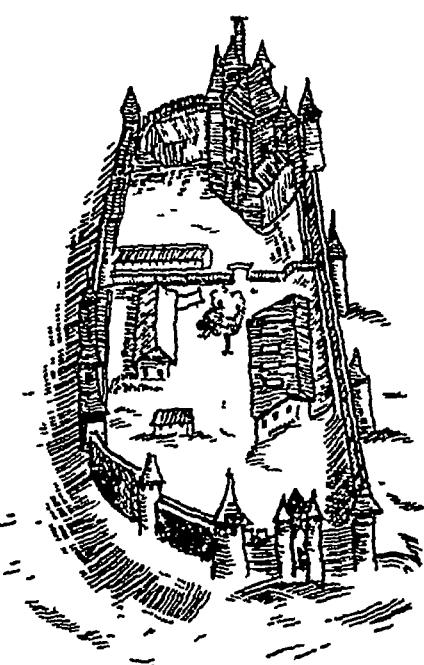
(ई) सामतवाद का आर्थिक पहलू

जमींदारी प्रथा—पूरे पश्चिमी यूरोप मे जमींदारी प्रथा द्वारा भूमि-स्वामित्व और खेती-बारी सामतवाद के आर्थिक पहलू का प्रतिनिधित्व करती थी। आमतौर पर भूमि को विभिन्न भूखडो मे विभाजित कर दिया जाता था जिन्हे फ्रास मे 'विला' (Villas) और इग्लैड मे 'मैनर' (Manors) के नाम से जाना जाता था, इनके मालिक को 'स्वामी' (Lord) तथा कामगारो को 'किरायेदार' या 'सेतिहर' कहा जाता था, ये कामगार अपने स्वामी पर ही आश्रित होते थे। भूखड (Manor) सामतवाद प्रणाली की एक सम्पूर्ण आर्थिक इकाई होता था क्योकि यह प्रणाली मूलत भू-स्वामित्व पर ही आधारित थी। भूखड एक-से नहीं होते थे। हर जमींदारी मे रीतियाँ और कार्य का ढग दूसरी जमींदारी से एकदम भिन्न होता था। फिर भी, इनमे कुछ समानताये भी थी, जो नीचे दी जा रही हैं।

ग्रामीण बिरादरी—भू-स्वामी की हवेली के आस-पास पचास से लेकर पाँच सौ तक किसान अपना गाँव बना लेते थे और सुरक्षा के ख्याल मे हवेली की दीवारो के भीतर ही इकट्ठे रहते थे। आम तौर पर गाँव जागीर का ही एक भाग होता था। भू-स्वामी का घर, खास तौर पर किसी सामत (Baron) का घर एक सुदृढ दुर्ग ही होता था, जो उसकी जमीनो के बीचोबीच बना होता था। बाहरी हमले के दौरान यह दुर्ग भू-स्वामी तथा किसान, दोनो की रक्षा करता था।

भू-स्वामी का दुर्ग किसानो की झोपडियो से घिरा रहता था, हर झोपडी के पास छोटी-सी जमीन होती थी और इसी से ग्रामीण बिरादरी बनती थी। इस तरह के गाँव मे, एक चक्की, एक लुहार की दूकान, एक रगरेज की दूकान, एक बढई और कारीगरो के साथ-साथ छोटा-सा चर्च और चर्च के पादरी का घर भी रहता था।

सुरक्षित भूमि—सामती अर्थ-व्यवस्था का ९/१० भाग कृषि पर आधारित था। गाँव के चारो ओर जुते हुए खेत, चरागाह, बजर भूखड और जगल रहते थे। आमतौर पर पूरी जमीदारी की जोत की भूमि का एक-तिहाई भाग स्वामी के निजी उपयोग के लिये सुरक्षित रहता था और इसे 'सुरक्षित' (demesne) भूमि कहा जाता था। चरागाहे, बजर भूमि और जगल स्वामी और किसानो के बीच आनुपातिक रूप से बँटे रहते थे।

खुले खेतो की प्रथा—जमीदारी भूमि खुले खेतो के रूप मे फैली रहती थी और उनके चारो ओर अस्थायी बाड तभी लगाई जाती थी, जब फसल तैयार होने वाली होती थी और उसे पशुओ से बचाना होता था। जब फसलें कट जाती थी, तब इन बाडो को हटा दिया जाता था और भू-स्वामी तथा किसानो के पशुओ को खेतो मे चरने के लिये छोड दिया जाता था। खेती-बाडी की इस प्रणाली को खुले खेतो की प्रणाली

कर डाला और वे अशक्त और निर्धन हो गये। अनेक सामत और सरदार, जो पूर्व की ओर जेहादो के लिए गये, सुरक्षित घर लौट कर नही आये। जो इन जेहादो मे वच भी गये, वे अत्यत गरीब रह गये और अपने-अपने देश मे लौटने के वाद उन्होंने अपने सामती अधिकारो और विशेषाधिकारो को धन की प्राप्ति के लिए वेच डाला। इस प्रकार सामतवाद की पकड अशक्त होकर ढीली पडती गयी।

३ भूस्वामियो का दमन—जैसे-जैसे पूरे यूरोप और इग्लैड के सामत-सरदार दमनकारी होते गये, वे अपनी लोकप्रियता खो वैठे और लोग उनसे नफरत करने लगे। अत जव शक्तिशाली मध्यम वर्ग अस्तित्व मे आया, तो वह समर्थन के लिए राजा की ओर से देखने लगा और राजा ने सामतो और सरदारो के साथ सख्ती करना शुरू कर दिया।

४ मध्यम वर्ग का उदय—मध्यम वर्ग के उदय ने भी सामती प्रणाली को वहुत कमजोर वना दिया क्योकि यह वर्ग पूर्णतया सशक्त राजतत्रवादी सत्ता का पक्षधर था। सच तो यह है कि राजाओ को इसकी अपेक्षा रहती थी और उन्होंने उभरते हुए मध्यम वर्ग का विश्वास और ठोस समर्थन प्राप्त किया, जिससे उनमे इतना साहस आ गया कि वे सामती सरदारो और भू-स्वामियो पर जवरदस्त चोट कर सके और उन्हे नष्ट कर दे।

५ कस्वो और नगरो का विकास—मध्य युग के अतिम दिनो मे जहाँ एक ओर मध्यम वर्ग का उदय हुआ, वही दूसरी ओर कस्वो और नगरो का विकास भी होने लगा, जिन्होंने सामतवाद के विरुद्ध मृत्युदड की घोषणा-सी कर दी। व्यापारियो, निर्माताओ और दूकानदारो के सघो और निगमो ने नगरो और कस्वो को आजादी की भावना से ओत-प्रोत कर दिया। अत मे, नगरो और कस्वो ने या तो अपने सामती सरदारो से उनके अधिकार और स्वतत्रता खरीद लिये, या वे वहादुरी मे लडे और उन्होंने स्वतत्रता जीती—और इस प्रकार वे सामती नियत्रण से मुक्त हो गये।

६ मुद्रा-अर्थ-व्यवस्था का उदय—व्यापार, व्यवसाय और उद्योग के पुनरुत्थान से अदला-वदली की प्रथा का पतन और अतत समाप्ति हो गयी, इससे मुद्रा-अर्थ-व्यवस्था को वढावा मिला, जिसने सामतवाद के तावूत मे आखिरी कील का काम किया। दमित और पीडित खेतिहर-मजदूर अपने भू-स्वामियो से भागकर पास के कस्वो मे चले गये और अपने उत्पादन को मुद्रा के लिए बेचने लगे। किसानो को इससे वढावा मिला कि वे अपनी फसलो के उत्पादन को वढायें ताकि वे अपनी अतिरिक्त फसलो को पैसे लेकर वेच सके, जिससे अतत वे अपने भू-स्वामियो से अपनी मुक्ति भी खरीद सकते थे।

७ शक्तिशाली राजा—शक्तिशाली राजाओ का उदय एक ऐसा सशक्त तत्व था, जिसने सामतवाद को अन्तिम घातक चोट दी। नव मध्यम वर्ग ने सशक्त केन्द्रीय सत्ता की स्थापना मे राजाओ को हर तरह का समर्थन दिया। इस तरह की सुदृढ केन्द्रीय सत्ता को वनाये रखने के लिए राजाओ को धन की आवश्यकता थी, जिसे वे

मुक्त जन पर कर लगाकर आसानी से प्राप्त कर सकते थे। मुक्त जन को भी सुदृढ केन्द्रीय सत्ता की जबरदस्त जरूरत थी जो कि उनके व्यापार, व्यवसाय और उद्योग की रक्षा कर सकती हो और शाति तथा व्यवस्था बनाये रख सकती हो। अत वे राजा की सत्ता को कर देने के लिए तुरत तैयार हो गये। नव मध्यम वर्ग के पूर्ण विनाश से सहायता पाकर राजाओ ने सामत वर्ग के पूर्ण समर्थन के लिए विभिन्न रास्ते सोचने शुरू कर दिये। उदाहरण के लिये ब्रिटेन मे, राजा हेनरी सप्तम ने सरदारो के अधिकारो को नष्ट करने के लिए अनेक तरीके अपनाये।

८ **बारूद का आविष्कार**—बारूद के आविष्कार ने, जिसका इस्तेमाल सिर्फ राजा ही कर सकते थे, सरदारो की शक्ति को अपग कर दिया। बारूद के इस्तेमाल से राजा सरदारो के सुदृढ दुर्गों को आसानी से उडा सकते थे।

९ **ध्येय के बाद भी जीवित रहना**—सामतवाद ने एक समय पर बहुत लाभकारी ध्येय पूरा किया कि इसने किसान-मजदूर को किराये पर भूमि दिलवाने के आधार पर उसे बाहरी हमलावरो और लुटेरो से बचाया। फिर भी बारहवी शताब्दी की बदली हुई परिस्थितियो मे, इसकी कोई जरूरत नही रह गयी थी। इसलिये इसे खत्म होना ही पडा।

सामतवाद के पतन की प्रक्रिया बारहवी शदी में ही कभी शुरू हुई, फिर भी कुछ यूरोपीय देशो मे इसके अवशेष पाँच-छ सदियो के बाद भी दिखाई देते रहे। पद्रहवी शताब्दी तक कई देशो मे पतन की प्रक्रिया बहुत तेजी से शुरू हो चुकी थी, फ्रास मे फ्रासीसी क्राति (१७८९-१८१५) ने सामतवाद के सभी तत्वो को धोकर रख दिया और जैसे-जैसे स्वतत्रता, समानता और बधुत्व के आदर्श यूरोप मे विस्तार पाते गये, सामतवाद हर जगह से खत्म हो गया—हालाकि इसके अवशेष कही-कही जरूर बने रहे।

प्रश्नावली

१ सामतवाद के स्रोत और अर्थ की व्याख्या कीजिए।

२ मध्य युग मे सामतवाद का उदय क्यो हुआ ?

३ सामतवाद से सबधित विभिन्न शब्दावलियो और रीतियो का विवेचन कीजिए।

४ सामतवाद के सामाजिक पहलू की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

५ सामतवाद के आर्थिक पहलू का विवेचन कीजिए।

६ सामतवाद के पतन के कारणो का विवेचन कीजिए।

७ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) "हितकारी" और "सरक्षण" की रीतियाँ,

(आ) विधिपूर्वक पद-नियुक्ति, (इ) जमीदारी व्यवस्था।

अठारहवाँ अध्याय

मध्य युग में चर्च और राज्य

(अ) भूमिका

धर्म

सरकार का एक विभाग—ईसाई धर्म के जन्म लेने से पूर्व धर्म सरकार का ही एक भाग माना जाता था। उदाहरणार्थ यहूदियो ने ला आफ स्क्रिपचर (धर्मग्रथो) के कानून को हमेशा इस्राइल का कानून माना।

दो शक्तियो का सिद्धात—वह सेटपार्क थे जिन्होंने लिखा था—सीजनर को वे वस्तुएँ दो जो केलसर की हैं और ईश्वर को वे वस्तुएँ दो जो ईश्वर की हैं। इसने ससार को नियन्त्रित करने वाली दो भिन्न और एक दूसरे से पृथक् शक्तियो के सिद्धात को जन्म दिया, जो ईसाई विचारधारा और प्रारभिक युग से चले आ रहे उपदेशो का मूल है।

ईश्वरीय शक्ति का धर्मनिरपेक्ष शक्ति पर प्रभुत्व—लगभग सभी पादरियो ने राज्य द्वारा धर्म को मान्यता देने पर धर्मनिरपेक्षता के ऊपर ईश्वरीय सत्ता, राजा के ऊपर पोप की सत्ता, राज्य के ऊपर चर्च की सत्ता की प्राथमिकता और प्रभुता के सिद्धात पर बडा बल दिया। इसाई धर्म-गुरुओ ने दो मूलभूत सिद्धातो पर बल दिया जो थे, (१) राज्य के हस्तक्षेप बिना चर्च को पूर्ण स्वतत्रता और (२) धर्मनिरपेक्ष शासक के कार्यों पर न्याय कर सकने का चर्च का अधिकार। क्योकि यह माना गया था कि शासक चर्च का ही पुत्र है, चर्च के अतर्गत आता है और ईश्वर के कानून-कायदो से बरी नही हो सकता।

पाँचवी शताब्दी मे पोप गेलासियस प्रथम ने राजा को बलपूर्वक बताया कि ससार दो शक्तियो द्वारा शासित है। धर्मनिरपेक्ष और ईश्वरीय, और यह कि ईश्वरीय पर अधिक जिम्मेदारी है क्योकि उसे मनुष्य की अमर आत्मा की देखभाल भी करनी होती है। अतएव इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वरीय कानून सासारिक कानून से कही श्रेष्ठ है।

(ब) मध्य युग मे ईसाई चर्च

ईसाई चर्च की शक्ति—मध्य युग मे ईसाई चर्च सबसे शक्तिशाली सस्था थी और उसे अत्यत उच्च स्थान प्राप्त था जो नीचे के वर्णन से स्पष्ट है।

१ **शक्तिशाली और सुगठित सस्था**—मध्य युग के यूरोप मे चर्च का विकास एक शक्तिशाली और सुगठित सस्था के रूप मे हुआ और उसका ढाँचा रोम साम्राज्य के

प्रेरित हुआ। सरल और सुविधाजनक प्रशासन के लिए चर्च ने प्रत्येक देश को 'आर्कडिओसेर' डिओसेस और 'पैरिसेस' मे विभाजित किया। चर्च का प्रधान पोप कहलाता था और उसका निर्वाचन जीवन भर के लिए कार्डीनलो द्वारा रोम मे पापल कोर्ट स्थापित होता था। पोप ईसाई ससार का एकमात्र प्रभु था। पोप के नीचे आर्कबिशप होते थे, जिनके अतर्गत आर्डिडियोस अर्थात् एक बडा जिला होता था। आर्कबिशप के नीचे विशप होते थे जिनके अतर्गत एक डियोसेस आता था। पेरिस डियोसेस का भाव था और उसके ऊपर पेरिसप्रीस्ट होता था। महत्वपूर्ण पेरिस से पेरिसप्रीस्ट की सहायता सहायक प्रीस्ट और डीकन करते थे। ये सभी पादरी—आर्कबिशप, बिशप, प्रीस्ट और डीकन—धर्म-निरपेक्ष पादरी कहे जाते थे क्योकि ये ससार में सामान्य मनुष्य के प्रकार ही रहते और परिश्रम करते थे।

नियमित पादरी से अपेक्षा की जाती थी कि वह निर्धनता मे रहेगा, शुद्ध आचरण रखेगा और ससार से अलग रहेगा।

२ **चर्च की भूमिका**—चर्च का पहला काम था लोगो के धार्मिक जीवन को निर्देश देते हुए उसके लिए स्थान रखना ताकि आत्मा की देख-रेख की जा सके। यह विश्वव्यापी स्वीकृत तथ्य था कि पोप "विकार आफ क्राइस्ट" को सभी ईसाई राजाओ और सम्राटो, सामतो और पादरियो तथा जन सामान्य के कार्यों पर निरीक्षण रखने और उन पर अपना निर्णय देने और दड देने का अधिकार था। इसके अतिरिक्त अध युग (डार्कएज) के साथ-साथ मध्य युग मे जब राजा की शक्ति का क्रूर आक्रमणो से ह्रास हो चुका था, तब चर्च ने धार्मिक कार्यों के साथ-साथ सामाजिक, शैक्षणिक और सरकारी कार्य भी किये। उसने अपने ही न्यायालयो की व्यवस्था चालू की। चर्च ने न सिर्फ पादरियो बल्कि जन सामान्य से सबधित ब्याह, ईश्वर निंदा, वसीयत के मामलो पर भी निर्णय देना शुरू किया। पादरियो की एक बडी सख्या सामतो के रूप मे बडे क्षेत्रो पर शासन करने लगी। पोप रोम नगर और उसके आस-पास के धार्मिक क्षेत्र का ही वास्तविक शासक था।

३ **लोगो की समानता**—आत्मा की आवाज पर विरोध प्रकट करने वाले निष्ठावान पादरियो ने स्वार्थहीन सेवाभावना और सौजन्यता के प्रदर्शन द्वारा लोगो के मस्तिष्को पर अनुकूल तथा गहरा प्रभाव डाला। अतएव चर्च को लोगो की आज्ञा-कारिता, दृढ समर्थन और पूर्ण निष्ठा मिलने लगी जिसने मध्य युग मे चर्च की स्थिति दृढ कर दी। दि शार्ट और चार्ल माग्ना जैसे शक्तिशाली राजा भी अपने शाही अधिकार के लिए पोप की स्वीकृति की आवश्यकता का अनुभव करने लगे।

४ **चर्च की जायदाद**—एक दूसरी बात जिसने चर्च की स्थिति को दृढ कर दिया वह थी चर्च की जायदाद। जैसा कि इसके बाद के सामतवाद के अध्याय मे कहा गया है, चर्च यूरोप मे सबसे बडा जमीदार था, सामतो मे सबसे बडा। चर्च इस प्रकार

धार्मिक संस्था ही न रहकर एक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक संस्था भी बन गया। साथ ही, चर्च को जीवन के सभी क्षेत्रों के सभी प्रकार के लोगों से दान मिला करता था। चर्च ने लोगों पर कर लगाये और इकट्ठे किये जिसे 'टिथेस' नाम दिया गया।

चर्च के दोष—मध्ययुगीन चर्च में अनेक दोष प्रवेश कर गये थे जो नीचे समझाये जा रहे हैं —

१ धन—धन तब तक तो शक्ति का एक अच्छा साधन है जब तक वह स्वीकृत सामाजिक ध्येयों के लिए उपयोग में आता है। किन्तु जब उसका उपयोग किसी समाज-विरोधी अधार्मिक कार्य के लिए होने लगता है तो वह एक दोष में परिवर्तित हो जाता है। चर्च की जायदाद मध्ययुग में विभिन्न बुराइयों की जड़ बन गयी। बहुत से पादरी लखपती और करोड़पति भी बन गये और वे धनकुबेरों की श्रेणी में आ गये और ऐश्वर्य में डूब कर सामन्तों के समान विलासी जीवन बिताने लगे। इन सबसे चर्च लोगों की दृष्टि में गिर गया।

२ राजनीतिक सत्ता की लोलुपता—पादरियों ने अनुभव किया कि वे सरलता से धन-संचय तथा विलासमय जीवन तभी बिता सकते हैं जबकि राजनीतिक सत्ता उनके हाथों में हो। इससे पादरियों में सत्ता-लोलुपता बढ़ गयी जिससे वे लोगों की दृष्टि में पुन गिर गये।

३ भ्रष्टाचार और अनैतिक जीवन—धन का प्रेम और सत्ता की लोलुपता ने पादरियों के मस्तिष्क को भ्रष्ट कर दिया। दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गिरजाघरों में भ्रष्टाचार और अनैतिकता का बोलबाला हो गया जबकि धूर्त, लालची और महत्वाकांक्षी सामंतों, राजाओं और सम्राटों के प्रभाव से निम्न नैतिक चरित्र वाले लोग पोप चुने जाने लगे।

४ धर्मपद बेचने का अपराध (साइमोनी)—एक और बुराई जो चर्च में आ गई थी, वह थी कुछ व्यक्तियों द्वारा उसके दफ्तरों में भ्रष्टाचारी तरीकों अथवा रिश्वत देकर प्रवेश पाना। चर्च के सुधारकों ने इस प्रथा का तीव्र विरोध किया और इसे साइमन मागस के नाम पर 'साइमोनी' का नाम दिया। साइमन मोगस पर होली घोस्ट' की सत्ता खरीदने का प्रयास करने हेतु एपास्टल पीटर ने प्रबल प्रहार किया था।

५ अविवाहित व्यक्ति—धर्म के सामने एक अन्य समस्या थी उसका यह नियम कि पादरी अविवाहित रहे और पवित्र जीवनयापन करे। एक ही पत्नी रखे। यद्यपि यह नियम हमेशा नहीं था, पोप हेड्रियान द्वितीय (८६७-८७२) स्वय एक विवाहित व्यक्ति था तथा बाद की शताब्दियों में सभी पोपों ने पादरियों को अविवाहित रहने पर जोर दिया। फिर भी इस नियम का बहुत से पादरियों द्वारा उल्लघन किया गया।

(ख) मध्ययुग मे साम्राज्य

कार्ल से सम्बन्धित राजा—पश्चिमी रोम साम्राज्य का १५वी शताब्दी के अत तक ह्रास हो गया। पाँचवी से ग्यारहवी शताब्दी तक यूरोप जिस युग से होकर गुजरा उसे अधा युग (डार्क एज) का नाम दिया गया । यूरोप महाद्वीप मे एक असाधारण राजनीतिक व्यक्तित्व के रूप मे पेपिन दि शार्ट के पुत्र चार्ल्स महान का उदय हुआ। पेपिन (७५१ से ७६८) तक फ्रास का राजा था। वह चर्च का प्रवल दावेदार था ।

चार्ल्स महान् ने, जो शार्लमेन के नाम से भी जाना जाता था, फ्रास पर ७६८ से ८१४ तक शासन किया। ज्यो-ज्यो समय गुजरता गया, व्याह, शादी, राजनीतिक सम्वन्ध और युद्ध द्वारा चार्ल्स ने अधिकाश यूरोप को अपने अन्तर्गत कर लिया। इस प्रकार उसने फ्रेंकिश राज्य को एक वास्तविक साम्राज्य के रूप मे वदल दिया। चूंकि वह चर्च के प्रति निष्ठाभाव रखता था, पोप लियो तृतीय ने सम्राट् की मान्यता दी अर्थात् उसे रोम साम्राज्य का उत्तराधिकारी माना। जव चार्ल्स सेंट पीटर्स चर्च रोम मे आराधना के लिए झुका तो पोप लियो तृतीय ने ८०० ई० मे उसे रोम के सम्राट् का मुकुट पहनाया।

८१४ ई० मे चार्ल्स की मृत्यु के उपरान्त उसका साम्राज्य वरडम मे उसके तीन पौत्रो द्वारा तीन भागो मे बाँट दिया गया। एक ने पश्चिमी भाग लिया जो फ्रास कहलाया, दूसरे ने पूर्व का भाग लिया जो जर्मनी कहलाया और तीसरे ने दक्षिण का भाग लिया जो इटली कहलाया। इस प्रकार नवी शताब्दी मे चार्ल्स का साम्राज्य लुप्त हो गया। ९६२ ई० मे पुन जर्मनी के महान् राजा ओटो को पोप जॉन बारहवे ने पवित्र रोम के सम्राट् के रूप मे राजमुकुट पहनाया।

पवित्र रोम साम्राज्य—ओटो प्रथम और उसके उत्तराधिकारियो का पवित्र रोम साम्राज्य जर्मनी के राज्य मे से निर्मित हुआ था। इसे जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, कैरोलिंजियन साम्राज्य से पृथक् किया गया था। इसका सबसे अधिक विस्तृत भाग था—जर्मनी, नीदरलैंड, वाहेमिया (चेकोस्लोवाकिया), आस्ट्रिया, स्विटजरलैंड, वर्गण्डी और इटली का अधिकाश भाग। फ्रास, इग्लैंड, स्पेन और स्कैंडीनेविया के देश उसके भाग कभी नही वने। साम्राज्य का प्रमुख राजकुमारो द्वारा निर्वाचित होता था। निर्वाचक 'इलेक्टर' कहलाए। निर्वाचित प्रमुख को 'जर्मन राजा' अथवा रोम-वासियो का राजा कहा जाता था। उसके पश्चात् उसको पोप द्वारा पवित्र रोम सम्राट् के रूप मे राजमुकुट पहनाया जाता था। सिद्धान्त रूप मे सम्राट् को विस्तृत अधिकार प्राप्त थे, किन्तु व्यवहार मे वह सामन्तो से कुछ ही ऊपर था।

(ग) साम्राज्य और पोप तत्र मे सघर्ष

प्रो० विलियम एम० लीगर लिखते है—"लगभग एक अर्ध शताब्दी तक (ओटो के राज्याभिषेक से हेनरी तृतीय की मृत्यु तक) सम्राट्, पोप तत्र राज्य

परिवार की भागीदारी के जो इसाई धर्म पर विश्वव्यापी शासन करने का दावा करता था, एक प्रभावशाली सदस्य थे । इस युग मे सम्राटो ने निर्बल तथा भ्रष्ट पोपो को पदच्युत करके उनके स्थान पर दृढ, नैतिक और सुयोग्य व्यक्तियो को नियुक्त किया । फिर भी ग्यारहवी शताब्दी से समूचे चर्च मे सुधार आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ जब पोप ने इसाई धर्म राज्य और चर्च को शाही प्रभाव से मुक्त करके दृढ करने के लिए सघर्ष किया । चर्च की स्वतन्त्रता जीतने की प्रक्रिया मे पोप तत्र ने सभी सासारिक सत्ताओ पर प्रभुत्व का दावा किया । फलस्वरूप पोपतत्र और साम्राज्य के बीच, सम्राट् और पोप के बीच, राज्य और चर्च के बीच प्रभुत्व के लिए लम्बा और कटु सघर्ष चल पडा ।

सघर्ष का कारण—मध्ययुग मे अनेक तत्वो ने चर्च और राज्य के बीच सघर्ष मे योगदान किया, जो निम्नलिखित हैं —

१ प्रतिष्ठापन विवाद—सामन्तवाद के दिनो मे पादरी को राजा से भूमि मिलती थी जिसको वह पूंजी के तौर पर मालिक की हैसियत मे जागीर, अगूठी और कर्मचारियो मे लगाता था, क्योकि ये उसके ईश्वरीय अधिकार के प्रतीक थे । ग्यारहवी शताब्दी मे राजा के अधिकार को पोप ने चुनौती दी । उसने दृढतापूर्वक दावा किया कि चर्च का प्रधान होने के नाते एकमात्र पोप ही को यह अधिकार प्राप्त था कि वह चर्च के दफ्तर के कर्मचारियो का चुनाव करे और चर्च अधिकार के प्रतीको को भी उन्हे दे ।

सम्राट् ने पोप की विश्वव्यापी ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार किया । उसी प्रकार पोप ने सम्राट् की धर्मनिरपेक्ष सत्ता को स्वीकार किया । इस प्रकार दोनो ही सम्पन्न थे । तथापि सघर्ष मे किसकी सत्ता उच्च थी ? स्वाभाविक ही था कि इसके लिये दोनो के बीच कटु तथा दीर्घ सघर्ष चलता ।

२ पवित्र रोम साम्राज्य मे भागीदारी—रोम साम्राज्य की स्थापना के साथ चर्च और राज्य फूट से बीज बो उठे । रोम साम्राज्य मे जर्मन सम्राट् और पोप के बीच की भागीदारी ने अनेक उलझी हुई समस्याओ को जन्म दिया । प्रत्येक भागीदार दूसरे पर प्रभुत्व का दावा करता था । इससे पोप और सम्राट् के बीच सघर्ष का प्रारम्भ हुआ ।

३ दोनो मे मतभेद बनाये रखने की प्रवृत्ति—दोनो ही पक्षो, सम्राट् और पोप ने जागीर के प्रश्न पर समझौते का रुख नही अपनाया । फलस्वरूप विवाद अति उग्र हो गया । हेनरी चतुर्थ पोप ग्रेगरी चतुर्थ से समझौता करने से अस्वीकार कर दिया, क्योकि उसने पोपतत्र के प्रभुत्व का दृढतापूर्वक दावा किया ।

इसके बाद का मध्ययुगीन यूरोप का इतिहास दोनो की हठधर्मी से
जिसके कारण पोप और सम्राट् मे निरतर युद्ध होते रहे ।

४ **पोप का खतरनाक रवैया**—पोप ग्रेगरी चतुर्थ ने इस समूचे विवाद मे अत्यत उच्च किंतु साथ ही भडकाने वाला रवैया अपनाया । उसका कहना था कि चूंकि आत्मा शरीर से अधिक महत्वपूर्ण है। आध्यात्मिक सत्ता धर्मनिरपेक्ष सत्ता से श्रेष्ठ है । चूंकि पोप सत पोटर का उत्तराधिकारी है, इसलिये वह सभी ईसाइयो की आत्मा के लिये जिनमे राजा भी शामिल हैं, सिर्फ वही ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है । इस प्रकार, दुष्ट शासक को प्रताडित करने का उसे अधिकार प्राप्त है और यदि वह क्षमा-याचना नही करता तो उसकी प्रजा को भी उसके प्रति स्वामिभक्ति से मुक्त करना होगा अन्यथा वह भी बुरे मार्ग पर चली जायेगी । पोप द्वारा यह रवैया अपनाया जाना भडकाने के साथ-साथ खतरनाक भी था । यदि सम्राट् इस चुनौती को स्वीकार नही करता तो शाही हितो पर निश्चित रूप से आँच आती ।

५ **सामन्तों के निहित स्वार्थ**—अत मे सामतो के अत्यन्त स्वार्थपूर्ण कार्यों ने इस सघर्ष का विस्तार करने के साथ-साथ उसको उग्र भी बना दिया । सामत वर्ग अपने स्वार्थों के कारण अपनी स्वामिभक्ति को बदलता चला गया और उसने शाही तथा पोपतत्र दोनो के हितो की उपेक्षा की ।

सघर्ष की आवाज़—सम्राट् और पोप के बीच सघर्ष की अवधि लगभग तीन शताब्दी तक चलती रही, जबकि किसी को भी निश्चयात्मक विजय नही मिल पायी जैसा कि नीचे समझाया जा रहा है ।

हेनरी चतुर्थ और ग्रेगरी सप्तम—सम्राट् हेनरी तृतीय की मृत्यु के उपरात उसका पुत्र हेनरी चतुर्थ (१०५६-११०६) सिंहासन पर बैठा । जब तक वह नाबालिग रहा, सामतो ने खूब लूटपाट की । उसकी प्रभुता का दबदबा जर्मनी और इटली कही भी न रहा । किन्तु वयस्क होते ही हेनरी चतुर्थ ने सर्वत्र अपने अधिकारो पर बल देना शुरू किया । फलस्वरूप उसे पोप ग्रेगरी सप्तम के साथ सघर्षरत होना पडा । हेनरी चतुर्थ ने अपनी पसन्द के आर्कबिशप आफ मिलन की नियुक्ति की । इसके उत्तर मे पोप ने १०७५ मे एक हुक्मनामा निकाल कर उसे जागीर देने पर प्रतिबन्ध लगाया । अपने बिशपों की सहायता से जो पोप के बडे सुधारो से तग आ गये थे, उसने पोप ग्रेगरी सप्तम को पदच्युत करने की घोषणा की । पोप ने इसका उत्तर सम्राट् को निष्कासित करके दिया । इससे कई जर्मन सामत सम्राट् के प्रति विद्रोह करने को उत्साहित हुए । अब हेनरी चतुर्थ को अपने ही घर में विद्रोह का दमन करने के लिये पोप से क्षमा-याचना करनी पडी । ग्रेगरी ने जर्मन राजकुमारो को जो रिपोर्ट दी उसके अनुसार २५ जनवरी, १०७७ को जो शीत ऋतु के असह्य जाडे का दिन था, हेनरी चतुर्थ स्वय कनोसा पहुँचा । वह किले के फाटक पर जीर्ण-शीर्ण गर्म कपडो में नगे पैर पहुँचा और उसने डरते-डरते निष्कासन-आज्ञा वापस लेने के अनुरोध के साथ-साथ हमसे क्षमा-याचना

की। ऐसा वह तीन दिनो तक करता रहा। उसकी यह अवस्था देखकर हम सब दया से ओत-प्रोत हो गये और आँख मे आँसू भर कर प्रार्थना की और इसके लिये मध्यस्थ का काम किया। अत मे हमने उसके लिए निष्कासन आज्ञा रद्द कर दी और उसे पुन. पवित्र माता चर्च के वक्ष मे ले लिया। इस प्रकार घमण्डी सम्राट् को नीचा देखने को मजबूर होना पडा। फिर भी जागीर की मजूरी सम्बन्धी समस्या का अन्त नही हुआ।

ग्रेगरी सप्तम की पराजय—यद्यपि ग्रेगरी सप्तम ने हेनरी चतुर्थ को क्षमा करके ईसाई धर्म मे वापस ले लिया था, तब भी जर्मनी के असतुष्ट सामतो ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसके प्रतिद्वंद्वी रुडाल्फ, ड्यूक आफ स्वाविया को नया राजा निर्वाचित किया। १०८० मे ग्रेगरी ने निर्णयात्मक रूप मे हेनरी चतुर्थ का विरोध करके उसके स्थान पर रुडाल्फ को मान्यता प्रदान की। इस बार जनमत पोप के विरुद्ध हो गया क्योकि वह आक्रामक माना गया। एक घायल शेर के समान हेनरी चतुर्थ ने जर्मन और इटालवी पादरियो की सहायता से पोप ग्रेगरी सप्तम को पदच्युत करके उसके स्थान पर पोप विरोधी क्लेमेट तृतीय का निर्वाचन करवा लिया। अब हेनरी ने रोम का घेरा डाल दिया और १०८४ मे उसमे प्रवेश किया और नये पोप क्लेमेट तृतीय ने उसको राजमुकुट पहनाया।

गर्वीला पोप, ग्रेगरी सप्तम जिसने कुछ वर्ष पूर्व सम्राट् को नीचा दिखाकर अपमानित किया था, भागकर दक्षिण जा पहुँचा और अपने जर्मन मित्रो के बीच शरण ली। निष्कासनावस्था मे ही २० मई, १०८५ ई० को सलेरान मे उसकी मृत्यु हो गयी। ग्रेगरी सप्तम ने कहा—मैंने धर्म से प्रेम किया और असमानता से घृणा, इसलिये मैं निष्कासित होकर मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ।

हेनरी चतुर्थ की मृत्यु—हेनरी चतुर्थ के अतिम दिन स्वय उसके पुत्र हेनरी पचम के कुचक्र के कारण बडी कडुवाहट मे बीते। हेनरी पचम ने पिता के विरुद्ध पोप पक्ष से मिलकर कुचक्र किया। सम्राट् ने अपने अतिम दिन निर्वासन मे व्यतीत किये जहाँ ११०६ ई० मे उसकी दुखद मृत्यु हो गयी।

हेनरी पचम और वर्म्स का समझौता—नये सम्राट् हेनरी पचम ने पोप पाशल द्वितीय के साथ पुन सघर्ष चालू कर दिया। तथापि शीघ्र ही दोनो पक्ष थम गये और ११२२ मे वर्म्स मे एक समझौता किया जिसकी शर्ते निम्नलिखित हैं —

१ चर्च को अपने विशप और एबाट को निर्वाचित करने का अधिकार होगा।

२ निर्वाचित पादरियो विशप तथा एबाट को अगूठी तथा धर्म दण्ड देने का अधिकार पोप को होगा, क्योकि ये दोनो ही उसकी आध्यात्मिक सत्ता के प्रतीक थे।

३ सम्राट् को उपरोक्त पादरियो को उनके लिये दफ्तर का स्थान देने का अधिकार होगा, जिसके लिये वे उसके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करेंगे।

४. जर्मनी मे सभी निर्वाचन राजा की उपस्थिति मे हुआ करेंगे।

इस प्रकार उपरोक्त पादरियो को धर्मनिरपेक्ष अधिकार सम्राट् से मिला और आध्यात्मिक अधिकार पोप से और इस प्रकार वे दोनो के नियत्रण मे आ गये। फिर भी, प्रभुता का सघर्ष जारी ही रहा।

फ्रेडरिक बारबरोसा (११५२-९०)—वर्म्स के समझौते (११२२) ने तीन दर्शको तक एक अस्थिर शान्ति कायम रखी। फिर भी, फ्रेडरिक प्रथम के दिनो मे जिसका लोकप्रिय नाम फ्रेडरिक बारबरोसा (लाल दाढीवाला व्यक्ति) था, सघर्ष का नवीनीकरण किया गया। वह एक उत्तम सैनिक था जिसे युद्ध से पूर्ण प्रेम था। उसने अपनी शक्ति, प्रतिष्ठा और शान को बढाने का निश्चय किया।

उसने पोप की सत्ता को यह सूचित करके चुनौती दी कि शाही राजमुकुट उसे ईश्वर द्वारा पहनाया गया है। समूचे जर्मनी को एकता के सूत्र मे बाँधकर वह अपने नियत्रण मे ले आया। अतएव ११५८ ई० में उसने इटली पर आक्रमण किया। सबसे शक्तिशाली लबार्ड नगर मिलन पर अधिकार करने के बाद उसने रोनकाग्लिमा मे एक शाही सभा बुलवाई जहाँ उसने सार्वजनिक रूप से राह या पुल पार करने के स्थानो, बाजारो, टकसालो, न्यायालयो आदि से अपने प्रतिनिधियो से कर वसूल करने के अधिकार की घोषणा की। मिलन तथा अन्य नगरो के निवासियो ने कर देने से इन्कार करके सम्राट् के प्रति विद्रोह किया तो नगरो पर आक्रमण करके उन्हे नष्टभ्रष्ट कर दिया गया।

लबार्ड लीग की विजय— पोप एलेक्जेंडर तृतीय रोम मे सम्राट् के विरोधियो का हृदय और आत्मा बन गया। उत्तर इटली के लगभग सभी नगरो द्वारा लबार्ड लीग की स्थापना मिलन नगर के नेतृत्व में की गयी जिसे सम्राट् के विरुद्ध पोप का आशीर्वाद प्राप्त था। बारबरोसा प्रथम और एलेक्जेंडर तृतीय के बीच दो महान् योद्धाओ का युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध जो ११७४ मे शुरू हुआ वह ११७६ ई० तक चलता रहा जब तक कि लबार्ड की सेना ने लेग्नानो के प्रसिद्ध युद्ध मे सम्राट् को बुरी तरह पराजित नहीं कर दिया। सम्राट् ने इटली के नगरो पर अपने अधिकार का त्याग कर दिया और वे स्वतन्त्र हो गये। फिर भी दोनो ही अपने प्रभुत्व का दावा करते रहे। चार वर्ष बाद एशिया माइनर के एक धर्म-युद्ध मे बारबरोसा का प्राणात हो गया। उसका उत्तराधिकारी ११९० मे उसका पुत्र हेनरी षष्ठ बना। यद्यपि उसने उल्लेखनीय किन्तु अस्थायी सफलता पायी, ११९७ मे अल्पायु मे उसकी मृत्यु हो गयी।

पोपतन्त्र अपने चरमोत्कर्ष पर

इनोसेंट तृतीय—जब इनोसेंट तृतीय को ११९८ में पोप निर्वाचित किया गया तो पोपतत्र की सत्ता अपने उत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी। पूरे १८ वर्ष तक न सिर्फ वह विश्व-

व्यापी चर्च पर शासन करता रहा, बल्कि सपूर्ण ससार पर ही उसका शासन रहा। उसने असीमित विश्वव्यापी अधिकार का दावा किया न सिर्फ परपरा से बल्कि धर्म-विधान से भी जिसका उसने गहरा अध्ययन किया था। पोप इनोसेंट तृतीय ने घोषणा की—जब कि राजपुत्रो को सत्ता पृथ्वी पर दी जाती है, पादरियो को वह आकाश से भी प्राप्त होती है। पहले को वह अधिकार शरीर पर ही प्राप्त होता है, दूसरे को आत्मा पर भी। उसने एक ऐसे न्यायालय इन्क्वीजिशन (Inquisition) (चर्च की विशेष व्यवस्था जिसके अतर्गत नास्तिको पर मुकदमा चलाया जाता था) की स्थापना की ताकि नास्तिकता को विधिवत् नष्ट किया जा सके। पोप के रूप मे जीवनपर्यन्त वह यूरोप का निर्णायक बना रहा।

इनोसेंट तृतीय ने जर्मनी और इटली का एकीकरण नही होने दिया। जब फ्रास का राजा फिलिप आगस्टस अपनी डेनमार्क निवासिनी पत्नी का त्याग करके अन्य ब्याह करना चाहता था, इनोसेंट तृतीय ने निषेध की धमकी देकर उसे ऐसा करने मे रोका। पोप ने इग्लैंड के राजा जान को भी १२१३ मे तब घुटने टेकने को बाध्य किया, जब वह स्टीफन लागडन को कैंटरबरी का आर्कबिशप मानने को तैयार नही था। न सिर्फ उसने स्टीफेन लागडन को स्वीकार किया, पोप की यह कहकर अभ्यर्थना भी की कि उसका राज्य पोप की ओर से उसे एक धार्मिक देन 'फिफ' (Fief) है। इस प्रकार इनोसेंट तृतीय के दिनो मे पोप तत्र की शक्ति अपने विजयोल्लास के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी।

फ्रेडरिक द्वितीय (१२१२-१२५०) और लून की परिषद—फ्रेडरिक प्रथम के पौत्र फ्रेडरिक तृतीय ने प्रभुता के सघर्ष को पुनरुज्जीवित कर दिया। अपने पितामह की भाँति उसने भी पोप को चुनौती दी और अपने साम्राज्य को इटली तक विस्तृत करने का प्रयास किया ताकि पोप तत्र का राज्य भी उसमे शामिल किया जा सके। अनेक वर्षों के शाब्दिक युद्ध और तलवार युद्ध के बाद शाही सेनाएँ इटली मे खदेड़ दी गयी और १२४५ मे ल्यून्स, फ्रास मे पोप द्वारा सम्राट् को पदच्युत कर दिया गया। पाँच वर्ष उपरान्त फ्रेडरिक द्वितीय का प्राणात हो गया और उसके साथ ही उसके साम्राज्य का भी अत हो गया।

(घ) चर्च और राज्य के बीच सघर्ष का प्रभाव

१ **पोप तत्र की अस्थायी विजय**—उपरोक्त प्रकार से लबा और कड़वा सघर्ष समाप्त हुआ और पोप की अस्थायी विजय के साथ साम्राज्य का अत हो गया।

२. **पोपतत्र का अतर्राष्ट्रीय प्रभुत्व**—इस सघर्ष के बीच पोप ने आध्यात्मिक और धर्मनिरपेक्ष अधिकार और मध्य इटली में एक क्षेत्रीय राज्य के शासन के सहित दभपूर्ण दावे के साथ अन्तर्राष्ट्रीय प्रभुत्व का बलपूर्वक दावा किया।

३ **चर्च की दुर्बलता प्रकट हो गयी**—इस सघर्ष ने विभिन्न कारणो पर चर्च की दुर्बलता को प्रकट कर दिया। चर्च निरपेक्ष मामलो में अस्वास्थ्यकर रुचि से जिसका

प्रदर्शन पोप ने अपने सच्चे सासारिक रूप से दिखाया, चर्च की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाया।

४. **राष्ट्रीयता का विकास**—इस सघर्ष ने कुछ देशो मे राष्ट्रीयता की शक्तियो और आवेग का विकास किया, विशेष रूप से फ्रास और इग्लैण्ड मे, जहाँ के राजा धीरे-धीरे शक्ति सचय कर रहे थे और सामती उपद्रव मे से एक केन्द्रीय क्षेत्रीय राज्य का निर्माण कर रहे थे।

५ **इटली और जर्मनी के एकीकरण पर रोक**—इस सघर्ष ने जहाँ एक ओर इग्लैंड मे राष्ट्रीयता का विकास किया, वही दूसरी ओर इटली और जर्मनी मे एक केन्द्रीय शक्तिशाली सरकार का विकास अथवा राष्ट्रीय एकीकरण तक रोक दिया। उन्हे राष्ट्रीय रूप से एक होने मे सदियाँ लग गयी।

६ **सुधार की तैयारी**—इस सघर्ष के फलस्वरूप पोप और पादरी आध्यात्मिक से अधिक सासारिक हो गये, क्योकि पादरियो मे सासारिकता और भ्रष्टाचार की भावना उत्तरोत्तर बढती ही गयी। पोप एलेक्जेंडर छठे (१४९२-१५०३) ने अपने दुर्व्यसनो और बुराइयो का प्रदर्शन किया और उसके पादरी तक आध्यात्मिक से अधिक सासारिक बन गये। फलस्वरूप चर्च को गहरी क्षति पहुँची। विशप राजकुमारो के समान रहने लगे और धनाढ्य बन गये। मठो तक ने अपने आदर्शों को परे कर दिया और एबाट तथा भिक्षु सामतो के समान विलासपूर्ण जीवन विताने लगे। इस सबने प्रोटेस्टेन्ट सुधार के लिये मार्ग प्रशस्त किया।

प्रश्नावली

१ मध्ययुग मे जिन तत्वो ने चर्च को शक्तिशाली बनाया उनकी चर्चा करिये।
२ मध्ययुगीन चर्च मे कौन से दोष थे ?
३ पोप और सम्राट् के बीच सघर्ष के कारणो को समझाइये।
४. पोपतत्र और साम्राज्य के सघर्ष का सूक्ष्मतापूर्वक परीक्षण कीजिये।
५ चर्च और राज्य के बीच सघर्ष के क्या कारण थे ?
६ निम्नलिखित पर छोटी टिप्पणियाँ लिखिये :—
(अ) मध्ययुग मे चर्च सस्था,
(ब) मध्ययुग मे चर्च की भूमिका,
(स) मध्ययुग मे चर्च के दोष,
(द) मध्ययुग में साम्राज्य,
(य) ग्रेगरी तृतीय और हेनरी चतुर्थ के बीच सघर्ष,
(र) वर्म्स का समझौता।

उन्नीसवाँ अध्याय

राष्ट्रीय राज्यो का उदय

(अ) नगरो का उद्भव और विकास

वाणिज्य, व्यवसाय और उद्योग—रोमन साम्राज्य के अवसान के साथ ही अधिकाश नगर मृत होकर लुप्त हो गये तथापि मध्ययुग के उत्तरार्द्ध मे व्यापारिक सस्थाओ और व्यापारियो तथा निर्माताओ की समितियो ने नगरो को समृद्ध बनाया और उनमे स्वतन्त्र अस्तित्व की भावना भर दी। किन्तु निजी नगरो का उद्भव कैसे हुआ और एक विशेष स्थल पर क्यो हुआ, यह एक विवादास्पद विषय है। तथापि सबसे तर्कसगत बात यही लगती है कि मध्ययुग के उत्तरार्द्ध मे व्यापारी, व्यवसायी और कारीगर एक सुरक्षित स्थान पर रहने लगे जिसकी भौगोलिक स्थिति व्यापार की दृष्टि से अनुकूल रही होगी। व्यापार और वाणिज्य मे रोम के लोग प्रतिभावान थे अतएव रोम के नगर व्यापार-वाणिज्य के प्राकृतिक मार्ग मे उनके केन्द्र के रूप मे सुरक्षित रहे, क्योकि उनके चारो ओर सुरक्षा के लिए दीवारे खडी कर दी थी।

दुर्ग (वर्ग्स)—चारो ओर से सुरक्षित 'वर्ग्स' का भी निर्माण सैनिक और प्रशासनिक कामो के लिए किया गया था। उदाहरणार्थ 'पाँच वारो' इगलैंड के ड्यूक द्वारा वनाये गये थे ताकि इसमे विजित लोगो को रखा जा सके। इसी प्रकार छोटे-मोटे किलो और धर्म स्थानो द्वारा भी सुरक्षा दी जाती थी। व्यापारी, व्यवसायी और कारीगर इन दुर्गों के आसपास रहते थे ताकि खतरा होने पर इनके भीतर शरण ले सके। ये ही 'नये वर्ग्स' की जनसख्या का एक भाग वने जिनसे वाद मे 'वर्गर्स' नाम वना।

'वर्गर्स'—इनका एक नया सामाजिक वर्ग वना। इन्होंने अपने लिए नयी सामाजिक स्थिति पैदा की। नये कानून, रीति-रिवाज वनाये, अपने व्यापार, वाणिज्य, उद्योग को चलाने के लिए नये तरीके अपनाये और प्रशासन की नयी-नयी प्रणालियो का प्रयोग किया। यद्यपि स्थानीय परिस्थितियाँ भिन्न थी और कुछ स्थानो पर तो वहुत अधिक भिन्न थी, फिर भी 'वर्गर्स' की सामाजिक स्थिति और नगरो का आतरिक प्रशासन यूरोप भर मे एक जैसा ही था। इसका कारण यह था कि वाणिज्य-व्यवसाय मे लगे हुये लोगो की आवश्यकताएँ और समस्याएँ भी सभी जगह एक जैसी थी। वर्गर्स या तो भूमि को खरीद लेते थे या अपनी स्वतन्त्रता के लिए जूझते रहते थे। उदाहरणार्थ उत्तरी इटली के लोम्बार्ड नगर ग्यारहवी शताब्दी में लगभग अर्ध शताब्दी तक अपने धर्म गुरुओ और शासको के विरुद्ध लडते रहे।

नगर सरकार—विशिष्ट प्रकार के मध्ययुगीन नगरो की सरकारो की स्थापना नगर के उन निवासियो ने की जो पार्लियामेंट मे अपने प्रतिनिधि भेजा करते थे। स्थानीय सामन्त के साथ मिलकर उन्होने अपने मे से ही 'बर्गरो' का चुनाव करके एक परिषद् की स्थापना की जिनमे से कुछ कार्यवाहक अधिकारी बने और कुछ मैजिस्ट्रेट। उनका काम था आय पर प्रत्यक्ष कर लगाना और उसे इकट्ठा करना और माल की 'बिक्री पर अप्रत्यक्ष कर लगाना। इस प्रकार एकत्र किया गया राजस्व सरकार चलाने के लिए और राजा अथवा सामन्त को कर की अदायगी के काम आता था। नगर कार्यवाहक अधिकारी और मैजिस्ट्रेट नगर के बाजारो का निरीक्षण करते थे और चुगी एकत्र किया करते थे जो नगर के राजस्व का महत्वपूर्ण अग था। अधिकाश मे सरकार धनिक, जायदाद मालिको, व्यवसायियो, व्यापारियो और उद्योगपतियो के हाथो मे रहती थी जो नगर की सभी प्रकार की सस्थाओ के नेता हुआ करते थे।

मुक्त नगर राज्य—पवित्र रोम साम्राज्य के पतन ने जर्मन, नीदरलैंड, उत्तरी इटली के नगरो के लिए यह सम्भव बना दिया कि वे अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके, उसे सुरक्षित रख सके और अपने आपका मुक्त नगर राज्य के रूप मे विकास कर सकें। प्रोफेसरो हेस, मून और वे लैंड का कथन है—'ये नगर कला और शिक्षण के केन्द्र बन गये, चूँकि आत्म-शासन का उन्हे अवसर मिला था और साथ ही उसको चलाने का उत्तरदायित्व भी, उन्होंने आधुनिक प्रजातन्त्र के अनेक कार्यों को सफलतापूर्वक कर दिखलाया। उदाहरणार्थ वेनिस, जिनेवा, मिसा, फ्लोरेंस, मिलन, ल्युवेक, ब्रेमन, हैंबर्ग, डेंगिग, कोलग्री, बुजेस एव घेन्ट आदि मध्यकालीन योरुप के कुछ मुख्य एव महत्वपूर्ण स्वतन्त्र नगर राज्य थे। इनमे से प्रत्येक नगर राज्य की अपनी सरकार थी जो अपने कानून बनाती थी, अपने न्यायालय चलाती थी। अपने सिक्को का प्रचलन करती थी और अपनी सेना रखती थी। यदि वह नगर राज्य एक बन्दरगाह हुआ तो वहाँ की सरकार नौसेना भी रखती थी।

राष्ट्रीय राज्य नगर—इगलैड, फ्रास, स्कैंडीनेविया के देशो, पोलैण्ड, हगरी, स्पेन और दक्षिणी इटली मे वहाँ के शासक ने सामन्तो, जमीदारो पर प्रभुत्व स्थापित कर एक शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता का निर्माण किया। ऐसे देशो के राष्ट्रीय शासन ने नगरो को अपने अधिकार मे लेकर राष्ट्रीय राज्य मे मिला लिया तथापि इन शासको ने ऐसे नगरो की माँगो को उदारतापूर्वक स्वीकार किया ताकि वे अपना प्रशासन स्वय चला सकें और राष्ट्रीय ससद मे अपने चुने हुये प्रतिनिधि भी भेज सके।

(व) राष्ट्रीय राज्यो का उदय

राष्ट्रीय राज्य क्या है—राष्ट्रीय राज्य ऐसे लोगो का राजनीतिक सगठन है जिनमे एकता के सूत्र तैयार हैं और जो एक ही भाषा, एक ही राजनीतिक, आर्थिक

आदर्शो, ध्येयो से प्रेरित है, जिनकी संस्कृति एक है और सबसे बडी बात यह है कि उनकी एक ही ऐतिहासिक विरासत है। ऐसा राज्य अपने क्षेत्र मे पूर्ण सत्ता सम्पन्न होता है।

मध्ययुग मे कोई भी राष्ट्रीय राज्य नही थे। समूचे पश्चिमी यूरोप मे लगभग सामन्तशाही और स्थानीय शासन थे। १४वी शताब्दी तक धार्मिक रोम साम्राज्य मे सामन्तशाही और स्थानीय शासन था और जर्मनी तथा इटली मे नगर राज्यो का बाहुल्य था। तथापि आज के इग्लैंड, फ्रास, स्पेन, पुर्तगाल और स्कैन्डिनेविया के देशो वाले क्षेत्रो मे राष्ट्रीय राज्यो का उद्भव हो रहा था।

राष्ट्रीय राज्य किन तत्वो से बने—निम्न कुछ ऐसे तत्व हैं जो लोगो मे राष्ट्रीयता को जन्म देते हैं—

१ उपयोगी तत्व—व्यापारी, व्यवसायियो, दुकानदारो, निर्माताओ ने यह अनुभव करके कि वे शाति और कानून व्यवस्था ठीक होने पर ही समृद्ध हो सकते है, शासको को राष्ट्रीय राज्यो की स्थापना मे पूर्ण समर्थन दिया। जायदाद मालिको ने राजाओ को समर्थन इसलिए दिया कि उनके अधिकारो और जायदाद की सुरक्षा रहे। मजदूरो ने अपना समर्थन इसलिये दिया कि वे अपना काम बिना भय के कर सके। इटली मे मेडिसी 'फुगर' ने जर्मनी और आस्ट्रिया मे और 'रोलिस' ने फ्रास मे अपने शासको को उनकी विभिन्न योजनाओ के लिए पूरी सहायता की।

२ व्यवस्था और स्वामित्व के लिए स्वाभाविक इच्छा—राष्ट्रीयता का उद्भव व्यवस्था और स्वामित्व के लिए स्वाभाविक इच्छा से भी होता है। इसके बिना कोई भी राज्य अधिक दिनो तक जीवित नही रह सकता।

३ समान सस्कृति—एक ही सस्कृति लोगो को एक साथ रहने मे हमेशा सहायता करती है। विभिन्न भाषाओ का विकास जो अपने विचार प्रकट करने के लिए अभिव्यक्ति का समान साधन है, एकता को नजदीक लाने मे शक्तिशाली सिद्ध होता है। इसकी राष्ट्रीय परम्पराओ को साहित्य द्वारा पीढी दर पीढी सुरक्षित रखा जा सकता है। कोई भी राष्ट्रीय राज्य परम्परा के बिना वास्तविक नही है। डा० जे० ई० स्वेन लिखते है स्विट्जरलैण्ड मे विलियम टेल की, स्काटलैण्ड मे बलाइड हेरी की सर विलियम वैलेस और फ्रास मे राबर्ट ब्लान्डेल की कविताओ की परम्परा ने इन विभिन्न देशो की राष्ट्रीय आत्मा को उन्नत कर दिया।

४ रोमन कानून—रोम के कानूनो की पुनर्स्थापना ने जो समुदायिक से अधिक क्षेत्रीय थे, राष्ट्रीय राज्यो के विकास को सहायता पहुँचाई। इसका कारण यह था कि इसमे शासक की सत्ता की महत्ता पर बल दिया गया था।

५ अधिकार में केन्द्रीयकरण की आवश्यकता—सामन्तशाही के प्रयोगो ने अधिक स्थिर और केन्द्रीय अधिकार की आवश्यकता पर बल दिया।

६. क्रिश्चियन चर्च—अत मे क्रिश्चियन चर्च ने इग्लैंड, पोलैण्ड, स्पेन आदि मे राष्ट्रीय प्रणाली की स्थापना की जिससे राष्ट्रीय राज्यो की स्थापना को प्रोत्साहन मिला।

ये सभी तत्व क्रमश विकसित होते गये और राष्ट्रीय राज्य क्रमश अस्तित्व में आते गये। अत मे शासक असख्य सामन्तो पर विजयी हुये। इस प्रकार इग्लैंड, फास, स्काटलैड, हगरी, पोलैंड, डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन आदि क्रमश अपने शासको के अतर्गत राष्ट्रीय राज्य बन गये।

सामन्तवाद और राष्ट्रीयवाद—सामन्ती राज्यो को राष्ट्रीय राज्यो का पूर्वज माना गया था। प्रारम्भ मे कई राज्यो का गठन सामन्ती प्रणाली पर किया गया था क्योकि अधिकाश यूरोपीय राज्य सामन्तो की गतिविधियो से विकसित हुये थे। उदाहरणार्थ, फास का एकीकरण इटली और फास के शासको के प्रयासो से हुआ। आरगान और कास्टील मे सामन्ती राज्यो ने स्पेन के अस्तित्व मे आने मे योगदान दिया। हैप्सवर्ग के सामन्ती परिवार ने अतत आस्ट्रिया का एकीकरण किया।

इसके अलावा, राष्ट्रीय राज्यो की सरकारो ने अधिकाश सामन्ती रीति-रिवाज अपनाये जिसमे से कई सामन्ती रिवाज तब तक चलते रहे, जब तक १७८९ की फासीसी क्राति ने उन्हे उखाड न फेका। विजेता विलियम्स इग्लैंड एक सामन्ती प्रण, जिसे १०८६ का सैलिस्बरी प्रण कहते हैं, लिया करता था ताकि उसकी प्रजा एकता के सूत्र मे बँधी रहे। १५वी शताब्दी के अत तक इनमे से कई प्रथाओ का रिवाज था। रूस, आस्ट्रिया और जर्मनी की राज्य सरकारो मे ऐसी प्रथाएँ पश्चिम यूरोप की अपेक्षा बहुत समय बाद तक बनी रही। ये रीति-रिवाज १९१७ की रूसी क्राति मे उखड गये।

(स) राष्ट्रीय सरकारो का विकास

आधुनिक राष्ट्रीय राज्यो का प्रारम्भ मध्ययुग मे हुआ था जिसका वर्णन निम्न है :—

जर्मनी—वर्डम (८४३) की सधि, जिसका उल्लेख पिछले अध्याय मे है, ने फ्रैंकश राज्य को तीन भागो मे विभाजित किया है जिसमे से दो जर्मनी और फ्रास बने। ९११ मे जर्मनी और फ्रैंकिश राज्य के अतिम फ्रैंकिश उत्तराधिकारी की मृत्यु हो गयी। आठ वर्ष बाद अर्थात् ९१९ मे हेनरी आफ सैक्सोनी को जर्मनी का शासक चुना गया। उसने ब्राडेनबर्ग, मिस्सेन और लारेस की विजय करके अपनी सीमाओ का विस्तार कर लिया और एक राष्ट्रीय राज्य का निर्माण किया। ९६२ मे ओटो प्रथम को पवित्र रोम के सम्राट् के रूप मे अभिषेक किया गया जो क्रिश्चियन धर्म पर शासन का प्रतीक था किंतु सम्राट् और पोप के लम्बे सघर्ष मे इस साम्राज्य का अत हो गया और इटली

की राजनीतिक एकता रुक गयी तथापि आधुनिक जर्मन राज्य का जन्म बहुत बाद अर्थात् १८७१ मे हुआ ।

इग्लैंड—इग्लैंड का राष्ट्रीय राज्य विभिन्न आक्रमणकारियो के एकीकरण का परिणाम था जिसमे एग्लोसैक्सन, डेन और नार्मन भी थे । १०६६ विलियम, ड्यूक आफ नार्वे ए डी ने पोप के आशीर्वाद से चैनल को पार करके हेस्टिंग्स के युद्ध मे राजा हैरालड को मौत के घाट उतार दिया और १७७५ मे इग्लैंड की विजय पूरी कर ली । उसके बाद उसने सरकार का सामन्ती पद्धति पर केन्द्रीयकरण कर लिया, किन्तु उदारतापूर्वक और बुद्धिमत्तापूर्वक राज्य करता रहा ।

प्रलय पुस्तक और सैलिस्बरी प्रण—विजेता १०८६ में विलयम प्रथम ने जो विजेता विलियम के नाम से भी जाना जाता है, आदेश दिया कि उसके अधिकारी इङ्गलैंड मे घूमकर प्रत्येक व्यक्ति की जायदाद की सूची बनावें । इन सूचियो द्वारा एक पुस्तक बनी जिनका नाम रखा गया, प्रलय की पुस्तक । इस पुस्तक की सहायता से राजा यह बतला सकता था कि किसे सरकार को कितना कर देना है । उसी वर्ष सभी जमीदार सैलिस्बरी मे इकट्ठे हुए और उन्होंने राजभक्ति की शपथ ली । इस प्रकार राजा के प्रति स्थानीय जमीदार के बदले स्वामिभक्ति की भावना पनपी । इस प्रण का नाम 'सैलिस्बरी ओथ' है । इसी के द्वारा अग्रेजी राष्ट्रीय राज्य की नीव पडी ।

हेनरी द्वितीय और अग्रेजी कानून का विकास—नार्मन विजय के लगभग १०० वर्ष बाद हेनरी द्वितीय ने (११५४-११८९) जो नये राजाओ की पक्ति मे पहला था, विजेता विलियम के काम को जारी रखा । उसका सबसे महत्वपूर्ण और चिरस्थायी कार्य था इङ्गलैंड की अदालती पद्धति मे सुधार, जिसे उसने राजाज्ञाओ की शृखला द्वारा किया और उसे एसेजीज़ नाम दिया । उसने ही दो कानूनी कार्य-पद्धतियो का प्रारम्भ किया एक भ्रमणशील न्याय और जूरी प्रणाली । स्थानीय कानूनो, पुराने सामती कानूनो का स्थान राजा के कानूनो और राजा के न्यायाधीशो के निर्णय ने ले लिया । इससे यही इग्लैंड के "सामान्य कानून" का जन्म हुआ जो विधिबद्ध न होकर न्याया-धीशो के द्वारा बनाया गया था ।

मैग्नाकार्टा—इङ्गलैंड की राष्ट्रीय सरकार के विकास मे अगला महत्वपूर्ण कदम था स्वतन्त्रता का घोषणा पत्र जो मैग्नाकार्टा के नाम से प्रसिद्ध है । सन् १२१५ मे सरदारो ने जो राजा के विरुद्ध थे, कुछ धर्मगुरुओ और मध्यवर्गीय व्यक्तियो को मिलाकर राजा जॉन, पुत्र हेनरी द्वितीय को, स्वतन्त्रता के उस महाघोषणा पत्र (Megna Carta) पर अपनी राजमुद्रा अकित करने और हस्ताक्षर करने को विवश किया । जिसने प्रत्येक व्यक्ति को कुछ मूलभूत अधिकार प्रदान किये । यह राजा के पूर्ण प्रभुत्व पर जनता की विजय थी । इसके अतिरिक्त राजा जॉन को बाध्य किया

गया कि वह पोप को इङ्गलैंड का सामन्ती आधिपत्य स्वीकार करे। यह एक सामान्य विश्वास की बात है परन्तु वास्तव मे इनमे बड़े-बड़े सामन्तो एव चर्च के बिशपो आदि को ही अधिकार प्राप्त होते थे। इस प्रलेख मे सर्वसाधारण व्यक्ति के अधिकारो की कही भी चर्चा नही है।

पहली लोकसभा—राजा जॉन का पुत्र और उत्तराधिकारी था हेनरी तृतीय। इसका शासनकाल लम्बा (१२१६-१२७२) किन्तु सकटपूर्ण था क्योकि इसने महान् घोषणापत्र का उल्लघन करने का प्रयास किया। इसके फलस्वरूप एक गृहयुद्ध हुआ जिसमे हेनरी पराजित होकर १२१४ मे बन्दी बना दिया गया। साइमन मेटिफोर्ड, राजा के रिश्तेदार और गृहयुद्ध मे सामन्तो के प्रमुख नेता ने लोकसभा की बैठक बुलाई। यह एक नयी लोकसभा थी, क्योकि सरकारो, धर्मगुरुओ के अतिरिक्त जो पुराने राजा की परिषद् के सदस्य थे, साइमन ने प्रत्येक 'शायर' से दो सरदार और प्रत्येक नगर से दो नगरवासियो को प्रतिनिधि के रूप मे बुलाया। इन लोक प्रतिनिधियो ने वर्तमान लोकसभा हाउस ऑफ कामन्स की नीव डाली, और इस प्रकार दोनो मिलकर ससद (पार्लियामेट) कहलाये।

आदर्श ससद—हाउस ऑफ कामन्स को ससद का नियमित अग बनाने की दिशा मे अतिम विशिष्ट कदम राजा एडवर्ड प्रथम ने १२९५ मे उठाया। तब से सरदारो तथा धर्मगुरुओ के साथ देहातो और नगरो के प्रतिनिधि राष्ट्रीय विधि निर्माण संस्था अर्थात् ससद (पार्लियामेट) मे बैठने लगे। तबसे वह आदर्श ससद के रूप मे जानी जाने लगी।

इस प्रकार अस्तित्व मे आया इङ्गलैंड का राष्ट्रीय राज्य।

फ्रास—यहाँ स्मरण कराना आवश्यक है कि चार्लमैग्ने के साम्राज्य का पश्चिमी भाग जो ८४३ मे वर्डम की सधि के अनुसार विभाजित किया गया था, फ्रास कहलाया। यह मुख्यतया पुराना फ्रैंकलेंड था जहाँ सामन्तवाद इग्लैंड की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली था।

फिलिप आगस्टस—शाही अधिकार ने फ्रास मे निश्चित रूप फिलिप द्वितीय के अन्तर्गत लिया जो फिलिप आगस्टस के नाम से जाना जाता था। वह फ्रास का ११८० से १२२३ तक पहला शक्तिशाली शासक था। उसने इग्लैंड के राजा जॉन को १२१४ मे वार्विस मे पराजित किया, उसकी फ्रासीसी भूमि ले ली, फ्रास की सरकार का सुधार किया और सामन्ती अधिकारियो के स्थान पर अपने अधिकारियो की नियुक्ति की। सक्षेप मे उसने सामन्तवाद को तलवार नीति और शाही कानून से जीता। उसने शाही मुद्रा का प्रारम्भ किया और राष्ट्रीय न्यायालयो और सेना का सगठन भी किया।

लुई नवाँ (१२२६-१२७०)—लुई ९वाँ फिलिप द्वितीय का पौत्र, मध्ययुग का एक आदर्श क्रिश्चियन राजा था। उसके जीवन का एकमात्र ध्येय था सबके प्रति

न्याय करना, उसे चर्च द्वारा सत लुई कहा गया। उसने फ्रासीसी प्रभुसत्ता को अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा और बुद्धिमत्तापूर्ण कानूनो द्वारा शक्तिशाली बनाया।

फिलिप्स फेयर और एस्टेट्स जनरल आफ फ्रास—फिलिप्स चतुर्थ जो सामान्य रूप से फिलिप्स दि फेयर कहलाता था, और लुई १४वे का पौत्र था, १२८५ से १३१४ तक फ्रास का चतुर, दम्भी और अत्यन्त महात्वाकाक्षी शासक था। उसने फ्रासीसी धर्मगुरुओ पर राजा दरबार मे मुकदमा चलाने और उनसे कर वसूल करने के अधिकार पर बल दिया। जब पोप ने उन्हे निष्कासित और पदच्युत करने की धमकी दी तो उसने ससद की एक बैठक बुलाई जिसे एस्टेट्स जनरल ऑफ फ्रास का नाम दिया गया। उसमे जनता के तीन वर्ग शामिल थे · धर्मगुरु, सरदार और जन-सामान्य। बाद मे धर्मगुरुओ ने पहली एस्टेट, सरदारो ने दूसरी एस्टेट और जन-सामान्य तीसरी एस्टेट स्थापित की।

ज्योही धर्मगुरुओ ने, रोम मे पोप को सीधे दिये जाने वाले करो का बोझा अनुभव किया, उन्होंने राजा का पूरा समर्थन शुरू किया। वृद्ध पोप बोनीफेस आठवे ने इससे अपमानित अनुभव किया और मृत्यु को प्राप्त हुआ। बाद मे १३०५ मे, पोप का राजमहल रोम से एवीग्नान स्थानातरित कर दिया गया, जहाँ वह फ्रास के राजा के प्रभाव मे रहने लगा।

इस प्रकार फिलिप्स चतुर्थ के शासनकाल के अत मे १३१४ मे अधिकाश सामन्ती प्रमुख राजा के निमन्त्रण मे आ गये और सामन्तवादी सस्थाएँ निष्क्रिय हो गयी। देश की राजधानी पेरिस बन गयी। फ्रास का राजा अतत फ्रास का राष्ट्रीय राज्य सर्वोच्च बन गया।

अन्य राष्ट्रीय राज्य—साथ ही इसी काल मे स्काटलैंड, पोलैंड, हगरी, स्कैन्डि-नेविया के देशो का भी राष्ट्रीय राज्यो के रूप मे उदय हुआ। बारहवी शताब्दी मे मास्को महान रूसी राज्य का केन्द्र बन गया और १४वी शताब्दी तक वह एक महान् शक्तिशाली और सयुक्त देश बन गया। स्पेनिश पेनिन्सुला मे तीन राष्ट्रीय राज्य अस्तित्व मे आये—पुर्तगाल, कास्टील और आरगान। इस प्रकार १४वी शताब्दी तक यूरोप का अधिकाश भाग राष्ट्रीय आधार पर राजनीतिक रूप मे सगठित हो गये। इटली, जर्मनी और नीदरलैंड को छोडकर जहाँ क्षेत्रीय भावना अब तक बलशाली थी, यूरोप मे लगभग सभी स्थानो पर अपने-अपने राष्ट्रीय राजाओ के अन्तर्गत राष्ट्रीय राज्यो का उद्भव हुआ।

प्रश्नावली

१ मध्ययुग के नगरो के उद्भव और विकास का चित्र खीचिए।

२ राष्ट्रीय राज्य से आप क्या समझते हैं ? मध्ययुग मे जिन तत्वो ने राष्ट्रीय राज्यो का विकास किया, उन्हें समझाइये ।

३ मध्य युग मे इगलैंड के राष्ट्रीय राज्य के विकास पर चर्चा करिये ।

४ मध्ययुग मे फ्रास किस प्रकार राष्ट्रीय राज्य बना ?

५. निम्न पर छोटी टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) मध्ययुग मे नगर प्रशासन,

(ब) प्रलय पुस्तक और मैनिस्वरी प्रण,

(स) मैग्नाकार्टा,

(द) पहला हाउस ऑफ कामन्स,

(य) आदर्श पार्लियामेंट ।

बीसवाँ अध्याय

निरंकुशता का उत्कर्ष

(अ) निरकुशता के युग की व्याख्या

इसके अर्थ—निरकुश सत्ता—सत्रहवी और अठारहवी सदियो की सर्वाधिक विशिष्ट विशेषता थी—यूरोप भर मे निरकुशता का उत्कर्ष। एक तत्र तथा निरकुशता का विकास, अपनी पूरी शान के साथ, अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। "निरकुश राजतत्र की स्थापना नरपति के ईश्वरीय अधिकार के सिद्धात पर हुई थी। इसीलिए नरपतियो को अबाध अधिकार प्राप्त थे।" इसका मूल्य मिलता था, डाक्टर चे० ई० स्वेन ने लिखा है "राजनैतिक सत्ता तथा न्याय के उद्गम को प्राप्त करके, राज्य का स्वामी बनकर तथा सब बौद्धिक कार्यकलापो का अधिकर्मी बनकर।"

वैभव या महिमा—इनमे से कुछ नरपति मात्र निरकुश ही नहीं, महान भी थे। महिमा तथा वैभव के प्रति उनकी आसक्ति उन्माद की सीमा तक थी। उनके राज दरबार तथा राजमहल अमीरी, सभा भवनो, उत्कृष्ट दर्पणो, उद्यानो, आकर्षक फौव्वारे तथा अन्य विलासोपकरणो से जगमगाते रहते थे। वस्तुत फ्रास का लुई चौदहवाँ यूरोप मे वैभवशाली नरपति का एक ज्वलत आदर्श है।

प्रबोधन तथा परोपकारिता—परन्तु, उनमे से कई प्रबुद्ध तथा 'परोपकारी' निरकुश शासक भी थे। वे प्रगतिशील चिंतक थे, तथा उन्होंने अपनी प्रजा के कल्याण के लिए अनेक सुधार-कार्य आरम्भ किये। एक सीमा तक, वे अपनी प्रजा के साथ 'पितृतुल्य' व्यवहार करते थे। लेकिन, फिर भी, उन्हे निरकुश शासन कहा जाता था, क्योंकि अपनी प्रजा पर अपने निरकुश अधिकार की रक्षा करने तथा उसे दृढतर करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहते थे। प्रशिया के फ्रेडरिक महान, रूस के पीटर महान, स्पेन के चार्ल्स तृतीय तथा आस्ट्रिया के जोसेफ द्वितीय को यूरोप के प्रबुद्ध निरकुश शासको के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। अपने राज्य-काल में उन्होंने कला, स्थापत्य-कला, विद्या तथा साहित्य को पूरे मन से सरक्षण प्रदान किया, तथा उद्योग, व्यापार एव वाणिज्य को पूरा प्रोत्साहन दिया।

(आ) यूरोप मे निरकुशता के उदय के कारण

जैसा कि नीचे समझाया गया है, यूरोप मे निरकुश राजतत्र के उदय के लिए अनेक कारण जिम्मेदार थे—

१ **सामती अव्यवस्था तथा उलझन**—यूरोप मे निरकुशता के विकास मे जिन कारणो का हाथ था, उनमे एक था मध्य युग के सामत, लार्ड तथा अभिजात-वर्ग द्वारा

उत्पन्न अव्यवस्था, अराजकता तथा अस्तव्यस्तता, जिसके कारण साधारण जनता को बहुत कष्ट सहने पडते थे। इसलिए, साधारण जनता चाहती थी कि उस पर निरकुश राजतत्र का शासन हो, ताकि वह शात और व्यवस्थित जीवन विता सके।

२. धर्मयुद्धों का प्रभाव—मध्यकाल के धर्मयुद्धो के कारण ईसाई राजकुमार, सामत, सूरमा तथा पश्चिम के साधारण लोग पूर्व के सपर्क मे आये, जहाँ निरकुश राजतत्र की जडे गहरी जम चुकी थी, और जो शासन के मान्य रूप मे स्वीकृत हो चुका था। इसका उन पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडना स्वाभाविक ही था। इसके अलावा धर्मयुद्धो मे जाने वाले अधिकाश सामत, लार्ड आदि वापस नही लौटते थे, और जो लौटते भी थे, वे इतने आसक्त होते थे कि नरपतियो के तख्ते नही पलट सकते थे।

३ उद्योग व्यापार का विकास—व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के द्रुत विकास तथा छोटे और वडे नगरो के जन्म होने से निरकुश राजतत्र के विकास को प्रोत्साहन मिला। मध्यमवर्गीय लोगो, जैसे व्यापारियो, उद्योगपतियो तथा साधारणजन ने पूरे मन से निरकुश राजतत्र का समर्थन किया, ताकि वे अवाध रूप से अपना काम-धघा चला सके, और शात तथा व्यवस्थित जीवन व्यतीत कर सके। इन्ही मध्यमवर्गीय लोगो मे से "नरपतियो को वकील, उपयोगी अधिकारी, शासन के लिए धन तथा सेनाओ के लिए सैनिक मिले।"

४ पुनर्जागरण तथा नवनिर्माण—पुजर्नागरण तथा नवनिर्माण द्वारा भी निरकुश राजतत्र के विकास मे सहायता मिली। ग्रीक और लैटिन साहित्य के राजनैतिक और धार्मिक अध्ययन से लोगो को पूरा विश्वास हो गया कि प्राचीन रोमन केवल एक आदमी की निरकुश प्रभुता के तले ही समृद्ध हो सके थे। इसके अलावा, नव निर्माण ने रोमन चर्च की राजनैतिक और धार्मिक प्रभुता और प्रसिद्धि को गहरा धक्का पहुँचाया था। प्रोटेस्टेन्ट देशो मे चर्च राज्य का एक विभाग भर बनकर रह गया था, कारण उसके अधिकारी राजभक्त तो थे ही, उनकी नियुक्ति, उनकी पदोन्नति तथा उनके वेतनो की अदायगी राज्य-सरकार द्वारा ही होती थी। चर्च की सम्पत्ति राज्य द्वारा जब्त कर लिये जाने के कारण शासक बहुत धनी हो गये थे।

५ आग्नेय अस्त्र—बारूद के आविष्कार और प्रयोग से भी निरकुश राजतत्र के विकास मे सहायता मिली। उसके कारण नरपतियो को "किराये के सैनिको की टिकाऊ सेनाओ को बनाये रखने और उन्हे तोपो और वदूको से सुसज्जित करने मे" सहायता मिली। ये सैनिक सामतो और अभिजात व्यक्तियो के किलो और सैनिक दलो को नष्ट कर सकते थे।

६ देशभक्ति और राष्ट्रीयता—धर्मयुद्धो, जनपदीय भाषाओ के साहित्य तथा अतर्राष्ट्रीय युद्धो द्वारा अभिप्रेरित देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना ने भी निरकुश राजतत्र के विकास मे पर्याप्त योगदान दिया।

७ प्रशंसात्मक लेखन—धार्मिक तथा राजनैतिक विचारको ने अपने लेखन में निरकुश राजतंत्र के औचित्य का उल्लेख किया। मैकियावेली, बोदिन और हाब्स निरकुश राजतत्र के महान् समर्थक थे, पर मैकियावेली उन सब मे महानतम था।

मैकियावेली (१४६९-१५२७)—फ्लोरेंस का नागरिक मैकियावेली अपने काल की राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय राजनीति पर लिखने वालो मे सर्वाधिक प्रामाणिक और प्रभावशाली था। वह कूटनीति तथा राजकौशल मे अत्यत निपुण था। अपनी सर्वाधिक विख्यात कृति 'द प्रिंस' मे मैकियावेली ने नरपति को सब नियमो तथा ससदो से ऊपर माना है। यद्यपि पोप ने इस ग्रथ की निंदा की थी, तथापि यूरोप के निरकुश नरपतियो ने उसे अपने लिए आधिकारिक पाठ्य-पुस्तक का दर्जा प्रदान किया।

ज्या बोदिन (१५२९-१५९६)—'द स्टेट' नामक अपने ग्रथ मे नरपति को केवल भगवान के प्रति उत्तरदायी माना है, और कहा है कि वह सब विधानो का स्रोत है। उसने नरपति में विद्यमान प्रभुसत्ता का विकास भी किया।

थामस हाब्स (१५८८-१६७९)—हाब्स ने भी निरकुश राजतत्र का समर्थन किया, ताकि देश मे शाति, समृद्धि तथा स्थायित्व कायम रह सके।

इस प्रकार, इन सब विचारकों ने निरकुश राजतत्र के विकास मे योगदान किया।

८ महान् अधिपों का उभरना—अत मे, यद्यपि यूरोप मे निरकुश-शासनवाद के विकास के लिए सभी अनुकूल बाते मौजूद थी, तथापि वहाँ निरंकुश शासनवाद की स्थापना नही हो सकती थी, यदि फ्रास के पद्रहवें लुई, प्रशिया के फ्रेडरिक महान्, रूस के पीटर महान्, स्पेन के चार्ल्स तृतीय और आस्ट्रिया के जोसेफ द्वितीय जैसे महान् और शक्तिशाली अधिप उभर कर सामने न आते। इन निरकुश शासको ने अपनी प्रजा के सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक कल्याण के लिए बहुत कुछ किया और अपने-अपने राज्यो को महिमामडित बनाने के लिए अनेक जय-युद्धो मे भाग लिया। इसलिए उनकी प्रजा उनके राज्यकाल मे साधारणतया सुखी थी।

इन सब बातो का एकत्रीभूत प्रभाव सत्रहवी और अठारहवी सदियो मे समस्त यूरोप मे निरंकुश राजतत्र के विकास के रूप मे पडा। आइये, अब निरकुश शासको के कुछ उदाहरणो पर ध्यान दें।

(इ) फ्रास के चौदहवें लुई

यूरोप मे निरकुश शासनवाद के विकास में फ्रांस ने मशाल-बरदार की भूमिका अदा की। फ्रांस को सौभाग्य से अनेक महान् और शक्तिशाली निरकुश शासक मिले। इन शासकों का भी सौभाग्य था कि उन्हें अत्यत योग्य और प्रतिभाशाली मंत्री मिले। हेनरी चतुर्थ (१५८९-१६१०) और उसके प्रधानमत्री सली ने फ्रांस की सफलता की राह पर अग्रसर कराया। १६१० में, तेरहवें लुई (१६१०-

१६४३) हेनरी चतुर्थ के उत्तराधिकारी बने । अपने प्रधानमत्री कार्डिनल रिशलू की सहायता से उसने फ्रास को एक विश्व-शक्ति बनाने का प्रयत्न किया । अपने उत्तराधिकारी के रूप मे कार्डिनल माजारिन के नाम की सिफारिश करके रिशलू १५४२ मे चल बसे । अगले वर्ष, तेरहवे लुई का भी अत हो गया । उसके बाद उसका अवयस्क पुत्र, चौदहवाँ लुई, उसके उत्तराधिकारी के रूप मे गद्दी पर बैठा ।

चौदहवें लुई (१६४३-१७१५)—चौदहवे लुई के राज्यकाल मे निरकुश शासनवाद का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया और वह यूरोप मे महान् तथा निरकुश शासनवाद का एक ज्वलत उदाहरण बन गया । वह ईश्वरीय अधिकार के सिद्धात पर आधारित राजसी निरकुशवाद मे विश्वास करता था, अर्थात् नरपति के रूप मे उसकी नियुक्ति ईश्वर ने की थी, और इसलिये वह किसी पृथ्वीवासी के प्रति उत्तरदायी नही है । कहा जाता है कि चौदहवें लुई ने कहा था, "शासन काम से, काम के लिये किया जाता है ।" वह स्वय सख्त मेहनत करता था, और अपने मत्रियो से भी कठिन श्रम करने की आशा रखता था । सारा शासन उसके व्यक्तिगत अधिकार मे था और मत्रीगण केवल उसकी इच्छा पूरी करने के लिए थे । उसे अनेक परामर्शदाताओ तथा सहायको की सहायता प्राप्त थी । इनमे से सबसे अधिक विशिष्ट था काल्वर्ट (१६१९-१६८३) जो उसका मुख्य मत्री था ।

काल्वर्ट ने कर-सग्रह की धाँधलियो को बद कर व्यवस्था स्थापित की, कृति, व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहन दिया और आयात-शुल्क उगाहगर, गृह-उद्योगों की रक्षा की । उसने सडको और नहरो का निर्माण करवाया और उपनिवेशन की रीति अपनायी । उसने शक्तिशाली नौ-सेना का निर्माण कर फ्रास को एक महान् समुद्री शक्ति के रूप मे स्थापित किया ।

कला और साहित्य—सदा जगमग और शानदार रहने वाला वर्साइल का शाही दरबार अपनी चमक और भव्यता के कारण,' यूरोप के सब निरकुश शासको की ईर्ष्या और प्रशसा का पात्र था । वहाँ हर वर्ग के कलाकारो तथा साहित्यकारो का स्वागत किया जाता था, और वे लोग भी 'नरपति की उपस्थिति की धूप मे घमाने और सब सरक्षको मे सर्वाधिक उदार नरपति से धन और प्रशसा प्राप्त करने के इच्छुक रहते थे ।' इस युग को फ्रासीसी साहित्य और कला का 'स्वर्णिम युग' या 'क्लासिकी युग' कहा जाता है, जो सर्वथा उचित ही हैं ।

अनर्थकारी युद्ध—अपनी विदेश-नीति के कारण, चौदहवे लुई ने फ्रास को अनेक अनर्थकारी युद्धो में घसीटा, जो उसकी अनेक घातक गलतियो में से एक थी । इन युद्धो के कारण फ्रास का कोषागार निःशेष हो गया, और शासन दिवालियापन की कगार पर आ गया था । अपनी घातक गलती को बहुत देरी से समझकर, उसने अपनी मृत्यु-

शैया पर गद्दी के उत्तराधिकारी चौदहवे लुई को सलाह दी, "मेरे बच्चे, तुम शीघ्र ही महान् साम्राज्य के अधिराज बनोगे। भगवान के प्रति अपने कर्त्तव्य को कभी न भूलना और सदा यह याद रखना कि तुम्हारा वर्तमान पद और प्रभुत्व उसी के कारण है। अपने पडोसियो के साथ सदा शाति से रहने का प्रयत्न करना, युद्ध के प्रति मेरे मोह को अपनाने की भूल कभी न करना, न ही उस प्रकार के अपव्यय करना, जिनका मुझे शौक था। सब कार्य करने से पहले दूसरो से परामर्श लेना न भूलना। जितनी जल्दी हो सके लोगो को भारमुक्त करना, और वह सब उपलब्ध करने का प्रयास करना, जो दुर्भाग्य से स्वय मैं नही कर पाया।" यह एक अच्छी सलाह थी, पर इसका पालन नहीं किया गया। चौदहवे लुई का अवसान १७१५ ई० मे हुआ। उसने फास पर ७२ वर्षों तक राज्य किया। मानव-इतिहास मे किसी नरपति ने इतने लबे अर्से तक अपने देश पर राज्य नही किया।

पद्रहवें लुई (१७१५-१७७४)—पद्रहवां लुई चौदहवे लुई का सर्वथा अयोग्य उत्तराधिकारी था। वह आलसी, विलासी, छिछोरा और दुलमिल था। उसके लिए राजतत्र एक मुसीबत थी, उसे ऐयाशी पसद थी, और नाचना तथा शिकार खेलना भी। औरतो का साथ, अपने विलास के लिए, उसे सदा पसद था। जब उसे यह पता चला कि फ्रास अधोगति की ओर अग्रसर हो रहा है, तो उसने शराब का एक जाम लेकर कहा, "मेरे बाद, जल-प्रलय (सर्वनाश) होगा।" उसका यह कथन एक सच्ची भविष्य-वाणी सिद्ध हुआ।

पद्रहवें लुई के उत्तराधिकारी के शासन-काल मे निरकुश राजतत्र का अत बडे दुखद तरीके से—१७८९ की रक्तरजित क्राति के रूप मे हुआ।

(ई) प्रशिया के फ्रेडरिक महान्

कई मानो में फ्रेडरिक महान्, जो १७४० से १७८६ ई० तक प्रशिया के राजा रहे, प्रबुद्ध निरकुश शासको मे सर्वाधिक सफल थे। वह सैनिक दृष्टि से प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति, अत्यत योग्य और दक्ष प्रशासक और सर्वाधिक अनैतिक कूटनीतिज्ञ था। उसने अपने राज्य-काल मे व्यापार-वाणिज्य, उद्योग तथा कृषि को बढावा दिया, न्यायपरायणता के साथ न्याय कराया, तथा सब धर्मों के प्रति सहिष्णुता की नीति का पालन कराया। वह प्रेस-स्वातत्र्य का भी हामी था। वह कलाओ, विज्ञानो तथा दर्शन समेत सब विद्याओ का महान् सरक्षक था।

उसके शासन के तीन आदर्श—फ्रेडरिक महान् सभवत पहला आधुनिक शासक था, जिसने एक राजा के महान् आदर्शों को अमली जामा पहनाया। ये आदर्श निम्न-लिखित थे —

(१) "आदमी के शरीर मे सिर की जो स्थिति है, ठीक वही स्थिति राजा की उस राज्य के लिये है, जिस पर वह राज्य करता है। उसका कर्त्तव्य है

कि वह सारी प्रजा के लिए ही देखे, सोचे और कार्य करे, तथा उन्हें वह सब लाभ पहुँचाये, जिसको प्रजा तक पहुँचाने की क्षमता उसमें है।"

(२) "निरकुश शासक राज्य का परम शासक नही होता, बल्कि राज्य का पहला नौकर होता है।"

(३) "प्रजा शासकों के लिए नही होती, बल्कि शासक प्रजा के लिए होते हैं।"

अपनी प्रजा के सर्वांगीण कल्याण और सुख के लिए फ्रेडरिक द्वितीय रोज सुबह पाँच बजे उठा करता था, और रात को देर तक सार्वजनिक हित के कार्यों मे व्यस्त रहता था। इस प्रकार फ्रेडरिक द्वितीय का शासन लोगो द्वारा लोगो के लिए न होकर पूरी तरह लोगो के लिए था। इन कार्यों मे व्यस्त रहने पर भी वह सगीत, गीति-नाट्यो और साहित्यिक गतिविधियो के लिए भी समय निकाल लेता था।

अपनी विदेश-नीति के अतर्गत, फ्रेडरिक महान् ने अपनी सुसज्जित और अच्छी तरह से अनुशासित सेना की सहायता से, तथा कीमती युद्धो द्वारा प्रशिया के लिए सिलेशिया और पोलैंड का अधिकाश भाग जीता। फ्रेडरिक द्वितीय के राज्य-काल में प्रशिया सब जर्मन राज्यो मे सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन गया था।

(उ) रूस का पीटर महान्

जार सर्वसत्ताधारी है—दैत्याकार देह, अशिष्ट व्यवहार, गँवारू तौर-तरीको, पाशविक स्वभाव, पर दृढ इच्छा शक्ति, प्रबल कुतूहल तथा अथक शक्ति वाले रोमानोव्स के शासन-गृह के पीटर महान् (१६८२-१७२५) ने १६८२ मे जार बनने पर सार्वजनिक रूप से घोषणा की थी। "जार स्वेच्छाचारी और निरकुश शासक है, और वह दुनिया में किसी के प्रति जिम्मेदार नही है।" अपने राज्य-काल मे यूरोप के किसी निरकुश शासक ने अपने इस दावे को सच्चा कर दिखाने में इतनी निष्ठुर योग्यता का प्रदर्शन नही किया, जितना जार ने किया।

जार की निरकुशता—जार पीटर ने सेना पर पूरी निरकुशता तथा प्रभुत्व के साथ अधिकार कर लिया था। पुरानी सामती सेना के स्थान पर दो लाख सैनिको वाली एक नयी राष्ट्रीय सेना का गठन किया। इस सेना के चुने हुए सैनिको को जार के सब आदेशो का पालन करने की ही तनख्वाह मिलती थी। उसने ४८ विशाल तथा ४०० छोटे युद्ध पोतो वाली एक शक्तिशाली नोसेना का गठन किया। इस नोसेना मे ३०,००० नौसैनिक थे। जार ने अधि-धर्माध्यक्ष के पद को समाप्त कर दिया, और चर्च का प्रबन्ध एक समिति को सौंप दिया। इस समिति को 'पवित्र धर्म सभा' (Holy Synod) कहा जाता था। इस समिति का मुख्य प्रबन्धक राज्यपाल (Procurator General) कहा जाता था, और वह जार का मुख्तार होता था।

पीटर महान् ने शासन मे भी निरकुशतावाद का समावेश किया। ड्यूमा (The Duma) जो मध्ययुगीन ससद थी, का स्थान जार द्वारा नियुक्त एक छोटी सलाहकार समिति ने लिया। उसकी गुप्त पुलिस सदा जार के हितो की ही रक्षा करती थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पीटर महान् रूस मे पूर्ण निरकुश शासनवाद का प्रतीक बन गया।

रूस का यूरोपीकरण—रूसी लोग न तो पूरी तरह से यूरोपीय थे और न पूरी तरह से एशियाई थे, वल्कि दोनो के मिश्रण का परिणाम थे। वे निर्धन तथा सास्कृतिक दृष्टि से अशिष्ट तथा गँवार थे। हालैंड, इग्लैंड तथा पश्चिमी यूरोप के अन्य देशो की यात्रा करने के वाद, उसे रूस के यूरोपीकरण की उत्कट आवश्यकता अनुभव हुई। एक कैंची लेकर, पीटर ने अपने दरवार के सामतो की लवी दाढियो और घनी मूँछो को काट डाला। उसने इन सामतो को जर्मन या अग्रेजी जैकट और मोजे पहनने का आदेश दिया। उसने फ्रास के दरवार के फैशनो की भी नकल की। उसने उच्च वर्ग की रशियन महिलाओ को हरमो से मुक्त करके, तथा सार्वजनिक स्थानो मे अपना मुँह ढकने की प्रथा को वन्द करके वाह्य समाज से उनके पृथकत्त्व को भी समाप्त कर दिया। जार ने देश मे तम्वाकू का पुनर्प्रयोग भी आरम्भ किया। उसने इस प्रथा को भी समाप्त कर दिया, जिसके अनुसार जार से मिलने वाले व्यक्ति को उसके सामने झुककर अपने माथे से जमीन को छूना पडता था।

इसके अतिरिक्त, पीटर ने कुछ विद्यालयो तथा इजीनियरो, सेनाधिकारियो और नौसैनिको के प्रशिक्षण के लिये कई व्यावसायिक तथा सैनिक सस्थाओ की स्थापना की। उसने व्यापार-वाणिज्य, उद्योग तथा कृषि को भी वढावा दिया।

पश्चिम के लिये वातायन—अपनी विदेशी नीति मे, पीटर महाढ ने स्वीडन से वाल्टिक समुद्र पर स्थित एक वदरगाह छीनने मे सफलता प्राप्त की। उसने काले सागर मे तर्की से भी एक वदरगाह रूस के लिये छीना। स्वीडन के विरुद्ध उसकी महत्वाकाक्षा जून, १७०९ को पुल्तावा के युक्त मे विजय पाकर उस समय पूरी हुई, जब रूस ने स्वीडन से कारेलिया, इग्रिया, एस्तोनिया और लिवानिया हस्तगत कर लिये और इस प्रकार 'पश्चिम के लिये एक वातायन' खोल दिया। पर तर्की के विरुद्ध जार सफल नही रहा।

कैथरीन महान् (१७६२-१७६९)—पीटर के अनेक उत्तराधिकारियो मे से एक थी, कैथरीन द्वितीय, जिसने १७६२ से १७६९ तक राज्य किया। पीटर के समान वह भी पूर्णतया निरकुश और वेरहम थी। अपने देश मे अपनी प्रजा के कल्याण के लिये उसने अनेक सुधार कार्य किये। अपनी विदेश-नीति के अतर्गत उसने १७७४ मे तर्की से काले सागर का उत्तरी समुद्र तट छीना। वह यूरोप के नक्शे से पोलैंड को नेस्तनाबूद

करने के लिये भी जिम्मेवार थी। क्रमश १७७२, १७९३ और १७९५ मे उसने इस अभागे देश को टुकडे-टुकडे करके जीता। कैथरीन की मृत्यु १७९६ मे हुई।

फ्रास के चौदहवे लुई प्रेशिया के फ्रेडरिक महान्, रूस के पीटर महान् तथा कैथरीन से अलावा और नई निरकुश राजा हुए हैं। इंग्लैंड के प्रथम जेम्स मैक्समिलियन, आस्ट्रिया के पाँचवे चार्ल्स एव मारिया थेरसा, भारत के अकवर महान् तथा शाहजहाँ भी इसी श्रेणी मे आते हैं। अत १७वी और १८वी सदी मे निरकुश राजतन्त्र एक सार्वभौम प्रणाली थी।

निष्कर्षस्वरूप हम कह सकते हैं कि पैतृक निरकुश शासन का सवसे वडा दोष यह था कि वह शासक के चरित्र पर आधारित रहता है। अव अच्छा शासक होता है, तो अच्छा शासन भी होता है, पर इस वात की कोई सुनिश्चितता नही है कि अच्छे शासको का सिलसिला चलता ही रहेगा। इसलिये, अनेक शासक प्रजा के सुख और कल्याण का ध्यान रखने मे असमर्थ रहे और उसके स्थान पर राज दरवार के विलास और उसकी शानोशौकत मे लीन रहे। राज्य-सचालन का भार वे उन वेईमान मन्त्रियो के हाथो मे छोड देते थे, जो वेरहमी से प्रजा का शोषण करते थे। इसीलिये कुछ दिनो वाद, निरकुशतावाद के सिद्धात की कटु आलोचना सव वर्गों से होने लगी।

उदाहरण के रूप मे, फ्रास की राज्यक्रान्ति मे लोगो ने राजनैतिक निरकुशता तथा वशानुगत अभिजात वर्गीय तत्र के विरुद्ध आवाज उठाई थी। उन्होंने दलितो के सामने दमनकारियो एव अत्याचारियो के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये नजीर पेश की। इसके फलस्वरूप अन्तत प्रजातन्त्र का उदय हुआ।

प्रश्नावली

१ निरकुश राजतत्र के अर्थ और उसकी मान्यता को समझाइये और बतलाइये कि यूरोप मे निरकुश राज्य का उदय कैसे हुआ?

२ निरकुश शासक के रूप मे पद्रहवे लुई पर एक समालोचनात्मक निवन्ध लिखिए।

३ निरकुश शासक के रूप मे एशिया के फ्रेडरिक महान् के कार्यों की चर्चा कीजिए।

इक्कीसवाँ अध्याय

मध्ययुग में वैज्ञानिक विचारण

(अ) विज्ञान की अक्षमताएँ

प्राकृतिक विज्ञानो की प्रगति—साधारणतया, ऐसा समझा जाता है कि विज्ञान 'आधुनिक युग की एक सतान है।' इसमे सदेह नही कि यह कथन अक्षरश सच है, पर उन अनेक कथनो के समान जिन्हे हम पूर्णतया और विशुद्ध रूप से आधुनिक मानते हैं, विज्ञान का जन्म भी मध्ययुग मे ही हुआ था। परन्तु भौतिकी, रसायनशास्त्र जैसे प्राकृतिक विज्ञानो ने इस युग मे नही के बराबर प्रगति की। कारण, आज की भाँति इन विज्ञानो को मध्ययुग मे शिक्षा का विषय नही बनाया गया था। इन विज्ञानो को तब प्रसगवश, खगोल-शास्त्र, ज्यामिति या चिकित्सा-शास्त्र के सदर्भ मे ग्रामर स्कूलो और विश्वविद्यालयो मे पढाया जाता था। इसके अलावा, उन दिनो इन विज्ञानो के अध्ययन के लिये आवश्यक कोई विज्ञान-सस्थाएँ नही थी।

कई कारण थे, जिन्होंने मिल-जुलकर प्राकृतिक विज्ञानो के अध्ययन मे बाधा पहुँचायी। इन कारणो को नीचे दर्शाया गया है :—

(१) धर्म-विज्ञान तथा दर्शन—मध्ययुग मे सबसे पहले धर्म विज्ञान ने तथा बाद मे दर्शन ने लोगो का ध्यान आकर्षित किया। सच तो यह है कि धर्म-विज्ञान अध्ययन का इतना प्रिय विषय था कि उसे 'विज्ञानो की रानी' माना जाता था। उसके बाद, आदरणीय विषय थे दर्शन और तदनन्तर कानून। भौतिकी और रसायन जैसे प्राकृतिक विज्ञानो की पूर्णतया उपेक्षा की गयी। इसलिये मध्ययुग मे कोई वैज्ञानिक प्रगति सम्भव नही हो पायी।

(२) जादू और अधविश्वास—प्राचीन यूनानी, रोमन, जर्मन, सेल्ट तथा अन्य आदिवासी लोग अधविश्वासो के शिकार थे। उदाहरणार्थ, प्राचीन यूनानी और रोमन जादू तथा पक्षियो की उडान, आप्तपुरुषो के कथन, शुभ तथा अशुभ दिन आदि सकेतो मे विश्वास करते थे। इसी प्रकार आदिवासी लोग भी उन जैसे ही (यदि अधिक नही तो) अधविश्वासी थे। प्रोफेसर हेरा, मून और वैलैण्ड लिखते हैं, "इस अधविश्वास के कारण कि अमुक दिन शुभ है, अच्छे कार्यों मे विलम्ब होते थे। तत्र-मत्र या रोगो को दूर करने के लिये किये गये धर्मानुष्ठानो के कारण रोगो के सही इलाज की खोज अवरुद्ध हो जाती थी। अधविश्वास प्राकृतिक विज्ञानों की प्रगति मे बाधक थे।"

(३) निगमनात्मक विधि—निगमनात्मक विधि का अर्थ है, साधारण से विशेष की ओर तर्कपूर्ण प्रगति। मध्ययुग के विद्वानो की आदत पड गयी थी कि प्रकृति के विषय

मे वे जो निष्कर्ष निकालते थे, वे उनके किताबी ज्ञान पर ही आधारित होते थे। प्रत्यक्ष अवलोकन तथा अध्ययन द्वारा प्रकृति के रहस्यो को समझने की प्रवृत्ति ने जन्म नही लिया था। यह विधि निश्चित रूप से अवैज्ञानिक थी, कुछ मामलो मे इसे अवश्य निर्भरणीय माना जा सकता है, पर सब मामलो मे नही।

(४) **चर्च का विरोध**—चर्च विज्ञान का कट्टर विरोधी था। प्राकृतिक विज्ञानो के प्रति चर्च के विरोध का आधार यह मान्यता थी कि मानव-जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य है आत्मा की मुक्ति। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिये आर्थिक जगत् से पूरा सम्पर्क त्याग करना बहुत जरूरी है। एक सच्चा ईसाई सदा अपने से पूछता रहता था, आदमी को अपनी आत्मा खोकर यदि सारी दुनिया मिल जाये, तो उसे क्या लाभ होगा ?

(५) **पुस्तको की कमी**—और अत मे पुस्तको की भयकर कमी भी एक कारण था और इसी वजह से पुस्तको के मूल्य आवश्यकता से अधिक थे। साधारणत पुस्तके भी उन दिनो विलास की वस्तुएं थी इस कारण भी काफी हद तक विज्ञान की प्रगति मे बाधा उपस्थित हुई।

(आ) वैज्ञानिक प्रगति

अधविश्वासो, भयो, जादू मे अधविश्वास, अज्ञान, पूर्वाग्रह तथा असख्य गलतियो और विसगतियो के बावजूद, मध्ययुग मे प्राकृतिक विज्ञानो के क्षेत्र मे कुछ प्रगति हुई।

यूनानियो और अरबो के प्रति ऋण—मध्ययुग के विज्ञान यूनानियो और अरबो के बहुत अधिक ऋणी थे। उन्होने प्रकृति के बारे मे प्राय सब कुछ जान लिया, जो प्राचीन यूनानियो ओर रोमनो को अरस्तू की रचनाओ और अनेक अरबी ग्रन्थो के अनुवाद के माध्यम से ज्ञात था इसके अतिरिक्त स्पेन मे मुस्लिमो के तथा सिसली मे यूनानियो और अरबो के सपर्क मे आये, तो इन लोगो से खगोल-विज्ञान, चिकित्सा-शास्त्र, गणित और भूगोल मे विषय मे बहुत कुछ जानने को मिला। पर, उनकी अधिकाश जानकारी त्रुटिपूर्ण थी।

कीमिया—अत्यन्त प्राचीन काल से मनुष्य 'पारस-पत्थर' तथा 'अमृत' मे विश्वास करता चला आया है। इस विश्वास के अनुसार, पारस पत्थर मे स्पर्श मात्र से प्रत्येक वस्तु स्वर्ण बन जाती है तथा अमृत पान करके मृत्यु पर विजय पायी जा सकती है। मध्ययुग के वैज्ञानिको ने पारस-पत्थर की खोज करने तथा अमृत को बनाने के लिए प्रयोग किये। ये सब प्रयोग रसायनो और धातुओ के अध्ययन से सबधित थे, और इस अध्ययन को कीमिया कहा जाता था। यही अत मे प्रारम्भिक रसायन शास्त्र के रूप मे विकसित हुई।

चिकित्सा-शास्त्र, शल्यक्रिया तथा भौतिकी—मध्ययुग के विद्वानो ने विज्ञान के कुछ क्षेत्रो मे कुछ योगदान दिया । ये क्षेत्र थे—चिकित्सा-शास्त्र, शल्यक्रिया, भौतिकी की कुछ शाखाएं जैसे गति-विज्ञान और प्रकाश विज्ञान । सार्लेना विश्वविद्यालय मे स्त्री-रोग विज्ञान, प्रसूत विज्ञान तथा नेत्र-विज्ञान का प्रशिक्षण आरम्भ किया गया था । इस प्रशिक्षण मे गालेन और हिप्पाक्रेटीज की रचनाओ का भी उपयोग किया गया था ।

गणित—इन विद्वानो ने शून्य, दशमलव-पद्धति, द्विघाती समीकरण तक की बीजगणित, यूक्लिड की ज्यामिति और समतल तथा गोलीय त्रिकोणमिति को अपनाया ।

और अत मे उन्होंने नक्शे बनाने के लिये अक्षाशो और देशान्तर रेखाओ को अपनाया ।

वैज्ञानिक विधि—सही मानो मे वैज्ञानिक विचारण की आधार-शिला मध्ययुग मे बाथे के एडेलार्ड तथा रोजर बेकन जैसे विद्वानो ने रखी थी ।

बाथे के एडेलार्ड बारहवी सदी के एक अग्रेज थे । एडेलार्ड ने अपनी कृति 'प्रकृति के बारे मे प्रश्न' मे प्रकृति के प्रत्यक्ष अध्ययन और अवलोकन पर, पुस्तको पर निर्भर रहने की अपेक्षा, अधिक जोर दिया है ।

रोजर बेकन भी अग्रेज थे और तेरहवी सदी मे जन्मे थे । वे जिन लोगो मे लोकप्रिय थे, वे उन्हें "चमत्कारिक डाक्टर' कहते थे । वे वैज्ञानिक जानकारी के क्षेत्र मे अपने समकालीनो से चमत्कारिक ढग से बहुत आगे थे । उन्होंने कहा था कि "हमे अरस्तू का आंख मीचकर अनुकरण नही करना चाहिये, बल्कि अपनी जिज्ञासापूर्ति के लिये स्वय प्रयोग करने चाहिये ।" वस्तुत उन्होंने इस सम्बन्ध मे इतनी तीखी बात भी कही थी . "यदि मेरा बस चले, तो मैं अरस्तू की सब किताबो मे आग लगा दूं, क्योकि उनके अध्ययन से समय नष्ट होता है, भूले होती हैं, तथा अज्ञान मे वृद्धि होती है ।" उन्होंने "सृजित विश्व के ज्ञान के माध्यम से उसके सृजक के बारे मे ज्ञान प्राप्त करने की" जोरदार सिफारिश की थी । सैद्धातिक रूप से, वे अरस्तू के लेखन पर पूर्णतया निर्भर रहने के स्थान पर प्रयोगशाला के माध्यम से अनुसधान करने के जबर्दस्त समर्थक थे ।

रोजर बेकन को यान्त्रिकी, प्रकाश-विज्ञान और रसायन-शास्त्र की अद्भुत समझ थी । बारूद या ऐसे ही किसी विस्फोटक पदार्थ की रचना की भी उन्हें जानकारी थी, ऐसा प्रतीत होता है । बेकन एक प्रकार के भविष्यवक्ता भी थे । उन्हें यह अनुभूति हो चुकी थी कि विज्ञान के प्रयोग द्वारा आदमी एक दिन उड़ने लगेगा कार की सवारी कर सकेगा और बिना चप्पुओ के जहाजो की यात्रा करेगा ।

आविष्कार—प्रयुक्त विज्ञान के क्षेत्र मे, मध्ययुग मे अनेक ईजादे और आविष्कार हुए । ऐसे कुछ असामान्य आविष्कार थे—गटनबर्ग का मुद्रणालय, चुम्बकीय सुई वाला नाविको का कपास (कुतुबनुमा),चिमनी बाल्ब, सीसे की नलकारी, कांच की खिडकियां,

पेण्डुलम घड़ियाँ, पाइप-आर्गन और यान्त्रिक ताले। बारूद तथा नये रजको का आविष्कार भी हुआ।

(इ) विज्ञान के क्षेत्र में अरबो का योगदान

(1) गणित के क्षेत्र मे अरबो का योगदान

(१) अकगणित—अकगणित के क्षेत्र मे अरवो ने शून्य एव १ से लगाकर १० तक के अको का आविष्कार किया। अत इन अको को अरबिक-अक कहते हैं। दशमलव प्रणाली के प्रणेता एव आविष्कारक भी वे ही माने जाते हैं। तथापि तथाकथित अरबिक अको के जिसमे शून्य भी शामिल हैं, अरबिक साहित्य मे प्रयुक्त होने के एक हजार वर्ष पहले भारतीयो को उनकी जानकारी थी। ये अक अशोक के २५८ बी०सी० के शिलालेखो मे पाये गये। अत अब यह सार्वभौम रूप से माना जाने लगा है कि अरबों ने इन अको को जिनमे शून्य भी शामिल हैं, भारतीयो से सीखा। यहाँ तक कि लैपलैस ने भी माना है कि "भारत ने दस प्रतीको द्वारा अको की अभिव्यक्ति की कुशल प्रणाली, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक अक के मूल्य की पृथक् स्थिति होती है, हमे दिया। इस गम्भीर और महत्वपूर्ण विचार के वास्तविक गुणो को जो आज इतने सरल प्रतीत होते हैं, जानने मे हमने उपेक्षा बरती है।"

इसी प्रकार आर्यभट्ट को ५वी शताब्दी मे हुए थे और ब्रह्मगुप्त जो ७वी शताब्दी मे हुए थे दशमलव प्रणाली के प्रणेता माने जाते हैं। उन्हे दशमलव प्रणाली का पूर्णरूपेण ज्ञान था। इसके बहुत दिनो बाद अरबो एव सीटियो ने इसका उपयोग करना सीखा था। जब चीन मे बुद्ध धर्म का प्रचार एव प्रसार हुआ तो चीनियो ने बौद्ध भिक्षुओ से दशमलव प्रणाली का ज्ञान प्राप्त किया। अपने युग के महान् गणितज्ञ (८५० ई०) मोहम्मद इब्न मूसा अल-ख्वार ने बगदाद मे इस प्रणाली को पहले-पहल प्रारम्भ किया था। सारटन के अनुसार एशिया एव योरुप मे उपलब्ध सबसे पुराना प्रलेख जिसमे शून्य का इस्तेमाल किया गया था, ८७३ ई० का एक अरबिक प्रलेख है। भारत मे इसकी जानकारी होने के तीन वर्ष पहले परन्तु आमतौर से माना जाता है कि अरवो ने भी भारत से सीखा। और इसके पश्चात् उन्होंने पश्चिमी देशो के निवासियो को इसका इस्तेमाल बताया। डाक्टर बैशम ने भी यह कहकर इसकी पुष्टि की है कि बहुत दिनो से ऐसा माना जाता था कि अको की दशमलव प्रणाली का आविष्कार अरवो ने किया था, परन्तु वास्तव मे ऐसी बात नही है। अरब स्वय गणित (मैथेमेटिक्स) को 'हिंदी सत' अर्थात् भारतीय कला कहते हैं। इसमें अब कोई सन्देह नही है कि दशमलव प्रणाली एव गणित सम्बन्धी अन्य ज्ञान और जानकारी, अरब मुस्लिमो ने भारतीय पश्चिमी तट के निवासियो से जिनके साथ व्यापार करते थे, प्राप्त की अथवा जब उन्होंने ७१२ ई० मे सिन्ध प्रान्त पर विजय प्राप्त की तभी इसका ज्ञान उन्होंने वहाँ के निवासियो से प्राप्त किया।

(२) बीजगणित—ऐसा प्रतीत होता है कि बीजगणित का विज्ञान स्वतन्त्र रूप से दोनो ही हिन्दुओ एव यूनान निवासियो द्वारा विकसित किया गया है। परन्तु इनके लिये अरबिक नाम (अल-जब्र, जिसका अर्थ समजन होता है) अपनाने से यह निर्देशित होता है कि यूनानियों की अपेक्षा अरबो ने भारत से सीखकर पश्चिमी योरुप के देशो मे इसका प्रचार एव प्रसार किया। (यह कथन डाक्टर मोनियर विलियम्स का है)। तथापि ऐसा विश्वास किया जाता है कि अरबों ने द्वितीय अश के समीकरणो तक बीजगणित को विकसित कर पश्चिमी देश के लोगो को बताया।

(३) ज्यामिति एव रेखागणित—ज्यामिति या रेखागणित के विज्ञान के सबध मे माना जाता है कि अरबों ने इसे यूनान निवासियो से सीखा तथापि उन्होंने ट्रिगनोमेट्री में स्पर्श रेखा (Tangent) एव सह स्पर्श रेखा (Co-tangent) का आविष्कार किया।

(ii) चिकित्सा शास्त्र मे अरबों का योगदान

चिकित्सा विज्ञान मे अरबों ने काफी प्रगति की थी। इटली का सलेरेनो विश्वविद्यालय पहला विश्वविद्यालय था जहां पर वैज्ञानिक ढग से चिकित्सा-शास्त्र को पढाया जाता था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अरब शल्य चिकित्सक बहुत बडे-बडे आपरेशन करते थे और पागलपन का इलाज भी वैज्ञानिक ढग से करते थे। फिर भी अरबो ने चिकित्सा की कई शाखाओ का ज्ञान भारतीयों से प्राप्त किया। नश्तर या टीके लगाने की प्रक्रिया को अरबों ने भारत से सीखा था। इसके पश्चात् तुर्की निवासियों, स्पेन निवासियो, अग्रेजों और अन्य योरुपियो ने इसे अरबो से सीखा। ऐसा प्रतीत होता है कि अरब चिकित्सकों एव शल्य चिकित्सको ने चरक के चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन किया था और उसे अरबी भाषा मे अनूदित भी किया। एक अरब लेखक, सेरापियन ने अपने ग्रन्थो मे चरक का उल्लेख जरच के नाम से किया है, दूसरे अरब लेखक श्री अहाजेस ने चरक का उल्लेख शरक के नाम से किया है। इसके अलावा खलीफा हारून-अल-रशीद के दरबार मे दो हिंदू चिकित्सक मनका और सालाह रहते थे। अत ससार मे भारतीय ज्ञान का प्रचार एव प्रसार इन्हीं माध्यमो के जरिये हुआ।

(iii) विज्ञान की अन्य शाखाओ मे अरबो का योगदान

अरबो ने कई विद्यापीठो की स्थापना की जिसमे बगदाद, काहिरा सब कारडोवा के विश्वविद्यालय भी शामिल थे, जहाँ पर विज्ञान की विभिन्न शाखो का विधिवत् अध्ययन एव अध्यापन कराया जाता था। इन विश्वविद्यालयो मे बहुत बडे-बडे विद्वान् व्यक्ति शिक्षक का कार्य करते थे। ये अरब विद्वान् शिक्षाविद् एव शास्त्री यूनानियो, फारस निवासियो एव भारतीयो द्वारा प्रणति एव लिखित विज्ञान, चिकित्सा, गणित तथा

साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थो का अनुवाद अरवी भाषा मे करते रहते थे। इन ग्रन्थो के अनुवादो के आधार पर अरवो ने विज्ञान की विभिन्न शाखाओं जैसे गणित शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, भौतिकी, रसायन शास्त्र, खगोल शास्त्र एव भाषा विज्ञान आदि मे कुछ प्रगति की और सफलता हासिल की। पूर्वीय ससार के भिन्न-भिन्न भागो से विज्ञान एव कला की विभिन्न शाखाओ का ज्ञानार्जन करने के पश्चात् अरवो ने उसे पश्चिमी ससार के देशवासियो को सिखाया। फलत. मानव-इतिहास मे इन्ही तथ्यो के कारण अरवो का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्नावली

१ मध्ययुग मे विज्ञान की प्रगति मे जो वाधाये थी, उनकी चर्चा कीजिये।

२ सक्षेप मे मध्ययुग की वैज्ञानिक उपलब्धियो की व्याख्या कीजिए।

३ रोजर वेकन पर एक विस्तृत नोट लिखिए।

———

बाईसवाँ अध्याय

पुनर्जागरण

भूतकाल का पुनरुज्जीवन—पुनर्जागरण क्या है ? 'पुनर्जागरण' का अर्थ होता है पुर्नजन्म। इसका अर्थ है ग्रीकवासियो और रोमवासियो की प्राचीन सस्कृति को जीवित रखना। भूतकाल फिर भी भूतकाल होता है और उसे जीवित नही किया जा सकता है। पुनर्जागरण काल के लोगो ने यूरोप और मध्य युग पर आधारित नयी सस्कृति का विकास किया, जो उन्हे ग्रीक और रोम के साहित्य, भवन-निर्माण, चित्रकला, शिल्पकला, सगीत, दर्शन, विज्ञान और यत्र विज्ञान के अध्ययन से प्राप्त हुआ था। इसमे उन्होंने नये विचारो और प्रेरणाओ को जोड दिया।

विश्लेषणात्मक भावना—मध्ययुग मे मनुष्य की कार्यशीलता चर्च के पोपतत्र द्वारा नियन्त्रित थी और पथ-प्रदर्शन भी उन्ही के द्वारा होता था। चर्च के पोपतत्र द्वारा अनुमोदित और स्वीकृति प्राप्त किसी भी वस्तु को शाश्वत सत्य माना जाता था।

चर्च का प्रभुत्व लगभग सभी शैक्षणिक सस्थाओ पर था, जिसमे आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, पेरिस और नेपल्स के विश्वविद्यालय भी थे। चर्च की सत्ता के बारे मे कोई कुछ भी प्रश्न नही कर सकता था। मानव मस्तिष्क वास्तव मे पोप की सत्ता द्वारा गुलाम बना लिया गया था। किंतु पुनर्जागरण ने तर्क और वैज्ञानिक मस्तिष्क का नया दौर प्रारम्भ कर दिया। उस काल के लोगो ने चर्च के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर अगुली उठानी शुरू कर दी थी और स्वय के सिद्धातो और मतो की रूपरेखा की रचना करनी आरम्भ कर दी थी। चर्च द्वारा सत्य बतलाई गयी प्रत्येक बात को लोग वैज्ञानिक कसौटी पर कसने लगे और इस प्रकार विश्लेषणात्मक भावना वैज्ञानिक मस्तिष्क इस युग पर हावी हो गया। प्रो० एच० ए० डेविस लिखते हैं, "पुनर्जागरण शब्द, स्वतन्त्रता-प्रिय साहसी व्यक्तियो के साहसिक विचारो के पुनर्जन्म की ओर सकेत करता है, जो मध्ययुग की धार्मिक सत्ता द्वारा सकुचित दायरे मे बाँध दिये गये।"

मानवतावाद की भावना—पुनर्जागरण की तीसरी विशेषता मानवता थी। मध्ययुगीन साहित्यकारो और कलाकारो ने अपना ध्यान धार्मिक विषयो पर केन्द्रित रखा था, जबकि पुनर्जागरण काल के विद्वानो और कलाकारो ने अपना मानवता पर केन्द्रित किया। तपस्या, अलौकिकता और तर्कसगत की बजाय, स्वाभाविकता, मानवता और सासारिक सुख को प्राथमिकता दी गयी।

महान् आदोलन—पुनर्जागरण विज्ञान पर आधारित व्यक्ति की जिंदगी के हर क्षेत्र मे स्वतत्र और भयरहित स्पष्ट विचारो की शक्ति की पुन चेतना लाभ का महान

आदोलन था । प्रो० एडिथ गिसल के अनुसार, पुनर्जागरण इसलिये मनुष्य के अधिकारो को जानने और स्वय की चेतना और ब्रह्माड के प्रति पुनर्जागरूकता का एक आदोलन था जो समस्त यूरोप मे फैल गया था और उसका प्रभाव लगभग दो शताब्दी (१४०० से १६००) तक रहा। पुनर्जागरण युग इस तरह जिदगी के हर क्षेत्र मे बौद्धिकता, मानवता, विश्लेषणात्मक भावना तथा उत्साह और आनन्द के विशेष गुणो से पूर्ण था जो ग्रीक और रोम के उच्चकोटि के महाकाव्यो के अध्ययन से प्राप्त हुआ था।

सक्षेप मे प्रो० एच० एस० लूटक्स लिखते हैं, पुनर्जागरण ऐसा ऐतिहासिक काल था जो चित्रकला, शिल्प, भवन-निर्माण की कला, सगीत, साहित्य, दर्शन, विज्ञान और औद्योगिक क्षेत्र मे निपुणता के कारण विशिष्ट है। यह आर्थिक शिलान्यास और यूरोपीय समाज के ढाँचे मे और राज्यो के सगठन मे भी परिवर्तन का युग था, और सबसे अन्त मे लेकिन कम महत्वपूर्ण नही, पुनर्जागरण ने ईसाई चर्च को प्रभावित किया जिसका निर्माण पीढी दर पीढी तक यूरोपीय सभ्यता पर पदासीन था।

पुनर्जागरण के कारण—यूरोप मे पुनर्जागरण काल के आने के कई कारण थे। उनमे से मुख्य निम्नलिखित है —

(१) **मूल विचारक**—मध्य युग मे मनुष्य के सारे कार्यकलापो और दिल-दिमाग पर चर्च की सत्ता का अधिकार था। लेकिन समय के साथ-साथ कुछ विद्वान् स्वतत्र रूप से सोचने लगे थे और हर चीज को वैज्ञानिक कसौटी पर कसने लगे थे। ऐसे मूल विचारक ही पुनर्जागरण युग का प्रारम्भ करने के लिये उत्तरदायी थे। पीटर एवलर्ड, रोजर बेकन, अलबर्ट्स मेगनस, थामस एकनिआस, सेंट फ्रासिस और दाते जैसे लोग इसकी आत्मा थे। इन सभी ने लोगो मे विश्लेषणात्मक भावना, वैज्ञानिक मस्तिष्क भर दिया। इन्होंने खुले तौर पर चर्च के सत्ताधिकारियो और अरस्तू को चुनौती दी। विश्व निर्माता का ज्ञान उसके द्वारा निर्मित ससार के द्वारा ही पाने पर बल दिया। बेकन ने घोषित किया, "अगर मेरा वश चले तो मैं अरस्तू की सारी पुस्तके जला दूँ, क्योकि इनका अध्ययन केवल समय की बरबादी, गलतियो का जन्म और अज्ञान को बढाता है।" अरस्तू की पुस्तको पर निर्भर रहने की बजाय, बेकन ने प्रयोगशाला की खोजो और तर्कों की प्रयोग करने की सिफारिश की। जो कुछ भी तर्क के दायरे के बाहर है, उसे फौरन अस्वीकृत कर देना चाहिए। ऐसे मूल विचारक पुनर्जागृति के सचालक थे।

२ **छापाखाने की खोज**—छापाखाने की खोज से पहले किताबे हस्तलिखित हुआ करती थी और इसलिये ज्ञान को दूर-दूर तक फैलाना बहुत मुश्किल था। लेकिन छापाखाने की खोज के कारण पुस्तको की इतनी बिक्री ने एक बहुत बडा परिवर्तन ला दिया। १५वी शताब्दी के मध्य मे जान गटनबर्ग ने मेडनामे जर्मनी मे प्रथम बार

सफलतापूर्वक न हटाये जा सकने वाले टाइपो के साथ पहले छापाखाना को सफलतापूर्वक चलाया। विलियम काक्सटन ने इग्लैंड मे इसका अनुकरण किया। इली और हगरी मे भी इन्हे शुरू किया गया। प्रो० एडिथ सामेल के अनुसार छपाई सिचाई का स्रोत बन गयी जिसने ससार के ज्ञान की उपज मे वृद्धि कर दी। चूंकि छपाई, हाथ से लिखने के बजाय अधिक ठीक (उपयुक्त) थी, इसलिये मुद्रित किताबे इस दृष्टिकोण से अधिक विश्वसनीय थी।

३ कुस्तुनतुनिया का पतन—कुस्तुनतुनिया नामक नगर पूर्वी रोम राज्य की राजधानी थी। सन् १४५३ मे यह आटोमन तुर्को के हाथो मे आ गया। फलस्वरूप ग्रीक विद्वान् और विचारक अपनी हस्तलिखित पुस्तको के साथ यूरोप के विभिन्न शहरो को चले गये लेकिन अधिकाश इटली चले गये जहाँ उन्होने धीरे-धीरे लोगो मे विश्लेषण की भावना और पूर्वरचित पुस्तको के अध्ययन के प्रति उत्साह उत्पन्न कर दिया। जाहिर है, इसने पुनर्जागरण के लिये नयी प्रेरणा को जन्म दिया।

४ यूरोप और एशिया के मध्य सबंध—पश्चिमवासियो और पूर्वोवासियो का धर्म प्रचार द्वारा एक-दूसरे के नजदीक आना और नये खोजे गये समुद्री रास्तो ने न सिर्फ धन ला दिया, बल्कि जिंदगी प्रादुर्भाव को स्वतत्र रूप से देखने की अत प्रेरणा और व्यापक दृष्टि पैदा कर दी, जो एक बहुत बडी सीमा तक पुनर्जागरण की प्रेरणा का कारण रहा।

५ **शासको, पोप और कुलीन परिवारो का सरक्षण**—प्रगतिशील शासको, पोपो और कुलीन परिवार इस नयी क्राति के सरक्षक बन गये। यूरोप के शासको जैसे, फ्रास के शासक प्रथम फ्रासिस, इग्लैंड के हेनरी अष्टम, स्पेन के चार्ल्स पचम, पोलैंड के सिगमड प्रथम, डेनमार्क के क्रिश्चिन द्वितीय ने मुक्त हृदय से पुनर्जागरण को प्रोत्साहित किया और नये विद्वानो और व्यक्तियो को अपने दरबारो मे निमत्रित किया। इसके अलावा रोमन कैथोलिक चर्च के कुछ पोपो ने ग्रीक-रोम के प्राचीन साहित्य के अध्ययन को हर तरह से प्रोत्साहित किया। पोप निकोलस पचम ने जो स्वय एक महान् विद्वान् थे, वेटिकन शहर मे प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो को सग्रहीत करना शुरू कर दिया, लियो दसवाँ नामक पोप प्राचीन कला, शिल्प, चित्रकला, सगीत और साहित्य का महान् प्रेमी था और इसलिये उसने भी उन्मुक्त हृदय से पुनर्जागरण को सरक्षण प्रदान किया। कुछ धनी, सभ्रात और प्रभावशाली परिवारो ने कलाकारो, वैज्ञानिको और साहित्यिको को पुनर्जागरण युग मे सरक्षण प्रदान किया। फ्लोरेस के चिकित्सक परिवार ने फ्लोरेस मे एक सस्था की प्रस्थापना की जो पूर्णत प्लेटो के दर्शन के अध्ययन को समर्पित थे। फेडिकी परिवार ने पुनर्जागरण के कलाकारो, चित्रकारो, शिल्पियो और साहित्यकारो जैसे माइकेल एजेलो, लियोनार्डो द विशी और वर्टलोडो आदि को सरक्षण

प्रदान किया। सामान्यत पुनर्जागरण के उत्थान, विकास और प्रसार के मूलाधार यही थे।

६ **पुनर्जागरण का उद्‌भव**—सभी यूरोपवासी राज्यो ने पुनर्जागरण मे कुछ न कुछ सहयोग दिया था, लेकिन इटली मे इन सबका स्रोत 'यूरोप का स्कूल' सिद्ध हुआ। प्राचीन ग्रीक के एथेन्स की तरह, जिससे अन्य यूरोपीय देशो ने प्रेरणा और जीवन प्राप्त किया। डा० विल डुराट लिखते है, 'इटली ने प्राचीन ग्रीक और रोम की पुनर्खोज की और प्राचीन साहित्य सबधी विद्वत्ता की स्थापना की और लैटिन को फिर मे एक पौरुषमरी भाषा और सार शक्ति बना दिया। उसने अपनी भाषा और आत्मा को पुन खोज निकाला था, देशी भाषाओ को नये स्तर की शैली और आकार प्रदान किया था, पद्य की रचना प्राचीन श्रेष्ठ भावना से की थी यद्यपि वह जवान और विचार से आधुनिक रही और जिसकी जड़े उसकी अपनी समस्याओ मे अथवा ग्रामीण अचल के दृश्य-दृश्यावलियो और व्यक्तियो मे थी।'

इटली मे ही साहित्य, भवन निर्माण-कला, शिल्प, चित्रकला, सगीत और विज्ञान विशिष्ट सर्वोत्तम कृतियाँ दूसरो के लिये सब प्रेरणा का स्रोत रही है। आमतौर पर यूरोप के सभी देशो ने इटली के विद्वानो, नये शिक्षण और नयी कला के अध्यापको को निमन्त्रित करने के साथ-साथ उनका स्वागत किया। यूरोप के सभी भागो के विद्यार्थी और विद्वान् पुनर्जागरण की नयी शराब पीने इटली गये। प्रो० एच० ए० एल० फिशर के अनुसार "दो सौ वर्षो (१३४०-१५४०) तक इटली के नगरो ने कला, विद्वत्ता और साहित्य का इतनी अधिक सख्या मे निर्माण किया जैसा ससार एथेन्स के वैभव के पश्चात् कभी नही देख पाया था।"

निम्नलिखित तत्व इटली मे पुनर्जागरण का प्रारम्भ करने वाले कारण थे

१ **वह स्वाभाविक था**—डा० एच० ए० एल० फिशर का मत है कि यह स्वाभाविक ही था कि यूरोपीय कला और साहित्य ने ऐसी जगह जन्म लिया "जहाँ प्राचीनता का सगमरमर, वृक्षो और झाडियो मे अभी भी दमक रहा है, और जहाँ पुरातन से चली आ रही मानव-शिक्षा को कभी भी पूरी तरह से अवरुद्ध नहीं किया गया।"

२. **प्राचीन अवशेषो का आकर्षण**—इटली प्राचीन रोमवासियो के यश का केन्द्र था। इस तरह प्राचीन रोम के सभी ऐतिहासिक खडहर और भग्नावशेष विद्वानो और कलाकारो को आकर्षित और निमन्त्रित कर रहे थे। इटली से प्राचीन सभ्यता अभी लुप्त नही हुई थी। लैटिन का अधिकाश साहित्य मठो मे सहेज कर छुपा दिया गया था। डा० एच० ए० एल० फिशर का कहना है कि "यहाँ अतिम रूप से वे

ध्वसावशेष प्रतिलिपियाँ, सिक्के और पदक थे जो आमन्त्रित करते से लगते थे और पेट्रार्क के दिनो से विद्वानो को खोज करने के लिए आमत्रण दे रहे थे ।

३ **कुस्तुनतुनिया के विद्वान्**—सन् १४५३ मे कुस्तुनतुनिया के पतन और आटोमन तुर्क के हाथो मे चले जाने से ग्रीक विद्वान् और विचारक अपनी प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियो और अमूल्य कला के साथ अधिकाश लोग इटली चले गये और धीरे-धीरे लोगो मे स्वभावत इतने रोम के कलाकारो और साहित्यकारो की कल्पना शक्ति को तीव्र कर दिया और उन्होंने कला और साहित्य को अनन्य विशिष्ट कृतियाँ दी जो आत्मा और लहजे की दृष्टि से मूलत आधुनिक थी ।

४ **इटली शहरो का वैभव**—एशिया और यूरोप दोनो के देशो के साथ व्यापार कर इटली के शहरो ने बहुत बडे पैमाने पर दौलत इकट्ठी की । इससे पहले मध्यम वर्ग के लोगो के पास कभी इतना धन नही था । इससे इन्हे इस बात का पर्याप्त समय मिला कि वह नये शिक्षण को प्रोत्साहित करे और दूर-दूर तक फैलाये ।

५ **नये शिक्षण के लिए प्रबल लालसा**—नये शिक्षण के लिए इटलीवासियो मे प्रबल लालसा और उमग भरा उत्साह था । कुछ पोपो जैसे निकोलस पचम (१४४७-१४५५), जुलियस द्वितीय (१५०३-१३) और लियो दसवाँ (१५१३-२१) और कुछ इटली के राजकीय परिवार, जैसे फ्लोरेंस के मेडिकी परिवार ने नये शिक्षण के प्रेमियो का पृष्ठपोषण किया । डा० एच० ए० एल० फिशर लिखते हैं, इन प्रसिद्ध गणमान्य व्यक्तियो ने एक साथ एकत्रित होकर फ्लोरेंस को यूरोप की कलापूर्ण और मेधावी राजधानी बना दिया । इसके अलावा इटली ने विभिन्न प्रकार के कार्यों मे समर्थ प्रतिभा-वान् विद्वान् और कलाकार दिये । डा० एच० ए० एल० फिशर कहते हैं, "लोगो ने चित्रकला से शिल्प, शिल्प से भवन निर्माण कला और धातु के कार्यों मे, और इसके साथ काव्य, दर्शन और प्राकृतिक विज्ञान मे सफलता और दक्षता प्राप्त की ।" माइकेल एजेलो, लियोनार्डो और अलवर्टी प्राचीन सर्व सिद्धातो के उदाहरण हैं ।

१६वी शताब्दी के मध्य मे देश राजनीतिक प्रभाव के कारण स्पेन के अधीन हो गया तथा इटली के रचनात्मक युग का अत हो गया तो भी पुनर्जागरण सपूर्ण यूरोप में फैल चुका था ।

(इ) पुनर्जागरण का विकास और प्रसार

साहित्य मे पुनर्जागरण—पुनर्जागरण के साहित्य मे मानवतावाद और धर्म-निरपेक्षता के दर्शन होते हैं । साथ ही यह लैटिन भाषा मे न लिखा जाकर आम जनता की भाषा मे लिखा गया था, प्रादेशिक भाषा मे जो वास्तव मे मध्य युग मे विकसित हुई थी ।

१ इटली के लेखक—निकोलो मचीअवती का नाम प्रादेशिक लेखकों में अग्रणी है। उन्होंने बहुत-सी ऐतिहासिक कृतियाँ लिखी जिनमे से 'प्रिंस' ससार भर के राजकुमारों के लिये विशिष्ट मार्गदर्शिका साबित हुई। इटली मे दाते की डिवाइन कामेडी का अनुवाद हुआ और छापी गयी। ऐरिस्टो ने इटली में 'आरलेडो फ्यूरिसो' काव्य की रचना की, और तासों ने 'जेरूसलम डिवरर्ड' महाकाव्य की रचना की। वैसे दाते इटली के काव्य का जन्मदाता माना जाता है, उसी तरह गीओवडी थोसिस-सिनो (१३१३-१३७५) इटली गद्य साहित्य का जन्मदाता था और 'डेकमारान' जान की उत्तेजक लघु कहानियो का सग्रह लिखा, जो विश्व भर मे प्रसिद्ध हुई।

अध्ययनरत विद्वान्

२ जर्मन लेखक—जर्मनी मे मार्टिन लूथर ने बाइबिल का अनुवाद कर जर्मनी साहित्य मे अपना विशिष्ट योगदान दिया।

३ स्पेन के लेखक—अपने समय के सबसे अधिक योग्य लेखक सेरवतेस ने अमर योन लिखा जिसे पुर्नजाग्रत युग के साहित्य की सुन्दरतम और अद्भुत भेंट माना जाता है। इसके अलावा लोपे द वेगा और काल्ड्रन ने स्पेन की भाषा मे नाटको और काव्यो की रचना की।

४ पुर्तगाली लेखक—इसी बात पर पुर्तगाली साहित्य मे कमोन्स ने वास्को-डिगामा की अद्भुत य।त्रा और खोज का वर्णन करने वाला अमर महाकाव्य "ल्युसकस" लिखा।

५ फ्रांसीसी लेखक—माइकेल द मार्टेज (१५५३-९२) ने अपने निबधो द्वारा और फ्रासिस रावेलो (१४९०-१५५३) ने अपनी कविताओ द्वारा, १७वी शताब्दी मे मुख्यत मरगनुटासे फ्रेंच साहित्य के स्वर्ण युग के द्वार खोल दिये।

६ डच लेखक—डिसीडर अस इरेसमस (१४६६-१५३६) ने 'इन प्रेज आफ फोली' नामक अमर कृति लिखी।

७. अग्रेजी लेखक—१६वी शताब्दी मे अग्रेजी साहित्य अपनी प्रसिद्धि के उच्चतम शिखर को पहुँच गया था। अग्रेजी के महान साहित्य की अनवरत धारा बहती

रही। अग्रेजी काव्य के जन्मदाता जिओफेरी चौसर ने 'केटलबरी टेल्स' लिखी। फ्रासिस बेकन ने 'दि ग्रेटेस्ट, वाइ नेस्ट एड मीनेस्ट आफ मैनकाइड' निवध लिखे। सर थामस मूरे ने 'यूटोपिया' लिखा। मिल्टन ने 'पैराडाइज लास्ट' नामक अमर महाकाव्य की रचना की, क्रमेर ने 'बुक आफ कामन प्रेयर्स' लिखा, वेन जानसन, क्रिस्टोफर मारले, और शेक्सपियर ने रोमाचक, मोहक नाटक और एकाकी लिखे।

इस तरह पूरे यूरोप मे, लगातार साहित्य मे विभिन्न भाषाओ मे साहित्य लिखा जाता रहा, जो प्रादेशिक लोगो द्वारा बहुत पसद किया गया। इससे अत मे राष्ट्रीय साहित्य और साथ ही राष्ट्रीय राजनीतिक सस्थाओ का विकास हुआ।

कला मे पुनर्जागरण—मध्य युग मे कला के सभी रूप, ईसाई चर्चों द्वारा पूर्णत प्रभावित थे। उसने सिर्फ ईसाई धर्म गुण और रहस्य ही दिखाये। इसलिए यह प्रवृत्ति कठोर, रूढिग्रस्त और विचित्र थी। यह मानवतावाद और स्वाभाविकतावाद से बिल्कुल शून्य थी।

सृजनकारी पुनर्जागरण युग ने गिरजाघर के प्रभुत्व का तीव्र विरोध किया। पुनर्जागृति के कलाकारो और भवन निर्माण कर्त्ताओ ने सर्वप्रथम इटली और फिर यूरोप के अन्य भागो मे सुन्दर, भव्य, जीवत और शोभा मे अद्वितीय, सतुलित आकार वाले और रगो के सुन्दर मेल से युक्त, कला और भवन शिला का निर्माण किया। पुनर्जागृति की कला मे मानवतावाद और स्वाभाविकता की आत्मा का दर्शन सहज ही हो जाता है।

१. भवन निर्माण कला—मध्ययुगीन नगर और मकान मुख्यत बचाव और सुरक्षा के लिये बनाये गये थे न कि सुख, आराम और उनको ठाट-बाट की सुविधा के लिये। प्राचीन ग्रीक भवन कला सम्बन्धी व्यवस्था—डारिक, लानिक और क्रानिकायिन का इस्तेमाल हर तरह के भवनो के लिए पुन और प्रचुर मात्रा मे किया गया। १६वी शताब्दी में रोम मे सेट पीटर चर्च मे यह अपने उत्कर्ष को पहुँच गया था और यह दो महान् कलाकार और भवन निर्माणकर्त्ता राफेल और माइकेल एजेलो की देखरेख मे बना था। १७वी शताब्दी मे सर क्रिस्टोफर वर्न ने इसी तरह का सेटपाल का मुख्य गिरजाघर बनवाया। यह दोनो और वेनिस मे सेट मार्क और डागे के राजमहल भी पुनर्जागृति युग के भवन सम्बन्धी उत्कृष्ट नमूने हैं।

२. शिल्पकला—पुनर्जागरण काल मे शिल्पकला की कला मे मानवतावाद और स्वाभाविकवाद का प्रचुर मात्रा मे चित्रण किया गया था। इटली के फ्लोरेस मे निम्नलिखित चार अग्रणी और अनुपम शिल्पकार थे—वे इस प्रकार थे :—

लारेनजो घिबर्टी (१३७८-१४५५)—लारेनजो घिबर्टी १५वी शताब्दी के प्रथम प्रमुखतम नये शिल्पकार थे। इन्होंने फ्लोरेस की वैपिस्ट्री के अद्भुत और भव्यतम द्वारो पर छेनी चलाई जो माइकेल एजेलो के अनुसार स्वर्ग के द्वार पर रखे जाने योग्य थे।

दांतेलो (१३८६-१४६६)—घिबर्टी से उम्र मे कुछ ही छोटे दातेलो की शिल्प-कला में पूर्ण गहन वास्तविकता और स्वाभाविकता के गुण थे। इन्होंने वेनिस में अपनी छेनी से सेंट जार्ज और सेट मार्क की जीवत मूर्तियाँ बनायी जो शायद उनकी सबसे प्रसिद्ध मूर्ति है। इसके अलावा इनकी यग एजल्स की कृतियाँ जो शरीर की सुडौलता को छिपाने के बजाय दर्शाती हैं, प्रशसनीय हैं।

ल्युका डेलो रोबिया (१३९९-१४८२)—इन्होंने शिल्पकला के एक नये स्कूल की प्रस्थापना की। अपनी विशुद्ध और सरल शैली के लिए वह प्रसिद्ध था।

माइकेल एजेलो एक क्रांतिकारी शिल्पी—भवन निर्माण कला का प्रसिद्धतम मर्मज्ञ और एक अनुपम चित्रकार माइकेल एजेलो, हर कार्य मे सिद्धहस्त और प्रतिभा-वान व्यक्ति था। उसकी छेनी मे जादू भरा था। उसने अपनी छेनी से फ्लोरेंस मे डेविड की एक विशाल मूर्ति बनायी, जो शरीर रचना की अद्भुत कृति है और विशाल मस्तिष्क मे बौद्धिक श्रेष्ठता की ओर इगित करती है। चित्रकार, एक योग्य शिल्पी, और प्रशसनीय इसकी मोसेस की बनायी गई एक अन्य विशाल मूर्ति का हाफ प्राइज फाइटर, हाफ जुपिटर के रूप मे वर्णित किया गया है। इसकी 'पीएटा' नाम की मूर्ति में गहरे भावो को अत्यन्त यथार्थवादी रूप मे दिखलाया गया है। इटली का यह शिल्पकार इतना प्रसिद्ध हो गया कि इगलैंड के हेनरी सप्तम और फ्रास के फ्रासिस प्रथम ने उसे अपने-अपने देश आने के लिए निमन्त्रित किया। सोलहवी शताब्दी में पूरे पश्चिमी यूरोप में नयी शिल्पकला पूरी तरह हावी हो गयी।

क्रान्तिकारी शिल्प—
माइकेल एजेलो द्वारा

३ चित्रकारी की कला—सृजनकारी पुनर्जागरण युग मे चित्र सबन्धी कला बिलकुल प्राचीन थी और किसी अन्य कला की अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट पूर्णता इसी को प्राप्त थी। एक बहुत बडी सीमा तक नयी कलात्मक विधियो जैसे दीवार चित्रकारी फ्रेस्रोकस, तैल, रग, लकडी पर नक्काशी आदि का आविष्कार करने के साथ-साथ उसे उन्नति और पूर्णता को पहुँचाया गया। १६वीं शताब्दी मे इटली ने ससार को चार सबसे अधिक स्मरणीय और महान् चित्रकार दिए, अर्थात् लियोनार्डो द विन्शी, माइकेल एजेलो, राफेल और टिटिमन।

लियोनार्डो द विंशी (१४५२-१५१६)—जन्म से ही फ्लोरेंसवासी लियोनार्डो द विंशी हर कार्य मे सिद्धहस्त और प्रतिभावान् व्यक्ति था। वह श्रेष्ठतम सगीतज्ञ, एक अनुपम चित्रकार, योग्य इजीनियर, एक निपुण कारीगर और एक दार्शनिक कवि था। इसे एक वैज्ञानिक चित्रकार मानते हैं। यह सूक्ष्मतापूर्वक मनुष्य की शरीर रचना का निरीक्षण कर रहा था और रोशनी, छाया और रगो की समस्या से सम्बन्धी दृष्टिकोणो के मूल्यो को आँकने मे निपुणता प्राप्त कर रहा था। इसकी 'मोनालिसा' 'द लास्ट सुपर', 'द वर्जिन आफ द राक्स' और 'द वर्जिन एण्ड चाइल्ड विथ सेंट ऐन' कला की सबसे अद्भुत सर्वोत्कृष्ट कृतियाँ मानी जाती हैं। ये रगीन चित्र आतरिक सुन्दरता, भव्यता, मनोवैज्ञानिक प्रभाव, रहस्यमय आकर्षण, छाया, प्रकाश और पृष्ठभूमि मे अनुपम माने जाते हैं।

लियोनार्डो द विंशी की चित्रकारी मोनालिसा

माइकेल एजेलो (१४७४-१५६४)—माइकेल एजेलो भी लियोनार्डो की तरह हर कार्य मे सिद्धहस्त, प्रतिभावान, अनुपम चित्रकार, अद्वितीय शिल्पी, प्रथम श्रेणी का भवन-

माइकेल एजेलो का सिस्टाइन चैपेल की दीवार पर चित्र—ईश्वर आदम को बनाते हुए
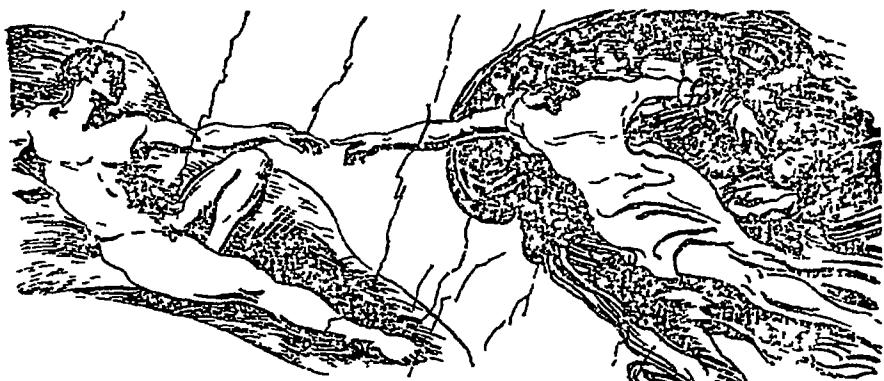
निर्माणकर्त्ता, योग्य इजीनियर, एक महान् कवि और शरीर-विज्ञान का विद्वान् था और विज्ञान का गम्भीर विद्यार्थी था। उसकी सबसे शानदार उपलब्धि सिस्टाइन चैपेल की दीवार पर की गयी अद्भुत फ्रेसोकस की चित्रकारी है। कुल मिलाकर इसमे १४५ चित्र है, जिसमे ३९४ शरीरो का रसाकन है जिसमे से कुछ १० फीट ऊँची हैं। "रेखाचित्रो की शोभा, दुखद प्रेरणाशक्ति और गहरी धार्मिक अनुभूतियो ने माइकेल एजेलो को एक अद्वितीय कलाकार बनाया। उसने अपने कुछ विशिष्ट प्रकार के विचारो की अभिव्यक्ति के लिये पुरुषो के यह नग्न रेखाचित्र बनाये।" (डा० जे० ई० स्पेन)

राफेल (१४८३-१५२०)—सेनजिओ राफेल १६वी शताब्दी के क्रातिकारी चित्रकार, एक योग्य शिल्पी और प्रशसनीय भवन निर्माणकर्त्ता थे। वह रोम के सेंट पीटर चर्च की इमारत के निर्माणकर्त्ता थे। 'सीसटाइन मडोना' उनकी चित्रकारी कला की विशिष्ट उपलब्धि है। इसकी रचना की सुन्दरता और जीवत आकर्पकता ने इसे ससार का सबसे प्रसिद्ध चित्र बना दिया है।

टिटिमन (१४७७-१५७६)—टिटिमन चित्रकला के वेनतायन विद्यालय का प्रतिनिधि था जो पुनर्जागरण की कला को धर्मनिरपेक्ष मानता था। इनके चित्रो मे 'सुख विपयी सुन्दरता' और वेनिस की धर्मनिरपेक्ष आत्मा का छायाकन है। टिटिमन का तैल-चित्र उनकी सबसे बडी देन है। वेनिस स्थित फ्रारी के चर्च मे बनी इसकी असमसन आफ द वर्जिन ससार की सबसे अधिक पवित्र मानी जाती है। प्रकाश, छाया और रग योजना मे इसकी अपेक्षा कोई और उत्कृष्ट नही हो पाया है।

चित्र सम्बन्धी यह नई कला हालाकि प्राचीन समय की थी, तो भी इटली मे शीघ्र ही विकसित होकर पूरे पश्चिमी यूरोप की बपौती बन गयी। जर्मनी के अलवेचट, ड्यूरर और होलवीन, स्पेन मे विल्सक्यूज, मूरिलो और एल ग्रेसो और हालैण्ड मे रूलेबम्स और वाम ड्यूके इटली के इन सिद्धहस्त कलाकारो के शिष्य बनकर बढिया और अद्वितीय चित्र बनाये।

४ **सगीत कला**—सोलहवी शताब्दी मे इटली मे सगीत कला का स्वर्णयुग था। मध्ययुग के पुराने प्रचलन और बेढगे वाद्य यन्त्रो के बजाय नये, मधुर और सगीतमय वाद्य यत्रो को रखा गया। एक प्रकार का तारो युक्त वाद्य यत्र, प्यानो और वायलीन लोगो के बीच लोकप्रिय और अग्रणी हो गये। स्वरो के मेल, लय और समानता पर बहुत अधिक ध्यान दिया गया। सगीतकारो ने विभिन्न तानो, रागो और स्वर लहरियो का मिश्रित क्रम प्रस्तुत किया। सोलहवी शताब्दी के रोम के सगीत विद्यालय के मुख्य प्रतिनिधि गिवनानी पालेसत्रीना और वेनेतायन सगीत विद्यालय के गिवनानी गेबरीलो और एड्रिन विलेरटे—ये सभी इस युग के महान् सगीतज्ञ थे।

पुनर्जागरण की कला ने इस तरह जिंदगी के सभी पक्षो का वर्णन किया। सुख और दु:ख, सांसारिकता और साधुता, वैभव और गरीबी इन सबको पुनर्जागृति कला मे स्थान मिला।

विज्ञान मे पुनर्जागरण—रोजर बेकन की जांच पद्धति और डेकार्टेस द्वारा संदेहों के विचार की सिफारिश, अतत: आधुनिक वैज्ञानिक रूप मे विकसित हुई। वैज्ञानिक भावना ने अनेक जिज्ञासाओं और वैज्ञानिक तरीकों की ओर प्रेरित किया जिन्होंने हमारे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन मे क्रान्ति ला दी।

१ खगोल विज्ञान—यह आकाश मे स्थित नक्षत्रो का विज्ञान है। १६वी सदी के मध्य तक इस क्षेत्र मे यूरोप मे 'पोलेमी की प्रणाली' का बोलबाला था। पोलेमी मिस्र का एक खगोल वैज्ञानिक था जिसने इस प्रणाली का प्रारम्भ किया। इसके अन्तर्गत पृथ्वी ब्रह्माण्ड के बीच स्थित मानी जाती थी और इसलिये सूर्य, चन्द्रमा और तारे इसके इर्द-गिर्द घूमते थे। यह सिद्धान्त पवित्र माना जाता था।

निकोलस कोपरनिकस (१४७३-१५४३)—निकोलस ने वैज्ञानिक अध्ययन, निरीक्षण और चिंतन के द्वारा यह सत्य खोज निकाला कि सूर्य नक्षत्रो का केन्द्र है न कि पृथ्वी। पृथ्वी, चन्द्र और अन्य नक्षत्र सूर्य के चारो ओर घूमते है। यह कोपरनिकन सिद्धान्त अपने आप मे क्रान्तिकारी था, क्योंकि यह चर्च के सत्ताधिकारियों के लिए एक चुनौती थी। इसलिये वह पोप से बहुत ज्यादा भयभीत था। इसलिये उसकी पुस्तक 'द रिवोलूसन्स आफ द हेवनली आरवर्ग' उसकी मृत्यु के बाद ही छप सकी। वास्तव मे समोस के अरिस्टेरकस, ने इस सत्य का पता बहुत पहले लगा लिया था कि पृथ्वी सूर्य के चारो ओर घूमती है और साथ ही खुद भी उसी समय अपनी धुरी पर घूमती है। लेकिन उसकी इस घोषणा पर किसी ने विश्वास नही किया। सत्रहवीं शताब्दी मे जर्मनी के वैज्ञानिक जॉन किपलर और इटली के वैज्ञानिक गैलीलियो, इन दोनो ने कोपरनिकन सिद्धान्त को लोकप्रिय बना दिया।

जान किपलर (१५७१-१६३०)—इसने कोपरनिकस के सिद्धान्त को साबित करने के लिये अंकगणित के नियम बनाये, लेकिन साथ ही इस बात की ओर संकेत किया कि नक्षत्र, सूर्य के चारो ओर एक घेरे मे परिक्रमा न करके दीर्घवृत्तीय रूप मे घूमते हैं।

गैलीलियो (१५६४-१६४२)—कोपरनिकस के सिद्धान्तो को साबित करने के लिए इसने दूरबीन का अन्वेषण कर नया सबूत पेश किया। इसके अनुसार चन्द्रमा पर पहाड है और शनि नक्षत्र के चारो ओर छोटे-छोटे तारे है। तथापि इक्वीजिशन (पोतत्र द्वारा नास्तिको पर मुकदमा चलाने वाले न्यायालय) ने उसे यातना देकर

सर आइजक न्यूटन

वाध्य किया कि उसने जो कुछ सार्वजनिक रूप से कहा है उसे वापस ले ले। उसने ऐसा ही किया कि तब भी धीमी आवाज मे कहा कि सत्य की विजय होगी।

सर आइजक न्यूटन १६४२-१७२७)—इन्होने इस बात की खोज की कि सभी आकाशीय नक्षत्र गुरुत्वाकर्षण शक्ति के द्वारा सचालित हैं।

२ **भौतिक विज्ञान**—भौतिक विज्ञान मे असख्य अन्वेषण किये गये। गिलबर्ट (१५४०-१६०३) ने, जो गैलीलियो से पहले के महान् भौतिकी शास्त्री थे, चुबकीय अनुपात के प्रयोग किये। इस तरह उन्होंने विद्युत्-शक्ति के अध्ययन के द्वार खोल दिये।

स्टेविन (१५४८-१६२०)--इसने समानान्तर चतुर्भुज की शक्ति की खोज की और तरल पदार्थों के दबाव का प्रयोग किया।

गैलीलियो (१५६४-१६४२)—गैलीलियो एक चहुँमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति था। वह एक असाधारण खगोल-शास्त्री और पहले के भौतिक शास्त्रियो में सबसे महान् था। पिसा गिरिजाघर मे एक झूलनेवाले दीपक का वैज्ञानिक अध्ययन करके सूक्ष्म दृष्टि से देखकर उसने पेडुलम के सिद्धान्त की खोज की। इसके अलावा पीसा की तिरछी मीनार से भारी और हल्की गेदे गिराकर उसने भौतिकी का एक अन्य सिद्धान्त खोज निकाला—गिरती हुई वस्तु की गति उसके वजन पर निर्भर न होकर जैसी कि अरस्तू की धारणा थी, वह पूर्णत उसके द्वारा तय की जाने वाली दूरी पर निर्भर करती है। इस प्रकार गैलीलियो ने आधुनिक शक्ति तथा गति सबधी विज्ञान की नीव डाली। गैलीलियो ने वायु थर्मामीटर, जल स्थित तराजू और खगोल घडी की भी खोज की। उसके अन्य आविष्कार थे बैरोमीटर और तौलने का तराजू। उसने गुरुत्वाकर्पण और गति के विषय मे उत्तम शोध कार्य किया और बीजगणितीय विश्लेषण तथा प्रयोगो को एक सश्लिष्ट कर दिया अर्थात् दोनो को एक साथ मिला दिया।

३ **रसायन-विज्ञान**—इस युग मे रस सिद्धि का स्थान रसायन-विज्ञान ने ले लिया।

पैरासिलसस (१४९३-१५४१)—इसने बलपूर्वक कहा कि मनुष्य के शरीर मे जो भी प्रतिक्रिया होती है, उसमे रासायनिक परिवर्तन शामिल है। उसने रासायनिक द्रव्यो का प्रयोग औषधि के रूप मे किया।

मार्ड्स (१५१५-१५४४)—इसने सल्फ्यूरिक एसिड और ईथर से शराब बनायी।

हेलमाट (१५७७-१६४४)—इसने कार्बन डाइ-आक्साइड की खोज की और बलपूर्वक कहा कि वायुमडल मे मौजूद हवा के अलावा अन्य गैसे भी अस्तित्व मे हैं।

४ **औषधि**—औषधि-विज्ञान के क्षेत्र मे बडी प्रगति की गयी।

वासालियस (१५१४-१५६५)—यह नीदरलैंड का वैज्ञानिक था जिसने शरीर-विज्ञान पर एक निबंध लिखा जिसमे नर-ककाल, कार्टीलेज (एक प्रकार का सफेद पदार्थ जो बाद मे हड्डियो मे परिवर्तित हो जाता है), मासपेशियो, नाडियो और धमनियो, पचाने वाली और प्रजनन प्रणाली, फेफडो और मस्तिष्क सबका विस्तार मे तथा सूक्ष्म वर्णन था।

विलियम हार्वे (१५७८-१६५७)—इसने खोज की कि रक्त का प्रवाह हृदय से प्रारम्भ होकर धमनियो को जाता है और वहाँ से नाडियो को होता हुआ पुन हृदय को जाता है। औषधि-विज्ञान को यह एक क्रातिकारी योगदान है।

५ **गणित**—गणित-विज्ञान के क्षेत्र मे पश्चिम को पूर्व से अरबो द्वारा देन मिली। बीजगणित के मौलिक सिद्धात और अरबी गिनतियाँ मुसलमानो ने दी जो कि ये दोनो प्राचीन भारतीयो से सीख चुके थे।

टार्टागिलया (१५००-१५५७)—फेरारी (१५२२-१५६५), विएटा (१५४०-१६०३) और केपलर (१५७१-१६३०) ने विभिन्न प्रकार के समीकरण खोज निकाले। डोसाएगल (१५९३-१६६२) ने आधुनिक रेखागणित को व्यवस्थित किया। डेसकारटस ने विश्लेषणात्मक रेखागणित की व्यावहारिक प्रणाली खोजी। स्टेविन (१५४८-१६२०) ने दशमलव पद्धति के वजनो, मापो और सिक्को की सिफारिश की। अत मे नेपियर (१५५०-१६१७) ने लघुगणक का आविष्कार किया जिसमे उसने दशमलव बिंदु का उपयोग किया।

६ ***अन्य आविष्कार और खोजें***—१ **छापाखाना**—प्रारम्भ मे छापने की कला की खोज चीन ने की। किन्तु बाद मे यूरोप मे भी स्वतन्त्र रूप से इसका आविष्कार किया गया। मध्ययुग मे राजाओ, राजकुमारो और सामन्तो ने अपने हस्ताक्षरो को लकडी अथवा धातु के टुकडो पर कढवा लिया और दस्तावेजो को बद करने लगे। बाद मे कही पर किसी ने अक्षरो को अलग लकडी के टुकडो अथवा धातु के टुकडो पर बनाने की क्रिया का आविष्कार किया। सब एक ही आकार मे और बाद मे उन्हे एक साथ लगाकर छपाई शुरू की। टाइपो को जोड सकने और हटा सकने के कारण उनका बारम्बार इच्छानुसार उपयोग किया जा सकता था। यह कार्य सर्वप्रथम कौन कर सका, यह आज भी एक रहस्य बना हुआ है। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि

१४५० के आस-पास जान गुटेमवर्ग अपने जर्मनी के छापाखाना मे जोडे जा सकने वाले टाइपो का प्रयोग कर रहा था ।

२ **बारूद**—इसका मौलिक आविष्कार चीनियो ने किया था और इसका उपयोग उन लोगो ने और अरवो ने किया । १४वी सदी के यूरोप मे काँसे की तोपे बनायी जाने लगी जिनसे पत्थर के तोप के गोले दागे जा सकते थे । वाद मे उनके स्थान पर लोहे के गोले और लोहे के गेंद दागे जाने लगे । हाथ वदूको का निर्माण भी होने लगा ।

३ **नाविक यन्त्र या कुतुबनुमा**—इसका पूर्व इतिहास स्पष्ट है । ५वी ईस्वी मे ही चीनियो को इसका ज्ञान था । एलेक्जेडर नेकम ने अपनी १२वी सदी की कृति मे लिखा है—'समुद्र के नाविक चुम्वक लगी एक सुई का स्पर्श करते हैं जो गोल घूमने लगती है जब तक कि उसकी गति बद नही हो जाती, उसकी नोक उत्तर की ओर इगित करती है ।' साहित्य मे यह सबसे पुराना ज्ञात सदर्भ है ।

चासर, महान् अग्रेज कवि ने १३९१ मे लिखा था कि कुतुवनुमा का कार्ड ३२ विंदुओ मे विभाजित होता है ।

इस प्रकार पुनर्जागरण के स्वरूप प्राचीन युग मे आधुनिक विज्ञान की कई नीवें डाली जा चुकी थी ।

४ **पुनर्जागरण के परिणाम**—पुनर्जागरण ने अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणामो को जन्म दिया

१ **विश्लेषणात्मक भावना**—आधुनिक ससार को पुनर्जागरण युग की सबसे बडी देन है, विश्लेषणात्मक भावना का पुनर्जन्म, वैज्ञानिक मस्तिष्क, अज्ञान को जानने का औत्सुक्य और अनजाने स्थानो की खोज । मध्ययुग मे मानव मस्तिष्क पोपतत्र द्वारा जजीर से वाँध दिया गया था, गुलाम वना दिया गया था । पुनर्जागरण युग मे उसको ऐसी गुलामी से मुक्ति दी गयी । तव उसने अपने आपको ऐसी वस्तुओ के आविष्कार, खोज मे और विकास पद्धतियो मे लगाया जिन्होने हमारे जीवन को पहले की अपेक्षा सुखमय, सपूर्ण, अधिक सुविधाजनक और आरामदेह वनाया ।

२. **मानवता की भावना**—मध्ययुग मे मानव-बुद्धि, शक्ति और समय का उपयोग एकमात्र धार्मिक विपयो के अध्ययन के लिये होता था । पुनर्जागरण ने इससे विद्रोह किया और मानव कल्याण तथा सुख से सबधित प्रत्येक विपय मे मनुष्य की रुचि का विकास किया । इस नयी सस्कृति के देवदूतो को मानवतावादी की सज्ञा दी गयी और इन विषयो के अध्ययन को 'मानवशास्त्र' का नाम दिया गया ।

३ **ठोस पाठ्यक्रम**—इमने स्कूलो, कालेजो और विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रम को उनमे सीजर, निसरो, वर्जिल और होमर के साथ-साथ लैटिन, ग्रीक भाषाओ को जोड कर ठोस वना दिया ।

४ देशी भाषाओ को प्रोत्साहन—मानवतावाद ने देशी भाषा के साहित्य के विकास को प्रोत्साहित किया। लेखक अपनी-अपनी भाषाओ—इटालियन, फ्रेंच, इगलिश, जर्मन आदि मे लिखने लगे।

५ चर्च दुर्वल हो गया—ज्यो-ज्यो विश्लेषण करने की भावना बढने लगी चर्च द्वारा दिये गये उपदेशो पर प्रश्न पूछे जाने लगे और जो भी तर्कहीन था, उसे अस्वीकार किया जाने लगा। फलस्वरूप अनेक लोगो ने चर्च की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

६ राजतन्त्र दृढ बना—लोग सामती समाज की व्यवस्था और कुशासन से तग आ चुके थे। अतएव उन्होने पुनर्जागरण युग मे राजतत्र का समर्थन किया, ताकि वे जीवन को शाति, सुरक्षा और राजनीतिक स्थायित्व के कारण सुखमय बना सके।

७ बौद्धिक क्राति—छापाखाना के आविष्कार ने एक बौद्धिक क्राति को पूरा कर दिया क्योकि उसके बिना पुस्तके धनिको के विलास के लिये थी, समाचार-पत्र अस्तित्व मे नही आते थे और विश्वव्यापी शिक्षा असम्भव थी।

८ तिगुनी क्राति—बारूद के आविष्कार ने क्रान्ति को तिगुना कर दिया। उसने युद्ध की कला और विज्ञान मे आमूल परिवर्तन कर दिया। दूसरे, उसने सामतो, जागीरदारो, जमीदारो को तोड कर सामान्य लोगो को ऊपर उठाकर सामाजिक परिस्थितियो मे क्राति ला दी। तीसरे, उसने तानाशाह राजाओ की पीठ ठोक कर राजनीतिक क्रान्ति ला दी।

९ जहाजरानी, उपनिवेशवाद और व्यापार-वाणिज्य—चुम्बकीय सुई के सहित कुतुबनुमा के आविष्कार ने जहाजरानी मे क्रान्ति ला दी जिससे उपनिवेश बसे और समुद्र पार के व्यापार-वाणिज्य को बडी सुविधा मिली। इसी से मानव इतिहास मे अनेक रक्तमय युद्ध हुए।

१० कलाओं और विज्ञान को प्रोत्साहन—पुनर्जागरण ने विभिन्न कलाओ, शिक्षण और साहित्य के विकास को बडा प्रोत्साहन दिया। उसने विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहित किया और पुन. वैज्ञानिको को जिन्होने अनेक आविष्कार और खोजे की, सरक्षण प्रदान किया। उसने भौगोलिक खोजो का मार्ग भी प्रशस्त किया।

प्रश्नावली

१ पुनर्जागरण का अर्थ और उसके कारण समझाइये।

२ पुनर्जागरण का प्रादुर्भाव इटली मे क्यो हुआ ? अपने उत्तर का कारण दीजिये।

३. साहित्य और विभिन्न कलाओ मे पुनर्जागरण की चर्चा कीजिये।

४ विज्ञान मे पुनर्जागरण की सूक्ष्म परीक्षा कीजिये।

५ पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं ? उसके परिणाम समझाइये।

६ निम्नलिखित पर छोटी टिप्पणियाँ लिखिये .

(१) इटली यूरोप का स्कूल,
(२) साहित्य मे पुनर्जागरण.
(३) भवन निर्माण-कला मे पुनर्जागरण,
(४) मूर्तिकला मे पुनर्जागरण,
(५) चित्रकला मे पुनर्जागरण,
(६) विज्ञान मे पुनर्जागरण,
(७) पुनर्जागरण के परिणाम।

———

तेईसवाँ अध्याय

भौगोलिक अन्वेषण

(अ) यूरोप द्वारा नया विश्व क्यो खोजा गया ?

पुनर्जागरण के युग मे, मानव-इतिहास मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना घटी, वह थी यूरोपवासियो द्वारा दूर स्थित अनजानी भूमियो का अन्वेषण और खोज। इस प्रकार की अन्वेषण और खोजी गई भूमियो मे यूरोपवासियो का वसना जारी है किन्तु एशियावासियो का नहीं। इस प्रवृत्ति के लिए उत्तरदायी तत्व कौन से थे ?

(१) **यूरोप व्यापार, वाणिज्य का भूखा था** – मध्ययुग मे यूरोप और एशिया के बीच पूर्वी रोम साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया के द्वारा व्यापार वाणिज्य का विकास हुआ था। १४५३ ई० मे कुस्तुनतुनिया नगर हठधर्मी आटोमन तुर्कों के हाथ पड गया और उन्होंने यूरोपवासियों के लिये अपने राज्य से होकर गुजरने वाला व्यापार मार्ग वन्द कर दिया। अतएव यूरोपवासियो को नया मार्ग खोज निकालने के लिये वाध्य होना पडा।

(२) **यूरोप पूर्वी विलासिता की वस्तुओ का भूखा था** – यूरोप के धनी वर्ग को पूर्व की विलासिता की वस्तुओं का चाव हो गया था जो अफ्रीका और एशिया से व्यापार द्वारा वहाँ पहुँच रही थी। इनमे चीन का रेशम और भारत के वहुमूल्य पत्थर उल्लेखनीय थे। प्रो० वेवस्टर लिखते हैं—"मसालो के अलावा सभी प्रकार के बहुमूल्य पत्थर, औषधियाँ, इत्र, गोद, रग, सुगंधित लकडियाँ पूर्व से प्राप्त होती थी। ऐसी वस्तुओ की माँग नित्य-प्रति वढती ही गयी। अतएव उन्हे पूर्व के लिये नया समुद्री मार्ग ढूँढने को वाध्य होना पडा।"

(३) **यूरोप को शौर्य तथा लाभ की भूख थी**—यूरोप शौर्य तथा लाभ का भूखा भी था। अनेक युवा यूरोपवासी शौर्य से प्रेरित होकर अनजान स्थानो को निकल पडे और इस प्रकार नयी भूमियाँ खोजी गयी। अनेक को धन, भूमि और विलास की वस्तुओ का आकर्षण था।

इस प्रकार यूरोप कई अर्थों मे भूखा था—वह पूर्व के साथ व्यापार का भूखा था, पूर्व की विलासिता की वस्तुओ के लिये भूखा था, शौर्य के लिये भूखा था और लाभ के लिये भूखा था।

(४) **ईसाई धर्म का प्रसार**—१५वी शताब्दी के यूरोप मे ईसाई धर्म का प्रसार करने की भावना बलवती हुई और ऐसा करने के लिये उसके नेता ईसा के सैनिक के रूप मे ससार मे प्रत्येक कोने तक उनका सदेश पहुँचाने हेतु जान की जोखिम उठाने को भी तैयार थे। इस तरह कितनी ही वार ईसाई धर्म-प्रसारक, यूरोपीय व्यवसायी और व्यापारी एक साथ ही नयी भूमि की खोज मे निकल पडे थे।

(५) **भौगोलिक ज्ञान का विकास**—ऐसी असख्य पुस्तको का प्रकाशन किया जाने लगा जिनमे पश्चिम और पूर्व के बीच का व्यापारिक मार्ग बतलाया गया था। इनमे से 'ए मर्चेन्ट्स हैंड बुक' (एक व्यापारी के लिये मार्गदर्शन) और सेकेरेट्स आफ ए फेथफुल क्रूसेडर' (परम विश्वास धर्म-प्रसारक के रहस्य) शीर्षक पुस्तके उल्लेखनीय हैं। इनमे से पहली का लेखक पलोरेटीन और दूसरी का वेनेठीन था। इनमे एशिया के नगरो का वर्णन था। यात्रा-सम्बन्धी अन्य कुछ पुस्तके भी बाद मे लिखी गयी जिनमे से कुछ के शीर्षक थे 'द फार ईस्ट' (सुदूर पूर्व) और 'दि होली लैंड्स' (पवित्र भूमि) और अफ्रीका। जबकि पादरियो ने पृथ्वी को चपटी बताया था, इन पुस्तको ने इसे गोल बताया। इससे भौगोलिक खोज के लिये एक नया उत्साह एव एक नयी प्रेरणा पैदा हुई।

(६) **नाविक का दिशासूचक यत्र**—उपर्युक्त वर्णित बातो के बावजूद भौगोलिक अन्वेषण और खोजे नही हो पाती, यदि नाविक दिशा-सूचक यत्र या कुतुबनुमा का अन्वेषण न किया गया होता। इस यत्र मे एक चुम्बकीय सुई लगी होती थी जो रात के अँधेरे मे भी उत्तर की दिशा दिखलाती थी। ससार के एक-चौथाई भाग से अनजान नाविको को जब दिशाभ्रम हो जाता था तब यह यत्र ही उपयोगी सिद्ध होता था। इस प्रकार दिशासूचक यत्र के अन्वेषण, जहाजरानी उद्योग मे सुधार तथा नक्शा बनाने की कला मे अधिक प्रामाणिकता के कारण भौगोलिक अन्वेषण और खोजो को नयी प्रेरणा मिली।

(ब) भौगोलिक खोजे

(१) **पुर्तगाली खोजें**—पुर्तगाल का छोटा देश भौगोलिक अन्वेपण और खोज के नेताओ मे सर्वप्रथम शक्ति सिद्ध हुआ।

(२) **हेनरी नौचालक** (१३९४-१४६०)—राजकुमार हेनरी ने जो नौचालक के नाम से प्रसिद्ध थे, नाविको के लिये एक स्कूल की स्थापना की और उन्हे उनकी यात्रा मे सभी प्रकार का प्रोत्साहन तथा सहायता दी। पुर्तगाली अटलाटिक महासागर मे यात्राएँ करने लगे। नौचालक हेनरी के सरक्षण मे अफ्रीका के पश्चिमी तट का अन्वेपण करने के लिये वार्पिक खोज यात्राएँ प्रारम्भ हुई और उस काम के लिये उसने भूगोलशास्त्रियो, नक्शा-निर्माताओ, नाविको और जहाज प्ररचयिताओ की सेवाये उपलब्धि की। उनकी एक अन्य उपलब्धि यह थी कि उन्होंने एक अत्यन्त सुघरे हुये जहाज का निर्माण कराया
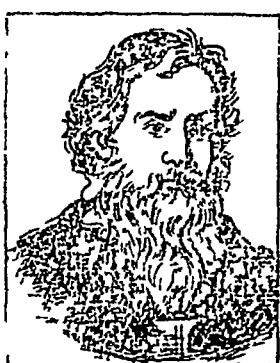
हेनरी नौचालक

(१) **क्रिस्टोफर कोलम्बस (अमरीका का अटलांटिक मार्ग)**—१४९० मे इटली के जिनोआ नगर के एक नाविक कोलम्बस ने जर्मन भूगोलवेत्ता मार्टिन वेहेम द्वारा सावधानी से तैयार किये गये 'ग्लोब' का अध्ययन किया जिसमे सिपागो (जापान) को वैसा ही दिखलाया जैसा कि उसने कल्पना की थी। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सुदूर पूर्व को पश्चिम होते हुये अटलांटिक के मार्ग से जल्दी और सरलता से पहुँचा जा सकता है । इस खोज के लिए वित्तीय खर्च स्पेन की रानी इसविला ने दिया था। कोलम्बस २३ अगस्त, १४९२ को तीन जहाजो 'साता मारिया', 'नीना' और 'पिंटा' के कप्तान के रूप मे ८८ नाविको के साथ सुदूर पूर्व को रवाना हुआ। २ महीने और ९ दिन की लम्बी और थकान भरी यात्रा के बाद जब उसके नाविक उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने की सोच रहे थे, 'भूमि, भूमि, भूमि' की आवाज गूंज उठी। १२ अक्टूबर १४९२ को उसने एक टापू पर पैर रखा जिसे उसने एशिया के तट के निकट ईस्ट इडीज समझा। उसने वहाँ के निवासियो को 'इडियन' कह कर पुकारा। उसने कैरीबियन सागर के तटो, वेनेजुएला और मध्य अमरीका की खोज भी की। बाद मे पता चला कि वह एशिया नही बल्कि एक नया ही महाद्वीप है। उत्तरी और दक्षिणी अमरीका का एक नया ससार।

क्रिस्टोफर कोलम्बस

(२) **अमेरिगो वेरपक्को**—कोलवस की खोज ने अन्य लोगो को भी उसका अनुकरण करने की प्रेरणा दी। एक इटलीवासी अमेरिगो वेस्पक्की ने १४९७ के बाद अनेक यात्राएँ की। नये क्षेत्र ढूढ निकाले। अपने द्वारा खोजे नये क्षेत्रो के बारे मे और उनके निवासियो के बारे मे भौगोलिक वर्णन दिये और उसे एशिया से भिन्न एक पृथक् भूमि के रूप मे एक नया विश्व माना। जर्मन भूगोलवेत्ता वल्डेसमूलर ने सुझाव दिया कि 'नया विश्व' अमेरिगो के सम्मान मे अमेरिका कहा जाये।

(३) **वास्को ननेज डो बल्वोआ**—एक अन्य स्पेनी नाविक बल्वोआ ने १५१३ मे नये विश्व के सोना खोज पाने की आशा मे डेरेन के यू डमरूमध्य (पनामा) को पार किया।

(४) **फर्डीनाड मागेलन**—एक पुर्तगाली नाविक फर्डीनाड मागेलन स्पेन के इसावेलाको के पौत्र राजा चार्ल्स प्रथम की सेवा मे स्पेन से सितम्बर १५१९ मे २६७ नाविको के साथ पाँच जहाजो मे रवाना हुआ। जो थे—**सान अतोनियो, ट्रिनीडाड,**

मक्का, गन्ना, चाय, काफी, रग, लकडी, व्हेल तेल आदि भी अमरीका से यूरोप पहुँचने लगी, जो पूर्व की वस्तुएँ थी । उन्होंने एशिया, अफ्रीका और अमरीका को अनेक वस्तुओ का निर्यात प्रारम्भ किया, विशेषकर ऐसे स्थानो को जहाँ उन्होंने यूरोपीय उपनिवेश बना लिये । इस प्रकार न सिर्फ व्यापार मे उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ, यात्रा और विविधता के साथ-साथ आयात-निर्यात की गयी वस्तुओ में भी परिवर्तन हुए। इस वस्तुओ की विनिमय की पद्धति मे एक उल्लेखनीय सुधार होकर रहा । जिसमे ऋण सस्थाएँ, व्यापारिक बैंक और पूंजीवाद की आधुनिक प्रणाली जाने-माने साधन भी हैं ।

(२) **वाणिज्य प्रणाली**—इस युग मे अर्थशास्त्रियो का विश्वास था कि कुल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सीमित है और वह देश सबसे धनी है जिसके पास अधिक से अधिक सोना-चाँदी है । इसने एक वाणिज्य प्रणाली को जन्म दिया । इसके अनुसार प्रत्येक व्यापारिक दृष्टि रखने वाला प्रभुतासम्पन्न शासक अपने देश का निर्यात वढाने को ध्येय बनाने लगा, कच्चे माल को छोडकर, साथ ही कम से कम आयात करना लक्ष्य था ।

(३) **उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और शोषण**—भौगोलिक खोजो ने उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और शोषण को जन्म दिया । यूरोपवासी बडी सख्या मे नये खोजे हुये स्थानो को जाकर अपनी बस्तियाँ बसाने लगे । देशी लोगो पर राज्य करने और उसका सब प्रकार से शोषण प्रारम्भ किया । लगभग सारा पूर्वी ससार यूरोपवासियो के प्रभुत्व मे आ गया । एशिया, अफ्रीका और अमरीका मे पुर्तगाली, स्पेनी, डच, फ्रासीसी और अग्रेज उपनिवेशवादी साम्राज्य का जन्म हुआ ।

(४) **व्यापारिक और उपनिवेशवादी युद्ध**—विभिन्न यूरोपीय शक्तियो के बीच भौगोलिक खोजो और उपनिवेशवादी बस्तियो के कारण व्यापारिक और उपनिवेशवादी युद्ध प्रारभ हो गया। और ऐसा हुआ अपने-अपने राष्ट्रीय झण्डो को विभिन्न देशो मे ले जाने के कारण ।

(५) **सभ्यता समृद्ध**—यूरोप निवासियो ने एशिया, अफ्रीका एव अमरीका के निवासियो से घनिष्ठ सबन्ध स्थापित करके तथा उनकी प्रसाधन एव विलास की वस्तुओ, धातुओ तथा बहुमूल्य हीरा-जवाहरातो एव अन्य वस्तुओ के सम्पर्क से अपनी सभ्यता को उन्नत तथा समृद्ध बनाया ।

(६) **मुख्य मार्ग अटलाटिक**—मध्ययुग मे भूमध्य सागर और बाल्टिक सागर ही व्यापार के ऐसे दो सागर मार्ग थे जिन्होंने इटली और तुर्की को प्रथम श्रेणी को व्यापारिक शक्ति बना दिया था । किन्तु अमरीकी खोज और पूर्व को जाने वाले मार्गों की खोज के बाद अटलाटिक सागर व्यापार का मुख्य मार्ग बन गया ।

(७) **चहुँमुखी प्रगति**—भौगोलिक खोजो ने यूरोपवासियो के दृष्टिकोण मे एक परिवर्तन कर दिया । फलस्वरूप भौतिक समृद्धि के साथ-साथ पुनर्जागरण की भावना ने

यूरोप की कला और विज्ञान को भी प्रभावित किया। इसने मनुष्य की चहुँमुखी प्रगति सभव बन सकी।

(८) ईसाई धर्म का प्रसार—भौगोलिक खोजो के मूल मे जो अन्य लक्ष्य था, वह था ईसाई धर्म का प्रसार करने की उत्साहपूर्वक भावना। उनके इस उद्देश्य की पूर्ति एशिया, अफ्रीका और अमरीका मे उपनिवेश स्थापित करने पर हुई। ईसाई धर्मगुरुओ ने व्यापारी और झडे का अनुसरण करके अपनी गतिविधियो का प्रारम्भ किया और उसमे सफलता प्राप्त की।

(९) पूर्ण प्रभुसत्ता का विकास—भौगोलिक खोजो ने पूर्ण-प्रभुसत्ता के विकास के लिये अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न की। मध्यवर्ग के समर्थन से शक्तिशाली शासको ने सामन्तो, जमीदारो की शक्ति नष्ट कर दी और कई यूरोपीय देशो—इग्लैड, स्पेन आदि मे वे पूरी तरह शक्तिशाली बन गये।

(१०) पश्चिम की श्रेष्ठता—अत मे यूरोपवासियो की खोजो ने पूर्व को पश्चिम की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी। एशिया, अफ्रीका और अमरीका के अधिकाश भागो मे उनकी देशी सभ्यता को प्राय जड से उखाड दिया गया और उन पर यूरोपीय सभ्यता और ईसाई धर्म को लाद दिया गया। किन्तु बीसवी सदी के प्रारम्भ से पूर्व अपने आलस्य और निद्रा दोनो से जगने लगा।

प्रश्नावली

१ यूरोप ने नये विश्व की खोज क्यो की ?
२ विभिन्न भौगोलिक खोजो का और उनके प्रभावो का सूक्ष्म अध्ययन कीजिये।
३ पुर्तगाली, स्पेनिशी, अग्रेजी और फ्रासीसी भौगोलिक खोजो और विभिन्न क्षेत्रो मे उनके प्रभाव का परीक्षण कीजिये।
४ निम्नलिखित पर छोटी टिप्पणियाँ लिखिये—
(अ) हेनरी नौचालक
(ब) बार्थालोम्यू डियाज
(स) वास्को-डि-गामा
(द) क्रिस्टोफर कोलबस
(क) अमेरिगो वेस्पक्की
(ख) भौगोलिक खोजो का प्रभाव।

चौबीसवाँ अध्याय

ईसाइयों का धर्म-सुधार

(अ) सुधार का अर्थ

जिन दिनो यूरोप के लोग पूर्व के लिये नये समुद्री मार्ग खोजने और अज्ञात देशों को ढूंढ निकालने मे व्यस्त थे, उन दिनो सोलहवीं सदी मे रोमन ईसाई चर्च मे एक धार्मिक क्रान्ति हो रही थी। इस महान् धार्मिक आन्दोलन का समर्थन, मुख्यतया उत्तरी यूरोप मे ईमानदार, खरे और समर्पित ईसाई कर रहे थे। वास्तव मे यह आन्दोलन पोप की प्रभुसत्ता, रोमन चर्च के सिद्धान्तो और अनुचित तथा निन्दात्मक रुख तथा याजक वर्ग के सदस्यो के जीने के अनैतिक ढग तथा भ्रष्ट तौर-तरीको के विरोध मे छेडा जा रहा था। यह एक धार्मिक विद्रोह था, जिसकी प्रेरक शक्ति थी नवजागरण भी भावना।

पोप की प्रभुसत्ता के विरोध मे खडे होने वाले लोग अनेक नामो तथा पथो मे विभक्त थे, पर सामूहिक रूप से वे प्रोटेस्टेन्ट कहे जाते थे, और जिस आन्दोलन के जरिये उन्होंने चर्च की प्रतिष्ठित सत्ता के विरुद्ध विरोध प्रदर्शित किया, उसे 'धर्मसुधार' के नाम से जाना गया। रोमन पोप के प्रति निष्ठा रखने वाले ईसाइयो को रोमन कैथ-लिक कहा जाता था।

नवजागरण और अज्ञात देशो की खोजो जैसी दो महान् घटनाओ के साथ-साथ धर्मसुधार ने भी अधश्रद्धा के युग की समाप्ति मे भारी योगदान दिया। एक नये युग में जन्म लिया, जिसे तर्क का युग, आधुनिक युग के नाम से जाना गया। धर्म-सुधार का अत्यधिक महत्व इसी कारण से है।

(आ) धर्मसुधार के कारण

धर्मसुधार का कारण बनी, वे सब बातें जिनके बारे में नीचे बताया गया है—

१ राजनैतिक विरोध—यद्यपि धर्मसुधार सोलहवी सदी मे हुआ, तथापि उसके कारणो की जडे चौदहवी और पन्द्रहवी सदियो में ही मजबूत हो गयी थी। सच पूछा जाय तो, इस धार्मिक उथल-पुथल के बीज तेरहवीं सदी मे ही बो दिये गये थे, जब एक ओर अंग्रेज और फ्रेंच राजाओं में युद्ध आरम्भ हुए और दूसरी ओर राजाओ ने चर्च की सम्पत्ति पर, जो अब तक करो से मुक्त थी, कर लगाने की बात उठायी। दुर्भाग्य से, पोप ने १२६५ मे एक आदेश-पत्र (Clericis laicos) जारी किया, जिसमे घोषणा की गयी थी कि चर्च की सम्पत्ति पर कर लगाने वाले राजा को धर्म-बहिष्कृत कर दिया जायेगा, और ऐसा कर गैरकानूनी होगा। राजाओ और पोप के के इस सघर्ष मे पोप की हार हुई और दोनो राजाओ ने चर्च की सम्पत्ति पर कर

लगाने के अपने अधिकार की स्थापना की। १३०३ मे अपमानित और अवमानित बोनीफेस का देहात हुआ।

बेबीलोन-दासता—फ्रास के राजा फिलिप चतुर्थ (१२८५-१३१४) ने पोप, क्लीमेंट पचम, प्रतिष्ठा पर वार पर वार किये, जिसका नतीजा यह हुआ कि पोप को १३०९ मे रोम स्थित अपना चर्च छोडकर एविग्नान भागने को मजबूर होना पडा। यहाँ पोप महोदय लगभग ७० वर्षों तक, अर्थात् १३७७ तक रहे। फिलिप चतुर्थ ने यह कदम इसलिये उठाया, क्योंकि पोप उसके राजनैतिक मामलो मे काफी हस्तक्षेप कर रहे थे। इसे 'बेबीलोन-दासता' कहा गया, क्योंकि यह हमे यहूदियो के उस प्राधिधर्माध्यक्ष की याद दिलाती है, जिसे नेबुशनेजार बेबीलोन ले गया था। इस घटना के अप्रत्याशित तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण नतीजे सामने आये। राष्ट्रीय राज्यो ने ऐसे चर्च की माँग की, जिसकी निष्ठा फ्रास के पोप जैसे किसी विदेशी पोप के प्रति न हो। यूरोप के बहुत से राजाओ ने प्रश्न उठाया : राष्ट्रीय राज्य किसी भी मामले में फ्रास के पोप के अधीन क्यो रहे? अतएव, अधिकाश राष्ट्रीय मामलो मे पोप के हस्तक्षेप को रोकना आरम्भ कर दिया।

महान् पश्चिमी विच्छेद (१३७८-१४१५)—एविग्नान मे 'बेबीलोन की दासता' समाप्त हुई ही थी कि पोप के पद को एक और आघात लगा, जब दो पोपो का चुनाव हुआ। इनमे से एक पोप को फ्रास के कार्डिनलो ने चुना और दूसरे को इटली के कार्डिनलो ने। इससे पोप की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुँचा। लोगो का विश्वास और श्रद्धा चर्च जैसे पवित्र सगठन मे कम हो चली, और वे विधर्मी बनने लगे। एक आदमी दो मालिको की जी हजूरी कैसे बजा सकता है? और इस गडबडी को और भी उलझा दिया, १४०९ मे दोनो कार्डिनलो के वर्गों की सयुक्त सभा द्वारा चुने गये एक तीसरे पोप ने। इसे महान् पश्चिमी विच्छेद (१३७८-१४१५) कहा गया। तीनो पोपो की मान्यता के अनुसार सारे पश्चिमी यूरोप को विभाजित किया गया। यद्यपि इस गडबडी का अत १४१७ मे कान्स्टेन्स मे चर्च परिषद् में एक नये पोप के चुनाव से हो गया और महान् विच्छेद की दरारे कुछ भर दी गयी तथापि इससे चर्च की शक्ति और प्रतिष्ठा काफी कम हुई।

जॉन वायक्लिफ

२ धार्मिक विरोध—जिस एक और बात ने धर्मसुधार को जन्म दिया, वह थी चर्च की प्रथाओ का धार्मिक विरोध। तेरहवी सदी मे, जब दक्षिणी फ्रास के एल्ब नगर के एल्बीजेन्सो ने चर्च के सस्कारो
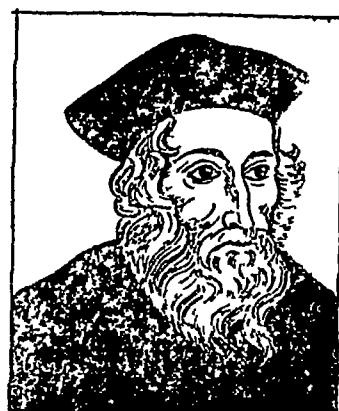
और पुरोहिताई का जबर्दस्त विरोध किया, तो धर्मयुद्ध मे इनकी सामूहिक रूप से निर्मम हत्या कर दी गई । चौदहवी सदी मे जॉन वायक्लिफ (१३२०-१३८४), जिसे 'धर्मसुधार का प्रात कालीन नक्षत्र' कहा जाता था, इग्लैंड मे पोप और चर्च के खिलाफ बगावत की । उसने घोषणा की (१) पोप पृथ्वी पर ईसा का प्रतिनिधि नही है, उल्टे वह ईसा विरोधी है । (२) पवित्र स्थानो की तीर्थयात्रा करने से आदमी को मुक्ति नही मिलती । (३) वे सस्कार प्रभावहीन रहते हैं, जिन्हे धूर्त, पापी और दुष्ट पुजारी लागू कराये । (४) प्रत्येक ईसाई को, व्यक्तिगत रूप से, अपने लिये बाइबिल को एकमात्र पथ-प्रदर्शक मानना चाहिये । (५)चर्च को शासन के अधीन रहकर अपना कार्य करना चाहिये । जॉन वायक्लिफ ने बाइबिल का अनुवाद अग्रेजी मे किया, ताकि साधारण आदमी भी उसे अपने आप समझ सके ।

इग्लैंड मे वायक्लिफ के अनुयायियो की सख्या बढती गयी । उन्हे निर्धन पुजारियो के धर्मसुधारक कहा जाता था । इन लोगो मे हर वर्ग के स्त्री-पुरुष सम्मिलित थे । वायक्लिफ को धर्म-बहिष्कृत किया गया, और १३८३ मे उसकी मृत्यु हुई । धर्म-सुधारक (Lollaid) आन्दोलन को इङ्गलैण्ड मे बढने से रोकने के लिये अग्रेज राजाओ—हेनरी-चतुर्थ और हेनरी पचम ने—जुर्मानो, कारावासो और जिंदा जलाने का सहारा लिया ।

जॉन हस—वे जॉन वायक्लिफ के निष्ठावान अनुयायियो से से एक थे, और चेकोस्लोवाकिया के बोहेमिया नामक स्थान के रहने वाले थे । अपनी रचनाओ द्वारा उन्होने बोहेमिया मे अपने-अपने स्वामी के उपदेशो का प्रचार किया । उनकी बढती लोकप्रियता और अनुयायियो की निरन्तर बढती हुई सख्या को देखकर पोप आशकित हो उठा और उसने जॉन हस को धर्म-बहिष्कृत कर दिया । हस ने पोप के उस धर्म-बहिष्कृत करने के आदेश को जला दिया । इस कार्यवाही से पोप का क्रोध बढा और उसने रोम के पवित्र सम्राट् सिगिसमुद को विधर्मी हस के खिलाफ कार्यवाही करने

जॉन हस

का आदेश दिया । सिगिसमुन्द ने हस को उसकी व्यक्तिगत सुरक्षा का आश्वासन देकर उसे स्विटजरलैंड स्थित कान्सटेन्स की धर्म-परिषद् में बुलाया । पर, उसने अपनी पवित्र प्रतिज्ञा का कर्मों से साफ उल्लंघन किया और हस को जिंदा जलवा दिया । इस घटना से सारा यूरोप स्तब्ध रह गया ।

धर्माधिकरण—विधर्मियों को जलाया जा रहा है

३ नैतिक विरोध—जिस तीसरी बात से धर्मसुधार आंदोलन को बढ़ावा मिला, वह थी चर्च में भ्रष्टाचार की बात । उन महान् और उदात्त सिद्धान्तों को, जिनके कारण भगवान् ईसा को सूली पर चढ़ने को बाध्य होना पड़ा, बिल्कुल भुला दिये गये । पोप की एकमात्र रुचि धर्म की सम्पत्ति में लगातार वृद्धि करने की थी । उन्हें धार्मिक विषयों में अधिक सांसारिक बातों में ज्यादा रुचि थी । शासक की भाँति पोप एक आदेश जारी करता था, विधर्मियों पर मुकदमे चलाने के लिये न्यायालयों की व्यवस्था करता था और वह आज्ञप्ति जारी करता था, जिसके अनुसार विधर्मियों को दण्ड दिया जाता था । याजक वर्ग के अधिकांश सदस्य ब्रह्मचर्य, निर्धनता और मानवता की सेवा के व्रतों का उल्लंघन करते रहते थे । उनमें से कुछ लम्पट और पापी भी थे । अपने अनैतिक और भ्रष्ट आचरण के कारण अनेक पोप भी बहुत बदनाम हुये । पोप लियो दसवाँ (१५१३-१५२१) ने बड़े भद्दे तरीके से चर्च के स्थानों और याजकीय वृत्तियों को नीलाम करवाया । उसने महल का फर्नीचर, पोप के आभूषण और ईसा के पट्टशिष्यों की मूर्तियों को गिरवी रखाया । वे भगवान् नहीं, धन के पुजारी बन गये । चर्च की इन भ्रष्ट और अनैतिक कार्यवाहियों के विरुद्ध काफी निन्दा वर्षा हुई ।

हालैण्ड के एक विद्वान् एरासमस ने एक पुस्तक 'In Praise of Folly' लिखी, जिसमे उसने निडर होकर चर्च की मूढताओ तथा अनैतिक और भ्रष्ट व्यवहार तथा पोप की वदनामी का पर्दाफाश किया। इस पुस्तक ने ईसाई-चर्च की जडे हिला कर रख दी और लोगो के मन को जकडे पोप के पाश को कुछ शिथिल किया। लोग पोप और चर्च के वारे मे सदेह करने लगे। वस्तुत एरासमस ने स्वय स्वीकार किया था कि उसने धर्मसुधार का अडा दिया था, पर मार्टिन लूथर ने उसे जिस ढग से सेया, उससे उस अडे मे से एक अलग नस्ल का ही पक्षी वाहर निकला।

एरासमस

४ जनता का पोप-विरोधी रुख—कई कारणो से सारे यूरोप के लोग पोप-विरोधी वनते जा रहे थे। कुछ को पोप का धर्मनिरपेक्ष मामलो मे हस्तक्षेप अच्छा नही लगता था, कुछ उससे उसके भ्रष्ट व्यवहार से घृणा करते थे, कुछ को जरा-जरा-सी वात पर उसका चदा उगाहना पसन्द नही था और कुछ सस्कारो से ऊव गये थे। वे सब किसी ऐसे नेता की प्रतीक्षा मे थे, जो चर्च और पोप के विरोध मे उनका नेतृत्व कर सके।

५ राजाओ का पोप विरोधी रुख—जनता ही नही, वल्कि कुछ लोग भी पोप विरोधी वनते जा रहे थे। अनेक यूरोपियन नरपतियो को पोप का उनके राज्यो मे हस्तक्षेप पसन्द नही था, इसलिये वे पोप की प्रभुसत्ता के विरुद्ध चल रहे किसी भी आन्दोलन का खुले रूप मे समर्थन करते थे।

६ नयी विद्या और अन्वेषण की भावना--धर्मसुधार के पनपने के सर्वाधिक शक्तिशाली कारणो मे से एक था नयी विद्या तथा अन्वेषण की भावना का आगमन। अधश्रद्धा और प्रभुसत्ता पर आधारित पोप-व्यवस्था का, जिसे धार्मिक जोश और श्रद्धा के साथ सिर पर वैठाया गया था, अन्वेषण की भावना के कारण, जो नयी विद्या के आगमन के कारण आयी, पतन आरम्भ हो गया। मामूली आदमी खुद पढने-लिखने लगा और उसे मालूम हो गया कि भगवान् तक स्वय, पुजारियो की मध्यस्थता के बिना भी पहुँच सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये निजी रूप से वाइविल एकमात्र पथ-प्रदर्शिका

बन गयी और भगवान् के साक्षात्कार के लिये पोप की आवश्यकता एक 'मिथ' (कहानी) बन गयी। इसके अलावा सच्चे और समर्पित ईसाइयो ने 'Indulgences' अर्थात् क्षमा-पत्रो की ऊँचे दामो पर बिक्री, राज्य के धर्म-निरपेक्ष मामलो मे पोप का हस्तक्षेप, याजक वर्ग मे नैतिक-सहिता के पालन की कमी, की कडी आलोचना की। तर्क युग के आगमन के साथ-साथ लोग हर बात के बारे मे शकाये उठाने लगे। धार्मिक जगत् मे इस किस्म के प्रश्न पूछे जाने लगे।

(१) पोप किस अधिकार से क्षमा-प्रमाणपत्र स्वीकृत कर सकते हैं ?
(२) इस प्रकार वे जो धन जमा करते हैं, उसे कहाँ खर्च करते हैं ?
(३) वे राज्य के धर्म-निरपेक्ष मामलो मे क्यो हस्तक्षेप करते हैं ?
(४) वे स्वय अपने याजक-वर्ग के सदस्यो से नैतिक-सहिता का पालन क्यो नही करवाते ?

इन तथा इस प्रकार के अन्य प्रश्नो ने एक धार्मिक तूफान खडा कर दिया, जिसने रोमन चर्च तथा पोप की प्रभुसत्ता की नीव ही हिला कर रख दी।

(इ) धर्म-सुधार की प्रगति

मार्टिन लूथर (१४८३-१५४६)—अब जबकि धमसुधार की सारी शक्तियाँ तैयार थी, उसे गतिवान करने के लिए एक छोटी-सी चिनगारी की ही जरूरत थी और इसे प्रज्ज्वलित करने का काम किया, विटेनवर्ग-विश्वविद्यालय के धर्म विज्ञान के जर्मन प्रोफेसर मार्टिन लूथर ने। आरम्भ मे जब उसने मठवासीय जीवन मे प्रवेश किया था, तब चर्च के प्रति उसका उत्साह आवश्यकता से अधिक था, पर रोम पहुँचने पर उन्होंने देखा कि 'पोप का इटली के राजाओ के स्तर पर पतन हो गया है' और याजक वर्ग मे भ्रष्ट और अनैतिक व्यवहार करने की प्रवृत्ति बन गयी है।

मार्टिन लूथर

जब जान टेटेल नामक एक मठवासी रोम स्थित सेट पीटर के नये चर्च के लिये 'इन्डलजेन्सेज' बेचने आया, तब यह देखकर लूथर स्तब्ध रह गये। इन्डलजेन्स पापो के मृत्यु के पश्चात् मिलने वाले दड का पूर्ण रूप से या आशिक रूप से क्षमा का वायदा करने वाला पत्र था। लूथर का सही विश्वास था कि ये क्षमा-पत्र गलत हैं। यदि किसी आदमी को अपने पापो के बारे मे पश्चाताप है और भगवान् मे उसकी आस्था दृढ है,

तो भगवान् उसे अवश्य क्षमा कर देगा। इसलिये लूथर ने कहा, 'यदि पोप पैसा लेकर आत्माओ की मुक्ति कर सकते हैं, तो वे ऐसा मुफ्त क्यो नही करते ?' उन्होंने आगे कहा, 'चूंकि पोप क्राशस के समान धनी है, तो वे गरीबो से पैसा ऐंठने के बजाय, स्वय अपने पैसे से सेंट पीटर के चर्च का निर्माण क्यो नही करते ? १५१७ मे लूथर ने अपनी असहमतियो को ९४ शोध-प्रबन्धो के रूप मे अभिव्यक्त किया, और उन्हे छपवा-

'इन्डलजेन्सेज' (क्षमा-पत्रो) की बिक्री सम्बन्धी एक उपहासपूर्ण चित्र

कर विटेनवर्ग के चर्च के दरवाजे पर कील ठोककर टाँग दिया। १५२० मे जब अशात जर्मनो मे पूरे मन से 'प्रोटेस्टेन्ट मठवासी का समर्थन किया, तो पोप लियो दसवाँ ने लूथर को धर्म-बहिष्कृत कर दिया और रोम के पवित्र सम्राट् चार्ल्स पचम से भी उसके खिलाफ कार्यवाही करने को कहा। मार्टिन लूथर ने सार्वजनिक रूप से पोप के आदेशों को जला डाला और चिल्लाकर कहा, 'क्योकि तुम भगवान् के पावन पुत्र को कष्ट दे रहे हो, इसलिये तुम निरन्तर अग्नि मे जलोगे।'

वर्म्स मे परिषद्—९५ शोध प्रबन्धो ने सारे जर्मनी मे एक हलचल मचा दी। रोम के पवित्र सम्राट् चार्ल्स पचम ने लूथर से वर्म्स स्थित जर्मन डायट (परिषद्) मे अपनी सफाई पेश करने को कहा। 'डायट' के सदस्य जर्मन राज्यो के शासक थे। डायट मे लूथर ने घोषणा की, 'जब तक मुझे अपनी गलती का अहसास धर्मग्रन्थो के साक्ष्य या प्रकट प्रमाणो द्वारा नही होगा, तब तक मैं अपना कदम पीछे नही हटाऊँगा।' यदि लूथर के मित्र, सैक्सोनी के फ्रेडरिक द एलेक्टर (राजकुमार) कुछ दिनो के लिये उसे अपने महल मे न छिपा लेते (जहाँ लूथर ने बाइबिल का अनुवाद जर्मनी मे किया) तो उसे

अवश्य जला दिया जाता । १५२१ मे सम्राट् ने लूथर को राज्यनिर्वासन का दड दिया, पर लूथर के समर्थक थे, निर्धन किसान, साधारण जन, पुण्यात्मा मठवासी, जर्मन देश-भक्त तथा जर्मनी भर मे फैले अनेक सामत तथा राजा आदि ।

किसानो का विद्रोह—लूथर ने इस सिद्धान्त का उपदेश दिया कि भगवान् के सामने सब आदमी बराबर हैं । इसी कारण १५२५ मे दक्षिणी जर्मनी के कृषक अपने स्वामियो के विरोध मे उठ खड़े हुये । उनकी माँग थी कि कृषक दासता को तत्काल समाप्त कर उन्हे वेतन मिलना आरम्भ हो । पर लूथर ने अपनी पुस्तिका मे इन विरोधियों की निन्दा की और सब राजाओ से अनुरोध किया कि वे इन विरोधियो को गुप्त रूप से या सार्वजनिक रूप से मारे, गला घोंटे, धक्का दे, या छुरा भोक दे । सामन्तो ने इस विरोध का दमन करने के उद्देश्य से ५०,००० के करीब किसानो की बडी बेरहमी से हत्या कर डाली ।

आग्सवर्ग की धार्मिक शाति—जर्मनी मे प्रोटेस्टेन्टो और कैथोलिको के दीर्घकाल तक चलने वाले गृहयुद्ध के पश्चात्, १५५५ म जर्मन डायट (परिषद्) की सभा हुई । इस सभा मे आग्सबर्ग की धार्मिक शाति की घोषणा की गई । इस घोषणा के अनुसार, पवित्र रोमन सम्राट् ने लूथर मत को ईसाई धर्म के एक कानूनी रूप की हैसियत से स्वीकार किया । इस सधि मे यह भी व्यवस्था थी कि जर्मनी के प्रत्येक राज्य के शासक को ईसाई धर्म का कैथोलिक मत या लूथर मत स्वीकार करने की स्वतन्त्रता थी, और उसके द्वारा चुना हुआ मत उसकी प्रजा पर लागू होगा । इस प्रकार जर्मनी मे प्रोटेस्टेट धर्म का जन्म हुआ । उत्तरी जर्मनी के राज्यो ने प्रोटेस्टेन्ट-धर्म या लूथर-मत को स्वीकार किया और दक्षिणी जर्मनी के राज्यो ने कैथोलिक मत को ।

प्रोटेस्टेन्टो के विरोध का प्रसार—प्रोटेस्टेन्टो का विरोध शीघ्र ही यूरोप के अन्य भागो, विशेष रूप मे स्विटजरलैंड, फ्रास, हालैंड और इग्लैंड मे फैल गया, जहाँ उसके नेताओ ने उसमें कुछ ऐसी मान्यताओ और विश्वासो का समावेश किया, जो मार्टिन लूथर की मान्यताओ और विश्वासो मे भिन्न थे ।

उलरिश ज्वींगली (१४८४-१५३१)—स्विटजरलैंड मे रोमन चर्च और उसके पोप की प्रभुसत्ता के विरोध मे नेतृत्व का भार सँभाला ज्वींगली ने, जो दुर्भाग्यवश, १५३१ मे, गृह-युद्ध मे लडते हुये काम आये । लेकिन जॉन काल्विन के नेतृत्व मे प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन चलता रहा ।

उलरिश ज्वींगली

जॉन काल्विन (१५०९-१५६४)—काल्विन फ्रासीसी था । चूँकि फ्रास मे उसने कैथलिक चर्च के प्रति शकाएँ व्यक्त की, इसलिये उसे वहाँ विधर्मी घोषित किया गया । अपनी जान बचाने के लिये

वह फ्रास से भागकर स्विटजरलैंड आया, जहाँ उसने ज्वीगली के कार्य को जारी रखा। अपनी विख्यात कृति मे उसने ईसाई धर्म की अत्यन्त निराशाजनक और अधकारपूर्ण तस्वीर पेश की है। उसने बडे पैमाने पर होने वाली ऐयाशी, नृत्यो और भोजो पर रोक लगा दी। चर्च को बेहद सादा होना चाहिए। फिर भी, प्रोटेस्टेन्ट धर्म के जिस रूप को काल्विन मत के नाम से जाना गया, वह शीघ्र ही स्विटजरलैंड से फ्रास, हालैंड, जर्मनी, हगरी, पोलैंड, स्काटलैंड और इग्लैंड मे फैल गया। फ्रास मे काल्विन के अनुयायियो को ह्यूगोनाट्स (Huguenots) कहा गया। स्काटलैंड मे काल्विन मत के नेता थे जॉन नाक्स (१५०५-१५७२) जो काल्विन के एक परम भक्त और समर्पित अनुयायी थे। स्काटलैंड मे प्रोटेस्टेन्टो को प्रेस्बायटोरियन्स (Presbyterians कहा गया और इग्लैंड मे विशुद्धिवादी प्यूरिटन (Puritan) काल्विन मत के अनुयायी बने।

जॉन काल्विन

हेनरी आठवाँ इग्लैंड मे—इग्लैंड मे, प्रोटेस्टेन्टो के विद्रोह के बीज बहुत पहले ही जॉन वायक्लिफ ने बो दिये थे। पर धर्मसुधार की प्रगति को सही दिशा किसी धार्मिक नेता ने नही, हेनरी आठवे ने प्रदान की जो अपनी पहली पत्नी कैथरीन को तलाक देकर एन बोलिन से विवाह करना चाहता था। पर पोप ने इसकी स्वीकृति नही दी थी। पर उत्तराधिकारी के रूप मे लडका पाने की आशा मे यह तलाक देकर एन बोलिन से विवाह करने के लिये दृढ सकल्प था। इन्ही उद्देश्यो को पूरा करने की गर्ज से उसने धर्मसुधार ससद बुलवायी जिसने इग्लैंड से चर्च का सम्बन्ध पोप से बिल्कुल तोड दिया और सर्वोच्चता के कानून के अन्तर्गत घोषणा की कि इग्लैंड का राजा 'इग्लैंड के चर्च का सर्वोच्च अधिपति होगा।' चर्च सेवा पहले की भाँति चलती रही। इस प्रकार आरम्भ मे धर्मसुधार का स्वरूप पूर्णतया राजनैतिक था। इग्लैंड के प्रोटेस्टेन्ट-मत को आग्लीयता कहा जाने लगा। पर एडवर्ड षष्ठ से राज्यकाल (१५४९-१५५३) म इग्लैंड का चर्च पूर्णतया प्रोटेस्टेन्ट हो गया था, पर मेरी (१५५३-१५५८)

हेनरी आठवाँ

के राज्यकाल मे कैथोलिक हो गया। पर महारानी एलिजाबेथ (१५५८-१६०३) ने आग्लीय चर्च को कायम रखा। इस प्रक्रिया मे एडवर्ड पचम और मेरी के राज्यकालो में कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट दोनो मतो की हत्या हुई। इस प्रकार प्रोटेस्टेन्ट मत के विभिन्न रूप थे—लूथर-मत, काल्विनवाद और आग्लीयता।

(ई) धर्मसुधार के परिणाम

धर्मसुधार के कारण दूरगामी महत्व के परिणाम सामने आये।

१ **कैथोलिक धर्मसुधार-प्रतिकार**—धर्मसुधार के अत्यत महत्वपूर्ण परिणामो मे से एक था कैथोलिक धर्मसुधार-प्रतिकार। अपने को नष्ट होने से बचाने के लिए रोमन कैथोलिक चर्च ने उन बुराइयो को दूर करने के अनेक प्रयास किये, जो उसमे घर कर गयी थी। इसे प्राय: धर्मसुधार-प्रतिकार कहा जाता है।

ट्रेन्ट की परिषद् (१५४५-१५६३)—ऐसे ईमानदार निष्ठावान और समर्पित कैथोलिक भी थे, जो चर्च मे ऐसे आवश्यक सुधार कराने के इच्छुक थे, जिससे उसे उसकी खोयी हुई प्रतिष्ठा पुन: वापस मिल सके। इनमे पाल तृतीय, पाल चतुर्थ और प्लम पचम और सिक्सटस पचम जैसे पोप भी शामिल थे। इस उद्देश्य से उत्तरी इटली के ट्रेन्ट नामक स्थान मे पोप पाल तृतीय ने एक चर्च परिषद् बुलायी। १५४५ से १५६३ तक इस परिषद् की सभाएँ, बाधाओ के साथ, होती रही। इस परिषद् ने कैथोलिक धर्मविज्ञान की मुख्य बातो पर पुन जोर दिया। उसने घोषणा की—(१) पोप चर्च का प्रमुख है और सब धर्मसिद्धातो का अतिम व्याख्याता है। (२) अकेले चर्च को सब धार्मिक ग्रथो की व्याख्या करने का अधिकार है। (३) सब कैथोलिको के लिए बाइबिल का वल्गेट सस्करण नया अधिकृत सस्करण बना। (४) चर्च के कार्यालयो की बिक्री की निंदा की गयी। (५) याजक वर्ग को बाकायदा विद्यालयो मे प्रशिक्षण प्रदान किया जाये। (६) यथासभव धर्मोपदेश लोगो की अपनी भाषा मे ही दिये जाये। (७) विधर्मियो की पुस्तको की एक सूची तैयार की गयी और कैथोलिको को उसे न पढने को कहा गया। (८) अत मे, धर्माधिकरणो, चर्चों के न्यायालयो को पुनर्जीवित किया गया।

(उ) सोसायटी आफ जीसस

कैथोलिक-मत को पुन व्यवस्थित करने के उद्देश्य से अनेक सघ आरभ किये गये। इनमे सबसे अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण था—सोसायटी आफ जीसस, जिसकी स्थापना इग्नेशियस लोयोला (१४९३-१५५६) ने की थी। लोयोला स्पेन का एक सैनिक था, पर ईसामसीह की जीवनी तथा अनेक सतो की जीवनी अस्पताल मे पढने के बाद, ईसामसीह और चर्च का एक 'नाइट' (सामत) बन गया था। इस सोसायटी के सदस्य जीसियस्ट कहलाते थे।

१ **सोसायटी के कार्यकलाप**—जीमियस्टो ने सारे यूरोप मे अनेक विद्यालयो और महाविद्यालयो की स्थापना कर कैथोलिक याजक वर्ग की खोयी हुई प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित किया। उनकी सच्चाई, सादे जीवन और धर्मोपदेशो की स्पष्टता ने पोलैंड, बावेरिया, बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया और हगरी के अनेक प्रोटेस्टेन्टो तक को अत्यन्त प्रभावित किया और वे पुन कैथोलिक मत मे वापस लौट आये। इसके अलावा, जीसियस्ट मिशनरी भारत, चीन, जापान तथा एशिया के अन्य भागो के अलावा अमरीका भी गये, जहाँ उन्होंने अनेक शैक्षणिक सस्थाएँ स्थापित की और स्थानीय लोगो को कैथोलिक ईसाई बनाया।

२ **क्रूरता और उत्पीडन**—इस धार्मिक उथल-पुथल के दौरान हजारा प्रोटेस्टेन्टो को वडी वेरहमी के साथ सताया गया, उत्पीडित किया गया और खूटे से बाँधकर जिंदा जलाया गया। ऐसा कैथोलिक धर्माधिकरण के आदेश पर हुआ। इग्लैंड मे महारानी मेरी अग्रेज प्रोटेस्टेन्टो की निर्मम हत्या करने के बाद, 'ब्लडी मेरी' के नाम से कुख्यात हुई। पर, रोमन कैथलिको को भी वडी बेरहमी से यातना पहुँचायी गयी। पहले एडवर्ड षष्ठ के राज्यकाल मे और फिर महारानी एलिजाबेथ प्रथम के राज्यकाल मे।

३ **गृहयुद्ध और विद्रोह**—यूरोप के अनेक भागो, विशेष रूप से स्विटजरलैंड, जर्मनी और फ्रास मे, धर्मसुधार-आन्दोलन के साथ-साथ गृह-युद्ध और विद्रोह भी आरम्भ हुए, जिनके कारण सारी प्रगति प्राय रुक सी गयी और जान-माल की काफी हानि हुई।

४ **राष्ट्रो के बीच धार्मिक युद्ध**—धर्मसुधार आन्दोलन के कारण लोगो मे तो क्रूरता, उत्पीडन और गृहयुद्ध हुए ही, यूरोप के राष्ट्रो के बीच भी अनेक धार्मिक युद्ध हुए।

१५८८ मे स्पेन के राजा फिलिप द्वितीय ने युद्धपोतो का एक विशाल बेडा (जलसेना) प्रोटेस्टेन्टो की सेना को नष्ट करने के उद्देश्य से इग्लंड भेजा पर, इग्लैंड की नौसेना ने उसे नष्ट कर दिया। फिर फिलिप द्वितीय ने हालैंड के निर्दोष लोगो पर लडाई थोप कर उन्हे प्रोटेस्टेन्ट बना लिया, पर १६४८ की वेस्टफालिया की सधि के अन्तर्गत हालैंड को एक स्वतन्त्र राज्य के रूप मे मान्यता मिली। अन्त मे जर्मनी मे धार्मिक युद्ध छिड गये। जर्मनी मे अधिकाश एलैक्टर्स (शासक) कैथोलिक थे, पर कुछ लूथर-मत और काल्विन-मत के भी थे। प्रोटेस्टेन्ट प्रजा को सताते थे। अत मे जर्मनी मे पवित्र रोमन सम्राट् और प्रोटेस्टेन्ट राजाओं के बीच युद्ध छिड गया, जिसका अन्त १५५५ की आग्सबर्ग की धार्मिक शाति के रूप मे हुआ। एक बार फिर १६१८ मे जर्मनी मे कैथलिको और प्रोटेस्टेन्टो के बीच लडाई छिड गयी, जो तीस वर्षों तक, अर्थात् १६४८ तक चली। इसलिए, इसे तीस वर्षों के युद्ध के नाम से जाना जाता है। यह एक राजनैतिक और आर्थिक युद्ध तो था ही, पर उसे विशेष रूप से धार्मिक युद्ध

कहना ज्यादा अच्छा होगा। यह जंगली आग की भांति फैलकर अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध के रूप मे परिवर्तित हो गया। इस युद्ध की समाप्ति १६४८ मे वेस्टफालिया की शाति के रूप मे हुआ, जिसके अन्तर्गत काल्विनवाद को प्रोटेस्टेन्ट धर्म के एक और रूप की हैसियत से मान्यता मिली।

५ पोपवाद कमजोर हुआ और निरकुश शासनवाद शक्तिशाली बना—धर्म-सुधार-आन्दोलन के कारण एक ओर पोपवाद समाप्तप्राय हो गया, और दूसरी ओर इसके कारण राष्ट्रीयता और निरकुश शासनवाद की शक्तियाँ मजबूत बनी।

जर्मनी मे आग्सवर्ग की शाति और इग्लैड मे सर्वोच्चता के कानून ने जर्मनी और इग्लैड के राष्ट्रीय चर्चो की स्थापना मे योगदान दिया। यद्यपि इन घटनाओ का स्वरूप धार्मिक था, तथापि उनसे राष्ट्रीयता की भावना प्रतिबिम्बित होती थी। इस प्रकार धर्मसुधार-आन्दोलन ने आधुनिक राष्ट्रीय राज्य के विकास मे सहायता पहुँचायी। प्रो० जे० एन० फिगिस के अनुसार,'धर्मसुधार-आन्दोलन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि आधुनिक राष्ट्र है।'

६ दर्शन का विकास—धर्मसुधार-आन्दोलन ने आदमी की बुद्धि को चर्च के आधिपत्य से मुक्त किया। इस प्रकार उसने व्यक्तिवाद का इस सीमा तक विकास किया कि पोप की सत्ता को चुनौती देने के बाद, बुद्धिवादी, बाद मे बाइबिल, ईसामसीह और यहाँ तक कि भगवान के अस्तित्व के बारे मे भी शकालु हो उठे। इस प्रकार अनेक 'वादो' जैसे, समाजवाद, साम्यवाद, नाजीवाद, फासिस्टवाद, अराजकतावाद, श्रमिक-सघवाद आदि का जन्म हुआ। यदि ईसाइयो ने सारे यूरोप मे पोप की सत्ता को स्वीकार कर लिया होता, तो इन सब वादो का उदय असभव था।

प्रश्नावली

१ विस्तार से उन कारणो की चर्चा कीजिए, जिन्होंने धर्मसुधार आन्दोलन को जन्म दिया।

२ धर्मसुधार-आन्दोलन मे मार्टिन लूथर के रोल का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

३ धर्मसुधार-आन्दोलन मे जिवगली, काल्विन, नाक्स और हेनरी सप्तम की भूमिकाओं की चर्चा कीजिए।

४ धर्मसुधार-आन्दोलन के परिणाम क्या हुए ?

५ निम्नलिखित के बारे मे सक्षेप मे नोट लिखिए —

(अ) मार्टिन लूथर, (आ) जान काल्विन,
(इ) हेनरी सप्तम और धर्मसुधार, (ई) ट्रेन्स की परिषद् और
(उ) सोसायटी आफ जीसस।

पच्चीसवाँ अध्याय

मानव-दर्शन तथा विचारधारा पर वैज्ञानिक मनोवृत्ति का महत्व

(अ) मानव-मन चर्च का दास

मध्य युग मे मानव-मन पोप के अधिकार से बँधा तथा उसके वशीभूत था। चर्च की प्रतिष्ठित सत्ता का विरोध करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की 'धर्मद्रोही' कहकर निंदा की जाती थी। चर्च के उपदेशो का विरोध करने वाले विचार या मत को धर्मद्रोह कहकर उसका तिरस्कार किया जाता था। अवधिकार मतावलम्बियो का दमन किया जाता था, और धर्मद्रोहियो को धर्माधिकरण—धर्मद्रोहियो की न्यायिक जाँच के लिए स्थापित चर्च की अदालत—के आदेश से जिंदा जला दिया जाता था। जैसा कि पिछले अध्याय मे बताया जा चुका है, चर्च का प्रभाव ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, पेरिस और नेपल्स विश्वविद्यालयो सहित सब शैक्षिक-सस्थाओ समेत सब मानवीय कार्यकलापो पर था।

प्रोटेस्टेन्ट क्राति—प्रोटेस्टेन्ट क्राति ने पोप की सत्ता की धज्जियाँ उडाकर रख दी। उसने परख की भावना तथा वैज्ञानिक मन स्थिति लोगो के मन मे बैठाकर उसे प्रोत्साहित किया। इस क्राति के पीछे जो लोग थे, वे प्रत्येक प्रतिष्ठित और सुस्थापित धारणा पर प्रश्न चिह्न लगाने लगे, और केवल उसी विचार या मत को सच्चा मानते थे, जो तर्क और विवेक की कसौटी पर खरा उतर सके।

(आ) वैज्ञानिक क्राति पर दार्शनिक सघात

मध्यकाल की अतिम अवस्था मे और नवजागरण काल मे जो अनेक वैज्ञानिक आविष्कार हुए, उनका लोगो के मन पर क्या सघात हुआ, यह बताना कठिन है। मात्र एक प्रसारण मे, वैज्ञानिक धारणा ने इस अधविश्वास को दूर कर दिया कि अलौकिक शक्तियाँ प्राकृतिक घटनाओ के लिए जिम्मेवार हैं। "भगवान् को (वैज्ञानिको के अनुसार) ब्रह्माड के बाहर कर दिया गया। ब्रह्माड के अदर सब अद्भुत घटनाओ का कारण साधारण यान्त्रिक, गणितीय शक्तियो मे खोजा और बताया जाने लगा।" वैज्ञानिको का तर्क था कि पार्थिव जगत् मे "कोई प्रयोजन" नही है। उनका यह भी कहना था कि ब्रह्माड मे विश्वो का अत नही है। उन सब की मूलभूत वास्तविकता है, "आकाश, गति और ऊर्जा।" ब्रह्माड यूँ तो सीमारहित है, पर सर्वत्र अटल, यान्त्रिक नियमो द्वारा शासित है। "नियम की राह गणित मे से होकर गुजरती है, तथा गणित की राह प्रयोगो मे से होकर गुजरती है।"

प्रयोग—अपनी अपरिष्कृत प्रयोगशालाओ मे यूरोप मे सर्वत्र लोग प्राकृतिक अद्‌भुत घटनाओ का गहराई से परीक्षण करने लगे । उदाहरणार्थ, तोरिसेली ने वायु-मडल का अध्ययन किया, पासकल ने द्रवो पर परीक्षण किया, बोयल ने गैसो का, न्यूकॉमेन ने माप-शक्ति का, न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का, हुईजन्स ने प्रकाश-विज्ञान का, रोयमर ने प्रकाश गति का । "मापन-यत्रो तथा प्रयोगशाला मे प्रयुक्त होने वाले उपकरणो की सहायता से एक विद्वान् ने लिखा, पेंडुलम-घडी, वायु-पप, बैरोमीटर, तापमापक-यत्र, दूरदर्शक तथा सूक्ष्मदर्शी आदि का जन्म हुआ ।" इस प्रकार जैसे-जैसे वैज्ञानिक प्रयोगो मे राष्ट्रीय रुचि का विकास हुआ, वैसे-वैसे सभी प्रमुख यूरोपीय देशो मे वैज्ञानिक अकादमियो की स्थापना होने लगी ।

मानव-मन का उन्नयन—नव जागरण तथा सुधारान्दोलन ने मानव-मन को चर्च के चगुल से मुक्त किया । मध्ययुग के अतिम काल तथा आधुनिक काल के वैज्ञानिक चिंतको, जैसे रोजर बेकन और न्यूटन ने प्रयोगशालाओ मे वैज्ञानिक प्रयोगो और हर बात को तर्क की कसौटी पर परखने पर जोर दिया । मानव-तर्कशक्ति को ब्रह्माड के नियमो को खोज निकालने तथा यहाँ तक कि उनका सृजन करने की योग्यता एक नया रहस्योद्‌घाटन था । न्यूटन ने विश्लेषण तथा सश्लेषण पर अत्यधिक जोर दिया । चिंतको ने इस 'प्रदेशन' का निष्ठापूर्वक पालन किया, और अठारहवी सदी के आरम्भ तक 'तर्क तथा अभिबोध के युग' का उद्‌घाटन हो चुका था । यह वह काल था, जब सब प्रचलित सस्थाओ की गहरी, गहन और प्रगाढ आलोचना की जाती थी और तर्कसगत नियमो पर आधारित तथा उनके द्वारा सचालित 'नयी पद्धतियो का प्रक्षेपण' किया जाता था ।

धर्म तथा दर्शन—मानव-मन तथा दर्शन पर वैज्ञानिक-मनोवृत्ति के सघात के कारण व्यक्तिवाद का इतना अधिक विकास हुआ कि जैसा कि पीछे बताया जा चुका है, पोप की सत्ता पर प्रश्नचिह्न लगाने के बाद, बुद्धिजीवी बाइबिल के प्रभुत्व के प्रति भी शका व्यक्त करने लगे । बाद मे उन्होंने ईसा तथा भगवान् के अस्तित्व के बारे मे भी अपनी शकाएँ व्यक्त की । इस प्रकार, कालातर मे, समाजवाद, साम्यवाद, नाजीवाद, अधिनायकवाद, अराजकतावाद तथा सघवाद आदि अनेक 'वादो' का जन्म हुआ । यदि सारे यूरोप के ईसाई पोप की प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लेते, तो इन सब 'वादो' की अकाल-मृत्यु निश्चित थी ।

जे० सी० एस्ट्रिन के अनुसार 'धर्म मे धर्मविज्ञान-सबधी वाद-विवाद जो तत्वपरिवर्तन, द्वितत्ववाद, त्रितत्ववाद अत्यधिक चकरा देनेवाला था, धार्मिक युद्ध रक्त-रजित तथा अस्तव्यस्त था । धार्मिक सत्तावाद बुद्धिवाद के अनुरूप था । इसलिए, धार्मिक विश्वास के सरलीकरण, अलौकिकवाद के तत्व को यथासभव कम करने तथा

भगवान् को ब्रह्माड मे ऐसा स्थान देने, जहाँ से वह ब्रह्माड के यांत्रिक प्रचालन में विघ्न न डाल सके, के प्रयास किये गये । कहा गया कि भगवान् और मानव के आपसी संबंध तर्क पर आधारित होने चाहिए । इसलिए, 'एक व्यक्तिवाद, ईसा की मानवता तथा मानव और भगवान् के बीच की मध्यस्थता, मानव की आवश्यक अच्छाई और सम्पूर्णता तथा इस प्रकार की बातों पर अत्यधिक जोर दिया जाने लगा । धार्मिक बुद्धिवादी ब्रह्माड के भगवान् द्वारा सृजन को यह इस प्रकार समझाने लगे जैसे घड़ी-निर्माता द्वारा घड़ी के निर्माण को समझाया जाता है । ब्रह्माड का निर्माण एक घड़ी के समान करके तथा उसमे चाबी लगाकर, ब्रह्माड ने पलायन कर गये हैं । और अब ब्रह्माड यांत्रिक ढग से, एक घड़ी के समान चल रहा है, उन शाश्वत, अपरिवर्तनीय तथा अटल नियमो के अनुसार, निरपेक्ष स्थान तथा निरपेक्ष काल के दायरे मे परिचालित होते है ।

चूँकि ये नियम यांत्रिक है, इसलिए उन्हें मानव-मन द्वारा खोजा जा सकता है, उस मानव-मन, जिसका सृजन भगवान् ने उसी विधि से किया है, जिस विधि से उसने ब्रह्माड का सृजन किया था । मानव-मन ब्रह्माड तथा उसके नियमो का आविष्कार करने मे समर्थ है । इसलिए, मानव-जाति का समुचित अध्ययन स्वय मानव के अध्ययन से आरम्भ करने की बात महत्वपूर्ण मानी जाने लगी ।

पर्यावरण—अठारहवीं शताब्दी की दुनिया में वैज्ञानिक मनोवृत्ति का बोलबाला था । इसी नयी हलचल ने समाज-विज्ञानो को जन्म दिया । लाक, ह्यूम, हार्टल, काडिलक, हेल्वेटियस और बेथम उन कुछ मनीषियो मे से थे, जिन्होंने मानव-मन का निकट से अध्ययन किया, तथा मानव के लिए विज्ञान-मनोविज्ञान—का विकास किया । पर, मनोविज्ञान के ये अनेक शास्त्र एकाधिक प्रकार से एक दूसरे से भिन्न थे । इनमे से अधिकाश का विचार था कि मानव प्रकृति का एक सृजन-मात्र है, और मन इस सृजन का एक अश ही है । अन्य प्राकृतिक विलक्षणताओ की भाँति, मन भी शाश्वत नियमो द्वारा परिचालित होता है । इन नियमो के अनुसार, जन्म के समय, सब मन 'ताबूल रास' (कोरा फलक) होते हैं, जिन पर वे सब विभिन्न प्रकार के अनुभव अंकित होते हैं, जो वे भुगत चुके होते हैं । इनकी अनुभूति मानव-को अपनी ज्ञानेन्द्रियो के माध्यम से हुई । बाद मे मानव मन ने इन अनुभवो का सयोजन-नियमो के अनुसार वर्गीकरण कर दिया । इसीलिए, इस प्रकार का मनोविज्ञान पर्यावरण को, अत्यधिक महत्व देता है, उस पर्यावरण का, जिसका मानव पर बहुत अधिक प्रभाव है । इससे यह सिद्ध हुआ कि मानवीय क्षेत्र से बाहर की प्रथाएँ अनिन्द्य हैं और मानव को स्वय ही अपने को अनिन्द्य बनाना है । सच तो यह है कि समाज, अर्थात् पर्यावरण ने समय के बीतने के साथ अज्ञान से विज्ञान तक आकर, अपने को अनिन्द्य बना लिया और भविष्य मे भी ऐसा करता रहेगा ।

परिशिष्ट

समय-सूचक तालिका

वर्ष	महत्वपूर्ण घटनायें
	अध्याय १
१८५७	जर्मनी मे निन्डरथल स्थान मे मनुष्य के अवशेष पाये गये (निन्डरथल मानव)
१८६८	दक्षिणी फ्रास की एक ग्रोटो मे मानव अवशेष पाए गये (क्रो-मैग्नान मानव)
१८९१	डच सेना के एक सर्जन ने जावा मे एक खोपडी, दो दाँत, जाँघ की हड्डी पायी (जावा का नर बन्दर)
१९०७	हैडलवर्ग मे एक खोपडी और जवडो की हड्डी पायी गई (हैंडलवर्ग मानव)
१९११	डारसर तथा वुडवर्ड ने पिल्टडन, ससेक्स इग्लैंड मे मनुष्य के कुछ अवशेष पाये (पिल्टडन मानव)
१९२९	एक युवा चीनी डब्ल्यू० सी० पाई ने पीकिंग के चाऊ-कू-तेन मे एक खोपडी पायी (पीकिंग मानव)
	अध्याय २
१५०१ ई०पू०-१४७९ ई०पू०	महारानी हात्सपेट का मिस्र पर शासन
१४७९ ई०पू०-१४४७ ई०पू०	थटमोस तृतीय का मिस्र पर शासन
१७९८	नेपोलियन के सैनिको द्वारा मिस्र मे रोसेटा पत्थर की खोज
	अध्याय ३
३५०० ई०पू०-२५०० ई०पू०	मेसोपोटामिया सुमेरियनो के शासन मे रहा
२५०० ई०पू०-२३७० ई०पू०	मेसोपोटामिया अक्कादियो के शासन मे रहा
२३७० ई०पू०-२०८१ ई०पू०	मेसोपोटामिया एमोरियाइयो के शासन मे रहा
२१२३ ई०पू०-२०८१ ई०पू०	वेबिलोनिया पर हम्मूराबी का शासन
१२०० ई०पू०-६२६ ई०पू०	मेसोपोटामिया असीरियाइयो के शासन मे रहा
६६० ई०पू०-६२६ ई०पू०	असीरिया पर असुरबनिपाल का शासन
६०४ ई०पू०-५०० ई०पू०	मेसोपोटामिया पर चाल्डियाइयो का शासन
	अध्याय ४
५५२ ई०पू०-५२८ ई०पू०	आसम पर साइरस का शासन

वर्ष	महत्वपूर्ण घटनायें
५४९ ई०पू०	साइरस ने राजा मेडस को हराया और मेडेरा पर सर्वोच्च प्रभुता स्थापित की
५४६ ई०पू०	साइरस ने लीडिया के शासक क्रोसस को बन्दी बनाया
५४३ ई०पू०	साइरस ने इओनिया (ग्रीक) पर आक्रमण किया और नगरो को अपने राज्य मे मिला लिया
५२८ ई०पू०	साइरस की मृत्यु
५२८ ई०पू०-५२१ ई०पू०	फारस पर कैम्बिसस का शासन
५२५ ई०पू०	कैम्बिसस की मिस्र पर विजय
५२२ ई०पू०	कैम्बिसस ने आत्महत्या कर ली
५२२ ई०पू०-४८५ ई०पू०	फारस साम्राज्य पर दारियुस का शासन
५२२ ई०पू०	वर्डिया मे दारियुस की हत्या

अध्याय ५

५९४ ई०पू०	सोलोन ने ऋण से सम्बन्धित एक कानून बनाया
५९४ ई०पू०	सोलोन मुख्य न्यायाधीश चुना गया
४५९ ई०पू०-४२९ ई०पू०	पेरीक्लीस का जीवन काल
४२९ ई०पू०	पेरीक्लीस की मृत्यु
४७० ई०पू०-३९९ ई०पू०	सुकरात का जीवन-काल
४२७ ई०पू०-३४७ ई०पू०	प्लेटो का जीवन-काल
३८४ ई०पू०-३२२ ई०पू०	अरस्तू का जीवन-काल
३५० ई०पू०-२६० ई०पू०	जेनो का जीवन-काल
३४२ ई०पू०-२७० ई०पू०	इपीक्यूरस का जीवन-काल

अध्याय ६

१८०० ई०पू०	लातीनियो का लेटियम मे बसना
१००० ई०पू०	इट्रूसियन इट्रूरिया मे बस गये
१५०० ई०पू०	यूनानी इटली के दक्षिणी और पूर्वी भागो मे बस गये
७५३ ई०पू०	रोमूलस द्वारा रोम की स्थापना
५०९ ई०पू०	जनसाधारण को मृत्युदण्ड के मामले मे शतकीय मडल के सामने अपील करने का अधिकार मिला
४९४ ई०पू०	जनसाधारण को दो अधिकारी समितियो के चुनाव का अधिकार मिला

वर्ष	महत्वपूर्ण घटनायें
४७१ ई०पू०	जनसाधारण की सभा कमिशिया ट्रिब्यूटा की स्थापना
३६७ ई०पू०	एक सामान्य व्यक्ति को एक वर्ष की अवधि के लिए एक सलाहकार नियुक्त करना जरूरी हो गया
३५६ ई०पू०	जनसाधारण को अधिनायक पद के लिये चुनाव लड़ने का अधिकार मिला
३५१ ई०पू०	जनसाधारण को प्रतिबन्धक पद के लिए अधिकार मिला
४५० ई०पू०	जनसाधारण को बारह तालिकाओ का स्वत्व प्राप्त हुआ
४५५ ई०पू०	सामतो और जनसाधारण के बीच वैवाहिक सबधो को मान्यता मिली
२८७ ई०पू०	कमिशिया ट्रिब्यूटा द्वारा पास किये गये कानूनो को समस्त जाति के लिए मान्य करार दिया गया
६० ई०पू०	प्रथम त्रिमूर्ति की स्थापना
४४ ई०पू०	जूलियस सीजर की मृत्यु
४३ ई०पू०	द्वितीय त्रिमूर्ति की स्थापना एव आक्टेवियन का सलाहकार के रूप मे चुनाव
३१ ई०पू०-१४ ई०पू०	आगस्टस का गौरवपूर्ण समय
२७ ई०पू०	उच्च सभा ने आगस्टस को पूरी शक्तियाँ दे दी
१७६ ई०पू०	एक विशिष्ट कानून (प्रोटोरीय कानून) विकसित हो चुका था
४ ई०पू०-६५ ई०पू०	सेनिया का समय
	अध्याय ७
२२१ ई०पू०	वस्तु-विनिमय-प्रणाली पर रोक और एक गोल सिक्के का चलन
२१२ ई०पू०	चि-इन-शिह-ह्याग-ति की मृत्यु
२०६ ई०पू०	का ओ-तसू का चीन पर आधिपत्य
२३ ई०	वान माग द्वारा भूमि का पुर्नवितरण
२२० ई०	चीन मे टार्टस का आगमन
६१८ ई०	ता-आग वश की नीव पडी
६०४ ई०पू०	लियोट्जे का जन्म
५५१ ई०पू०	कनफ्यूसिअस का जन्म
३७२ ई०पू०	मेन्शियस का जन्म

वर्ष	महत्वपूर्ण घटनाएँ
	अध्याय ८
२००० ई०पू०-३२२ ई०पू०	वैदिक काल
३२२ ई०पू०-१८४ ई०पू०	मौर्य काल
१८४ ई०पू०-७२ ई०पू०	शुंग वंश
७२ ई०पू०-२८ ई०पू०	कण्व वंश
२३३ ई०पू०-३०० ई०	सातवाहन वंश
३०० ई०-६०० ई०	गुप्त काल का स्वर्ण युग
४७६ ई०	आर्यभट्ट का जन्म
५८ ई०	विक्रम संवत् का प्रारम्भ
७८ ई०	शक संवत् का प्रारम्भ
२४८ ई०	कल्चुरि संवत् का प्रारम्भ
३२० ई०	गुप्त संवत् का प्रारम्भ
६०६ ई०	हर्ष संवत् का प्रारम्भ
	अध्याय १०
५६७ ई० पू०	गौतम बुद्ध का जन्म
४८७ ई० पू०	गौतम बुद्ध की मृत्यु
	अध्याय १२
५५१ ई० पू०-४७९ ई० पू०	कन्फ्यूसियस का जीवन-काल
	अध्याय १३
५७० ई० पू०-६०० ई० पू०	जरतुस्त का जन्म
	अध्याय १४
७६० ई० पू०	प्रथम पैगम्बर अमोस का जुडा मे अवतरण
७२४ ई० पू०-६८० ई० पू०	इसाइह का जीवन-काल
६२५ ई० पू०-५८६ ई० पू०	जर्मिहा का जीवन-काल
	अध्याय १५
४ ई० पू०	ईसा का जन्म
२९ ई०	ईसा को सूली दी गई
३०६ ई०-३३७ ई०	प्रथम ईसाई सम्राट्, कान्स्टेन्टाइन महान् का समय

वर्ष	महत्वपूर्ण घटनाएँ
	अध्याय १६
५७० ई०	मोहम्मद का जन्म
६२२ ई०	हिजरी संवत् का प्रारम्भ
६३२ ई०	मोहम्मद की मृत्यु
	अध्याय १८
७५१-७६८ ई०	फ्रास पर पेपिन का शासन
७६८-८१४ ई०	फ्रास पर चार्ल्स महान् का शासन
८०० ई०	पोप लियो तृतीय ने चार्ल्स सेंट पीटर्स को रोम के सम्राट् का मुकुट पहनाया
९६२ ई०	जर्मनी के महान् राजा ओटो को पोप जॉन बारहवे ने पवित्र रोम का सम्राट् बनाया।
१०७३ ई०	हिल्डब्रेड ग्रेगरी सप्तम बना
१०८० ई०	पोप ग्रेगरी सप्तम ने हेनरी चतुर्थ का विरोध कर, रुडोल्फ को मान्यता दी
१०८५ ई०	पोप ग्रेगरी सप्तम की मृत्यु
११०६ ई०	पवित्र रोमन सम्राट् हेनरी चतुर्थ की मृत्यु
११२२ ई०	हेनरी पचम और पोप पाशल द्वितीय के बीच समझौता पर हस्ताक्षर
११५८ ई०	फ्रेडरिक बारबरोसा द्वारा इटली पर आक्रमण
११७४-११७६ ई०	पोप एलेक्जेंडर तृतीय और बारबरोसा प्रथम के बीच युद्ध
११९० ई०	बारबरोसा प्रथम की मृत्यु
११९० ई०	बारबरोसा प्रथम का पुत्र हेनरी छठाँ पवित्र रोमन सम्राट् बना
११९७ ई०	हेनरी छठाँ की मृत्यु
११९८ ई०	इनोसेंट तृतीय को पोप निर्वाचित किया गया
१२४५ ई०	ल्यून्स (फ्रान्स) मे पोप इनोसेंट चतुर्थ द्वारा सम्राट् फ्रेडरिक द्वितीय पदच्युत कर दिया गया।
	अध्याय १९
९६२ ई०	ओटो प्रथम का पवित्र रोमन सम्राट् के रूप में अभिषेक

वर्ष	महत्वपूर्ण घटनायें
१२१५ ई०	इंग्लैंड के राजा जॉन द्वारा मैग्नाकार्टा पर हस्ताक्षर
१२९५ ई०	इंग्लैंड के एडवर्ड प्रथम ने हाउस आफ कामन्स को संसद का नियमित अंग बनाने की दिशा में कदम उठाया
११८०-१२२३ ई०	फिलिप द्वितीय का फ्रांस पर शासन
१२१४ ई०	फिलिप आगस्टस द्वारा इंग्लैंड के राजा जॉन की वापिस में पराजय
१२८५-१३१४ ई०	लुई नवाँ का फ्रांस पर शासन
	अध्याय २०
१५८९-१६१० ई०	फ्रांस पर हेनरी चतुर्थ का शासन
१६१०-१६४३ ई०	लुई तेरहवाँ का फ्रांस पर शासन
१६४२ ई०	रिशल्यू की मृत्यु
१६४३-१७१५ ई०	लुई चौदहवाँ का फ्रांस पर शासन
१७१५ ई०	लुई चौदहवाँ की मृत्यु
१७१५-१७७४ ई०	लुई पन्द्रहवाँ का फ्रांस पर शासन
१७८९ ई०	फ्रांस की रक्तरंजित क्रांति का प्रारम्भ
१७४०-१७८६ ई०	फ्रेडरिक महान् का प्रशिया पर शासन
१६८२-१७२५ ई०	रूस पर पीटर महान् का शासन
१७६२-१७९६ ई०	रूस पर कैथरीन महान् का शासन
१७९६ ई०	कैथरीन महान् की मृत्यु
	अध्याय २४
१३०९ ई०	पोप रोम स्थित अपना चर्च छोड़कर एविग्नान भागा
१३७८-१४१५ ई०	महान् पश्चिमी विच्छेद
१४०९ ई०	फ्रेंच और इटैलियन कार्डिनलों की संयुक्त सभा द्वारा तीसरे पोप का चुनाव
१३८३ ई०	वायक्लिफ का धर्म-बहिष्कार और मृत्यु
१५१७ ई०	मार्टिन लूथर ने अपने ९५ शोध-प्रबन्धों को विटेनवर्ग के दरवाजे पर कील ठोक कर टँगवा दिया
१५२० ई०	पोप लियो दसवाँ द्वारा मार्टिन लूथर का धर्म-बहिष्कार
१५२१ ई०	सम्राट् चार्ल्स पाँचवाँ द्वारा मार्टिन लूथर का राज्य-निर्वासन
१५२५ ई०	द० जर्मनी में कृषक-आन्दोलन
१५४५-१५६३ ई०	ट्रेन्टविथ परिषद् की बैठक हुई।

अध्याय ५

आविष्कार और आविष्कर्त्ता सारिणी

आविष्कर्त्ता	आविष्कार
थालीज	ज्यामितीय शब्दावली
आर्किमिडीज	आपेक्षिक घनत्व का सिद्धान्त तथा द्रव्य स्थिति विज्ञान
एरिस्टार्कस	पृथ्वी और अन्य ग्रह सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाते हैं
हिपारिकस	त्रिकोणमिति
एरिस्टार्कस	सौर-मण्डल का सूर्य-केन्द्रीय होने का सिद्धान्त
हिपोक्रेटोस	यूनानी औषधिशास्त्र
हिरोफिलस	शल्य विज्ञान
एरासिस्ट्रेटस	शरीर विज्ञान
थियोफ्रेस्टस	वनस्पति शास्त्र

अध्याय २१

योगदाता	योगदान
गैलीलियो	गतिविज्ञान मे एक नया नियम
एबेलार्ड	पुस्तको की अपेक्षा प्रकृति के प्रत्यक्ष अध्ययन व अवलोकन पर जोर
रोजन बेकन	प्रयोगात्मक प्रणाली

अध्याय २२

साहित्य मे पुनर्जागरण

लेखक नाम	लेखन
इटैलियन लेखक	
निकोलो मैकियावेली	प्रिंस
दाते	डिवाइन कामेडी
एरिस्टो	आरलेंडो फ्यूरिसो
तासो	जेरुसलम डिलीवर्ड
गियोवडी थोसेसिओ	डेकमारान

जर्मन लेखक	
मार्टिन लूथर	बाइबिल का अनुवाद
स्पेन के लेखक	
सेरवतेन	डोन क्विक्सोट
लोपे द वेगा	नाटक और काव्य
काल्ड्रन	नाटक और काव्य
पुर्तगाली लेखक	
कमोन्स	महाकाव्य 'ल्युसियड'
फ्रांसीसी लेखक	
माइकेल द मान्टेन	निबंध
फ्रांसिस राबेलो	कविता
डच लेखक	
डिसीडेरियस इरेसमस	इन प्रेज ऑफ फोली
अंग्रेजी लेखक	
जिओफ़्री चौसर	कैंटरबरी टेल्स
फ्रांसिस बेकन	अनेक निबन्ध
सर थामस मूरे	यूटोपिया
मिल्टन	महाकाव्य 'पेराडाइज लास्ट'
क्रमेर	बुक ऑफ कामन प्रेयरर्स
बेन जानसन	एकांकी और नाटक
क्रिस्टोफर मारले	एकांकी और नाटक
शेक्सपियर	एकांकी और नाटक

कला मे पुनर्जागरण

कलाकार	कला मे मुख्य कार्य
भवन-निर्माण कला	
राफेल और माइकेल एंजेलो	सेन्ट पीटर्स चर्च
सर क्रिस्टोफर रेन	सेन्ट पौल्स कैथेड्रल
मूर्तिकला	
लारेनजो घिबर्टी	फ्लोरेन्स की बैपिस्ट्री के दरवाजे
दातेलो	वेनिस मे सेंट जार्ज और सेंट मार्क की मूर्तियाँ और यंग एंजिल्स
ल्यूका डेलो रोबिया	टेराकोटा मे नये स्कूल की स्थापना
माइकेल एंजेलो	फ्लोरेंस मे डेविस और मोसेस की मूर्तियाँ

चित्रकारी

लियोनार्डो द विंशी	मोनालिसा, दि लास्ट सुपर, दि वर्जिन ऑफ दि राक्स और दि वर्जिन एण्ड चाइल्ड विथ सेट ऐन
माइकेल एंजेलो	सीसटाइन चैपल की दीवार पर फ्रेसकस की चित्रकारी
सेनजिओ राफेल	सीसटाइन मडोना
टिटिमन	एमम्सन आफ दि वर्जिन का तैलचित्र

विज्ञान मे पुनर्जागरण

आविष्कर्ता	आविष्कार
पोलेमी	पोलेमी प्रणाली
निकोलस कोपरनिकस	कोपरनिकन सिद्धान्त
जॉन किपलर	नक्षत्र सूर्य के चारो ओर दीर्घ तृतीय रूप मे घूमते है
गैलीलियो	दूरवीन—गति विज्ञान का एक सिद्धात —वायु थर्मामीटर, जल स्थित तराजू, खगोल घडी, वैरोमीटर, तौलने की तराजू
सर आइजक न्यूटन	गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त
गिलबर्ट	चुम्बकीय अनुपात का प्रयोग
स्टेविन	समान्तर चतुर्भुज की शक्ति का सिद्धात
कार्डस	अल्कोहल और सल्फ्यूरिक एसिड से ईथर
हेलमाट	कार्बन डाइ-आक्साइड
वासालियस	शरीर विज्ञान पर निवन्ध
विलियम हार्वे	रक्त का प्रवाह हृदय से आरम्भ होकर धमनियो को जाता है और वहाँ से नाडियो मे होता हुआ पुन- हृदय को जाता है
टार्टाग्लिया	विभिन्न प्रकार के समीकरण
फेरारी	विभिन्न प्रकार के समीकरण
विएटा	विभिन्न प्रकार के समीकरण
केपलर	विभिन्न प्रकार के समीकरण
डेकार्टे	विश्लेषणात्मक रेखागणित

डेसाएगस	आधुनिक रेखागणित
स्टेविन	दशमलव पद्धति के वजन, माप और सिक्के
नेपियर	लघुगणक
चानर	मैरिनर के कुतुबनुमा के लिए कुतुबनुमा कार्ड

अध्याय २३

भौगोलिक खोजें

आविष्कर्ता	भौगोलिक खोज
हेनरी नौचालक (पुर्तगाली)	अफ्रीका के पश्चिमी तट पर अनेक टापू और मडेरिया, अजोरस और पश्चिमी अफ्रीका का गिनी तट
बार्थोलोम्यू डियाज (पुर्तगाली	पश्चिम का केप मार्ग, केप आफ गुड होप
वास्को-डि-गामा (पुर्तगाली)	पश्चिम या केप मार्ग, भारत के पश्चिमी तट पर कालीकट
क्रिस्टोफर कोलम्बस (स्पेन निवासी)	कैरेबियन सागर के अमेरिकन तटों में अटलांटिक मार्ग वेनजुएला और मध्य अमरीका सन् १८०७
वास्को ननेज डी बल्बोआ (स्पेन निवासी)	१५१३ में डेरेन का यू उमरु मध्य (पनामा)
फर्डिनेंड मैगनल (स्पेन निवासी)	दक्षिण-पश्चिमी मार्ग के दक्षिण, प्रशान्त महासागर और ससार की परिक्रमा
जॉन कैबेट (इटैलियन लेकिन इग्लैंड के हेनरी सप्तम द्वारा नियोजित)	चीन और भारत के लिए उत्तरी-पश्चिमी मार्ग, अटलांटिक को पार कर उत्तरी अमरीका के उत्तर-पूर्व तट पर पहुँचा और उसका नाम न्यू फाउण्डलैंड रखा
वेराजेनो (इटैलियन लेकिन फ्रास के राजा के यहाँ नियुक्त)	१५२४ में नार्थ कैरोलिना में न्यूयार्क तक नदी की मार्गों और मुहानों की खोज
जेक्यू कार्टियर (फ्रासीसी)	१५३४ में सेंट लारेंस नदी की खोज

BIBLIOGRAPHY

1. BAILEY, C, AND OTHERS, *The Legacy of Rome* (*Oxford*, 1923)
2. BREASTED, J H, *The Conquest of Civilization* (*Harper & Brothers, Publishers*, 1938)
3. BURRY, J S, AND Others, *The Hellanistic Age* (*Macmillan*, 1923)
4. CAMBRIDGE ANCIENT HISTORY (*Macmillan* 1923-1935)
5. CAMBRIDGE HISTORY OF INDIA (*Macmillan*, 1922)
6. CHAMBERLIN, T C, *Origin of the Earth* (*University of Chicago Press*, 1916)
7. COLLINS, R W, *A History of Medieval Civilization* (*Ginn*, 1936)
8. DURANT, W, *The Story of Civilization, Vol I "Our Oriental Heritage"* (*Simon and Schuster*, 1935)
9. DHALLA, M N, *Zoroastrian Civilization* (*Oxford*, 1922)
10. D CRUZ, E S J, *A Survey of World Civilization* (*Lalvani*, 1970)
11. DUN, J L I, *The Essence of Chinese Civilization* (*D Von Nostrand Co*, 1967)
12. ELIOT, C, *Hinduism and Buddhism* (*Longmans*, 1921 3 *vols*)
13. FLICK, A C, *Rise of Medieval Church* (*Putnam*, 1909)
14. FERGUSON AND BRUNN, *A Survey of European Civilization, Vols I & II* (*Houghton Mifflin Co*, *Second edition*)
15. HALL, A R, *The Scientific Revolution* (*Longmans*, 1962)
16. HAYES, BALDWIN, AND COLE, *History of Western Civilization* (*Vol I*) (*Macmillan*, 1962)
17. HAYES C J H, *A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol I.* (*Macmillan*, 1932)

18 HULME, E. M., *Renaissance and Reformation* (*Holt*, 1925)

19 HOWAT, R. B., *The Age of Reason* (*Houghton Mifflin Co*, 1935)

20 HAYES, MOON, AND WAYLAND, *World History* (*Macmillan*, 1955)

21 LUCAS, H S., *Renaissance and Reformation* (*Harper*, 1934)

22 MOULTON, F. R., *The World and Man as Science Sees Them* (*University of Chicago Press*, 1937)

23 NEHRU, J M., *Glimpses of World History* (*Asia Pub House*, 1965)

24 PARRY, J H. *The Age of Renaissance* (*Weidenfeld and Nicolson*, 1963)

25 SMITH, P, *Age of the Reformation* (*Holt*, 1920).

26 SEDWICK, W T., AND TAYLOR, H W., *Short History of Science* (*Macmillan*, 1917)

27 SHIPLEY, A E, *The Revival of Science in the Seventeenth Century* (*Princeton*, 1914)

28 SHARMA, S R, *A Brief Survey of Human History* (*Hind Kitabe Ltd*, 1963)

29 SWAIN, J E, *A History of World Civilization* (*Eurasia Publishing House* (*P*) *Ltd*, 1947)

30 SMITH, V A, *Early History of India* (*Oxford*, 1925).

31 WELLS, H G, *Outline of History* (*Macmillan*, 1920)

32 WOOLEY, C L, *The Sumerians* (*Oxford*, 1928)

33 WEECH, W N, *History of the World* (*Asia Publishing House*, 1960)

34 ZIMMERN, A E, *The Greek Commonwealth* (*Oxford*, 1931)